प्रकाशक का निवेदन

आज एक साल हो चला कि पृथ्वी भर में विश्व विश्रुत स्वामी विवेकानन्द की जन्म-शत वार्षिकी उद्यापित हो रही है—इसमें आश्चर्य का विषय कुछ भी नहीं है, क्योंकि वे विश्वमानव थे। इस कारण समस्त विश्व उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए उद्ग्रीव है। यह "युगप्रवर्तक विवेकानन्द" ग्रन्थ भी एक श्रद्धाञ्जलि मात्र है।

स्वामी विवेकानन्द कौन थे और क्या थे पाठक मात्र ही यह ग्रन्थ पढ़ने से उसका कुछ परिचय पायेंगे। किन्तु असंख्य लेखक या असंख्य प्रवक्ता यदि युगयुगान्तरों तक वर्णन करते रहें तो भी उनके सम्यक् परिचय की सीमा निर्धारित नहीं कर सकेंगे। उनका चेहरा और व्यक्तित्व-बहुल जीवन भी अचिन्तनीय हैं। मनुष्य जाति के इतिहास में उनके ऐसा अपूर्व प्रतिभा-मण्डित पुरुष-सिंह दूसरा नहीं दिखाई पड़ता। वे अतिमानव, महामानव तथा अद्वितीय महापुरुष थे।

यह प्रकाशन हमारे हिन्दी भाषा भाषी भाई बहनों के लिए ईप्सित है। वे बाल वृद्ध-वनिता यदि इसके पढ़ने का सुयोग ग्रहण करें तो यथार्थ में ही हम अपने को कृतकृतार्थ समझेंगे।

स्वामी सम्बुद्धानन्द

प्रस्तावना

स्वामी विवेकानन्द ६१ वर्ष पूर्व इस संसार से चले गये, किन्तु उनके जीवन और वाणी की प्रेरणा अभी तक जाग्रत है और समस्त देश और विदेश में समादृत हो रही है तथा सभी स्तरों के मनुष्यों को अनुप्रेरणा दे रही है। केवल ३९ वर्ष ही वह जीवित थे। इस अल्प समय में जीवन में उन्होंने जो कर दिखाया वह सचमुच ही अमानुषिक है। उनके गुरु भगवान् श्रीरामकृष्ण देव ने उनके सम्बन्ध में जो अनेक अलौकिक दर्शन किये थे, वे काल्पनिक नहीं थे, स्वामीजी की जीवनी की खोज करने वाले विचारशील पाठकों के सामने वह सहज ही में प्रकाशित होंगे।

स्वामीजी की व्यक्तिगत आध्यात्मिक साधना, परिव्रज्या, उनका अपूर्व चरित्र, गम्भीर पाण्डित्य, वाग्मिता, प्रखर स्वदेशप्रेम, दीन, दरिद्र, निर्यातित और अवहेलित के प्रति उनकी उद्वेल सहानुभूति उनका तेज, वीर्य, ज्ञान, वैराग्य, मानव सेवा, उनका भारतीय जातीयता का उद्बोधन, विश्वहित के लिए आत्मनियोग, प्राच्य और पाश्चात्य के विचार-जगत् में उनका अवदान आदि प्रत्येक विषय ही अपने महत्त्व, सौन्दर्य और गम्भीरता के कारण हमारे चित्त को आकर्षित करता है। उनका अपूर्व जीवन देश के प्रत्येक व्यक्ति के लिए हर समय अनुशीलन योग्य है। समाज के विभिन्न स्तरों के लोग उससे प्रचुर शिक्षा और उद्दीपना प्राप्त कर सकते हैं। एकाधार में इतना शक्ति और सद्गुणों का समावेश किसी व्यक्ति में नहीं दिखाई पड़ता। स्वामीजी एक पुरुष श्रेष्ठ थे।

स्वामी विवेकानन्द जैसे बंगाल प्रान्त के थे, उसी प्रकार सारे भारत के तथा सारे भूमण्डल के भी थे। उनके जीवन में कोई भौगोलिक सीमा रेखा नहीं थी। उनके भाव और कार्य की गम्भीरता तथा व्यापकता जिस प्रकार उनके चरित्र में एकत्र दिखलाई पड़ती है, वह नितान्त ही दुर्लभ है। मानो वह एक नूतन

युग के आदर्श मनुष्य थे। तरुण, प्रवीण, पुरुष, नारी, भारतीय, वैदेशिक आदि प्रत्येक के लिए उनकी अनेक सुस्पष्ट कल्याण-वाणियाँ हैं। उनके जैसे लोक शिक्षक पृथ्वी के इतिहास में अधिक नहीं मिलते। वह युगप्रवर्तक थे।

स्वामीजी का आविर्भाव हुआ था शताब्दियों के निपीडित, भयत्रस्त, विद्वेष और घृणा से विच्छिन्न मनुष्यों की मुक्ति, अभय और एकता का प्रकाश दिखाने के लिए। यह प्रकाश जिस प्रकार भारत में आवश्यक था, उसी प्रकार उसकी आवश्यकता पृथ्वी पर सर्वत्र थी। यह प्रकाश वह लाये थे अपने महान् गुरु श्रीरामकृष्ण के जीवन से तथा भारतवर्ष के वेदान्त या उपनिषद् से जो मानव आत्मा की शाश्वत महिमा को मेघगर्जना के स्वर से घोषणा करता है। प्रत्येक मनुष्य ही भगवान् का प्रतीक—भगवान् का अंश है, 'जीव शिव।' मानव आत्मा चिर मुक्त, सब प्रकार के भय और मोह से परे है। मानव आत्मा की प्रतिष्ठा सर्वावगाही आत्मीयता तथा प्रेम में है। स्वामीजी का अपना जीवन था इस उपनिषद् वाणी का उज्ज्वल उदाहरण।

स्वतन्त्र भारत में आज स्वामी विवेकानन्द के जीवन और वाणी की अधिकाधिक आलोचना और अनुशीलन अत्यन्त आवश्यक है। सोलह वर्ष स्वतन्त्रता प्राप्त करने पर भी जो समस्याएँ हमारे जातीय जीवन को दबा रही हैं और किस तरह भी उनका हल नहीं मिल रहा है, उन समस्याओं की मीमांसा के अनेक संकेत हम स्वामीजी के जीवन और वाणी से पा सकते हैं। यद्यपि वह राजनैतिक नहीं थे तथापि भारतीय जाति के संघटन, एकता और बलाधान के लिए वह सुचिंतित अनेक निर्देश लिपिबद्ध कर गये हैं। देश सेवकों तथा देश-नेताओं को अनेक सावधान वाणियाँ भी उन्होंने सुनायी हैं। उनके विशेष रूप से अनुशीलन करने का समय आया है।

स्वामी विवेकानन्द को पुराने इतिहास में आबद्ध रखना किसी तरह भी उचित नहीं है। विश शताब्दी के पूर्वार्ध में जो भावधाराओं और घटनापरंपराओं की सूचना दिखाई पड़ती है—स्वामीजी ने मानो उन सभी को अपनी अलौकिक दृष्टि से देख लिया था और सावधान वाणी सुनायी थी, तथा पथ का निर्देश भी

दिया था। इस कारण हम युग के मनुष्यों के वे एक अन्तरंग कल्याण सहचर हैं। अपनी सम्मुख यात्रा, संग्राम और भविष्य योजनाओं में यदि हम इस अलोकसामान्य शक्तिमान् पुरुषप्रवर को लेकर चलते हैं तो हमें लाभ छोड़कर हानि नहीं होगी। स्वामीजी को युग प्रवर्तक कहना आलंकारिक प्रयोग नहीं है। यह अक्षरशः सत्य है।

प्रस्तुत पुस्तक स्वामी विवेकानन्द की इस जन्मशतवार्षिकी के समय हमारे पाठक पाठिकाओं को यदि इस महामानव के प्रति कुछ भी आकृष्ट कर सके तो हम अपने को धन्य समझेंगे।

श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन के वर्तमान अध्यक्ष परम श्रद्धेय श्रीमत् स्वामी माधवानन्द जी महाराज ने इस ग्रन्थ की मूल पाण्डुलिपि का संशोधन करके हमें उत्साहित किया है। उनके हम विशेष रूप से ऋणी हैं। इस ग्रन्थ की रचना में हमें और भी अनेकों से विभिन्न प्रकार की सहायता मिली है। सभी को हम अकुण्ठ कृतज्ञता जताते हैं।

स्वामी अपूर्वानन्द

शान्ति मन्त्र

ॐ सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै, तेजस्विनावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥१॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा, भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवासस्तनुभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥२॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि, वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथ
बलमिन्द्रियाणिच सर्वाणि । सर्वं ब्रह्मोपनिषदम् ॥
माहं ब्रह्म निराकुर्यां, मा मा ब्रह्म निराकरोद-
निराकरणमस्तु अनिराकरणं मेऽस्तु ।
तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ।
ते मयि सन्तु ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥३॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥४॥

परिव्राजक विवेकानन्द

ही साथ उनकी योगदृष्टि के सामने नरेन्द्रनाथ के पूरे जीवन का चित्र दिन के प्रकाश के समान प्रकाशित हो उठा था।

एकदिन दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण देव के घर में केशवचन्द्र सेन, विजयकृष्ण गोस्वामी आदि नामी ब्राह्म नेता बैठे थे। युवक नरेन्द्रनाथ, मास्टर महाशय आदि अनेक भक्त भी वहाँ उपस्थित थे। अनेक प्रकार के ईश्वरीय प्रसंग की आलोचना हुई। केशव, विजय आदि के चले जाने पर नरेन्द्रनाथ की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखते हुए श्रीरामकृष्ण देव ने कहा—"मैंने देखा केशव जिस विशेष शक्ति के उत्कर्ष से जगद्विख्यात हुआ है, नरेन के भीतर उस प्रकार की १८ शक्तियाँ पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं।" उन्होंने और भी कहा—"मैंने देखा, केशव और विजय का अन्तर दीपशिखा की तरह ज्ञानालोक से उज्ज्वल हो रहा है, और नरेन के भीतर ज्ञानसूर्य ने उदित होकर माया मोह के लेश तक को दूर कर दिया है।"

सुनकर नरेन्द्रनाथ ने उनके सामने ही प्रतिवाद करते हुए कहा—"महाशय, क्या कहते हैं? ऐसा बातें कहने पर लोग आपको पागल कहेंगे। कहाँ तो जगद्विख्यात केशव सेन, महात्मा विजय गोस्वामी और कहाँ मेरे जैसा एक नगण्य कालेज का छात्र! आप इनके साथ मेरी तुलना कर ऐसी बातें फिर कभी न कहियेगा।"

हँसते हुए श्रीठाकुर ने कहा—"क्या करूँ बेटा, तू सोचता है, मैं ही वैसा कहता हूँ! माँ (जगदम्बा) मुझे दिखा देती है, तभी तो मैं कहता हूँ।"

नरेन्द्रनाथ के दक्षिणेश्वर आने के पूर्व श्रीरामकृष्ण देव को एक अलौकिक दर्शन हुआ था। उसी से वह नरेन्द्रनाथ के स्वरूप के सम्बन्ध में सब कुछ जान गये थे। उन्होंने कहा "एकदिन मैंने देखा—मन समाधि-पथ से ज्योतिर्मय मार्ग में ऊपर उठता जा रहा है। चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र मंडित स्थूल जगत् का अतिक्रमण कर मन पहले सूक्ष्म भाव जगत् में प्रविष्ट हुआ। मार्ग के दोनों ओर अनेक देवदेवियों की भावघन विचित्र मूर्तियाँ विराजमान दिखाई पड़ीं। क्रमशः मन उक्त राज्य की चरम सीमा पर पहुँचा। मैंने वहाँ देखा, एक ज्योतिर्मय व्यवधान ने प्रसारित रहकर खंड और अखंड

के राज्यों को पृथक कर रखा है।' किन्तु दूसरे ही क्षण दिखाई पड़ा कि दिव्य-ज्योतिर्घनतनु सात प्रवीण ऋषि वहाँ समाधिस्थ होकर बैठे हुए हैं। ऐसा लगा, मानो ज्ञान और पुण्य, त्याग और प्रेम में ये लोग मनुष्य तो दूर की बात है देवदेवियों तक के परे पहुँचे हैं। विस्मित होकर इनके महत्त्व के विषय में मैं सोच रहा था, इतने में देखा—सामने अवस्थित अखण्ड घर के भेद-रहित समरस ज्योतिर्मंडल का एकांश घनीभूत होकर एक दिव्य शिशु के रूप में परिणत हो गया, वह देवशिशु इन ऋषियों में एक के निकट जाकर अपने सुललित बाहु-युगल के द्वारा प्रेमपूर्वक उनके गले से लिपट गया। इसके अनन्तर विनाविनिंदक अपनी अमृतमयी वाणी से वह पुकार-पुकार कर उन्हें समाधि से प्रबुद्ध करने के लिए प्रयत्न करने लगा। सुकोमल प्रेमपूर्ण स्पर्श से ऋषि समाधि से व्युत्थित हुए और उस अपूर्व बालक को अर्धोन्मुक्त प्रसन्न निर्निमेष नेत्रों से देखने लगे। ऋषि के मुखमंडल का प्रसन्नोज्ज्वल भाव देखकर प्रतीत हुआ, मानो बालक अनादिकाल से परिचित, उनके हृदय का धन है। उस समय उस देवशिशु ने असीम आनन्द प्रकट करते हुए उनसे कहा—'मैं जा रहा हूँ, तुम्हें भी मेरे साथ जाना होगा।'

"ऋषि ने उसके अनुरोध से कोई बात न कहने पर भी अपने प्रेमपूर्ण नेत्रों से अन्तर की सम्मति व्यक्त की। उसके पश्चात् उसी प्रकार की सप्रेम दृष्टि से बालक को कुछ समय तक देखते रहकर वह पुनः समाधिमग्न हो गये। तब मैंने विस्मित होकर देखा—उन्हीं के शरीर मन का एकांश उज्ज्वल ज्योति के रूप में परिणत होकर विलोम मार्ग से धराधाम में अवतरित हो रहा है। नरेन्द्र को देखते ही मैं जान गया कि यही वह ऋषि हैं।"*

---

* श्रीरामकृष्ण देव ने ही स्वयं उस देवशिशु का रूप धारण कर ज्योतिर्मंडल के अन्यतम ऋषि का गला लिपटकर उन्हें अपने साथ लीला-सहचर रूप से नरदेह में अवतरित होने के लिए अनुरोध किया था।

युगप्रवर्तक विवेकानन्द

एक

एक विशाल वट वृक्ष के नीचे खड़े होकर जिस समय उसकी विपुल परिधि की ओर हम अवाक् विस्मय-दृष्टि से देखते हैं, उस समय क्या हम सोच सकते हैं कि एक सरसों के दाने के समान छोटे से बीज के भीतर इतना विशाल वृक्ष छिपा था? उसी तरह १८६३ ई० की १२ वीं जनवरी (बंगला १२६९, २९ पौष) कृष्णा सप्तमी तिथि को कलकत्ते के सिमला मुहल्ले में विश्वनाथ दत्त तथा भुवनेश्वरी देवी के प्रथम पुत्र के रूप में जो बालक उत्पन्न हुआ, उस समय कौन जानता था कि उस बालक के ३९ वर्ष के जीवन में ही इस प्रकार की आश्चर्यजनक प्रतिभा तथा महाशक्ति का विकास होगा? और जिसका प्रभाव देश और काल के भीतर सीमाबद्ध न रहेगा, जो विभिन्न समय तथा विभिन्न परिवेष्टनी में और विभिन्न नरनारियों के हृदय में जगा देगा—निखिल कल्याण साधन का आवेदन, मानवात्मा की शाश्वत महिमा तथा सत्य, न्याय, मैत्री की ज्वलन्त अनुप्रेरणा।

कमनीय कान्तिवाला वह देव शिशु जब क्रमशः प्रियदर्शन, प्रतिभा मंडित, शौर्य-वीर्य-पराक्रम में नरशार्दूलतुल्य तथा सारभमय तरुण युवा के रूप में रूपान्तरित हुआ उस समय भी कोई समझ न सका कि यही नरेन्द्रनाथ दत्त कालान्तर में विश्ववरेण्य स्वामी विवेकानन्द नाम से प्रख्यात होगा।

१८ वर्ष के नरेन्द्रनाथ को पहले पहल देखते ही श्रीरामकृष्ण देव पहचान गये थे। वह जान गये थे कि नरेन्द्रनाथ कौन है और क्या जन्मा है। साथ

और भी कहा था श्रीरामकृष्ण देव ने—"नरेन्द्र मानो सहस्रदलकमल है। इतने सारे लोग यहाँ आते हैं पर नरेन्द्र की तरह एक भी नहीं आया।"

* * *

कंठरोग से आक्रान्त होकर श्रीरामकृष्ण देव काशीपुर के उद्यानभवन में रह रहे थे। जीवकल्याण रूप कार्य समाप्त करके वह अब महाप्रस्थान के लिए प्रस्तुत होने लगे। उस कठिन रोग के भीतर भी उन्हें विश्राम नहीं था। विशेषरूप से त्यागी शिष्यों को वह साधन-भजन, त्याग-तपस्या के माध्यम से युगचक्र के परिचालन के लिए तैयार करने लगे। नरेन्द्रनाथ के मन में भी उस समय निर्विकल्प समाधि में अधिरूढ़ होने की तीव्र आकांक्षा थी। उन्होंने श्रीठाकुर से बहुत आग्रह के साथ कहा—"मुझे इच्छा होती है कि शुकदेव की तरह एकदम पाँच-छः दिनों तक समाधि में डूबा रहूँ। उसके अनन्तर केवल देहरक्षा के लिए कुछ नीचे उतर कर फिर समाधि में डूब जाऊँ।"

नरेन्द्रनाथ की कातर प्रार्थना सुनकर एकायक श्रीठाकुर में भावान्तर उपस्थित हुआ। डाँटने के स्वर से उन्होंने कहा—"छी, छी, तू इतना बड़ा आधार है, तेरे मुँह से ऐसी बात! मैंने सोचा था तू एक विशाल वटवृक्ष की तरह होगा, तेरी छाया में हजारों स्त्री पुरुष आश्रय पायेंगे—ऐसा न होकर तू केवल अपनी ही मुक्ति चाहता है!"

नरेन्द्र को ज्ञात हो गया कि श्रीठाकुर का हृदय कितना महान् है। पश्चात्ताप से हृदय भर गया। धमकी खाकर वह चुपचाप आँसू बहाने लगे।

किन्तु नरेन्द्रनाथ की इस प्रार्थना को श्रीठाकुर ने पूर्ण किया। इस घटना के कई दिनों के बाद एकदिन नरेन्द्रनाथ काशीपुर के उद्यान भवन में ध्यान करने बैठे थे। उनका मन क्रमशः निर्विकल्प अवस्था में पहुँच गया। शरीर स्थाणु के समान स्थिर, बाहर से मृतवत् प्रतीत होने लगा। स्पन्दन रहित गंभीर समाधि में वह मग्न हो गये। नरेन्द्रनाथ की वैसी

अवस्था देखकर एक गुरुभाई ने श्रीठाकुर के पास जाकर कहा—"नरेन्द्र मर गया है।"

श्रीरामकृष्ण देव ऊपर ही थे। नीचे के कमरे में नरेन्द्रनाथ समाधिस्थ थे। वह सब जानते थे। केवल कहा—"अच्छा हुआ। रहने दो कुछ देर उसी अवस्था में। इसी के लिए वह मुझे बहुत परेशान करता था।"

बहुत रात बीते नरेन्द्रनाथ की समाधि टूटी। उस समय भी देह-भूमि में मन नहीं उतरा। उसी स्थिति में उन्होंने कहा—"मेरा शरीर कहाँ है?" धीरे-धीरे सहजावस्था प्राप्त होकर वह ऊपर के कमरे में श्रीठाकुर के पास गये। समाधि की शान्ति से उनका मन परिपूर्ण था। सिर झुकाये वह श्रीठाकुर के सामने खड़े रहे। उन्हें देखते ही श्रीठाकुर ने गंभीर स्वर से कहा—"क्या रे, अबकी तो माँ ने तुझे सब कुछ दिखा दिया है। जो देखा है वह सब अब बन्द रहेगा। अब तुझे माँ का काम करना होगा। माँ का काम समाप्त होने पर फिर तुझे यह अवस्था मिल जायेगी।"

नरेन्द्रनाथ का चित्त अक्षय प्रशान्ति से पूर्ण था, चुपचाप वह नीचे की ओर देखते हुए खड़े रह गये। इसीलिए तो नरेन्द्रनाथ परवर्ती काल में स्वामी विवेकानन्द के रूप में सारे संसार में योगारूढ होकर काम कर सके थे। जिस प्रकार भगीरथ सुरनदी को पृथ्वी पर लाये थे, ठीक इसी प्रकार श्रीरामकृष्ण भी ज्योतिर्मंडल के महान् ऋषि को ध्यान भूमि से उतार लाये थे—नर रूप में जगत् त्राण के लिए। समस्त संसार, विशेष रूप से भारत, स्वामी विवेकानन्द के कारण श्रीरामकृष्ण देव का चिरऋणी रहेगा। उस दिन जो श्रीठाकुर ने चाभी अपने हाथ में रखकर उनका समाधि मार्ग रुद्ध कर दिया था उसी से स्वामी विवेकानन्द का विश्व प्रेमिक रूप और उसी से वह जीव दुःख कातर आर्तत्राता विवेकानन्द बन सके थे।

यह थे श्रीरामकृष्ण देव की वाणी। उनके भीतर से ही श्रीरामकृष्ण देव ने अपना युगधर्म सम्यक् रूप से स्थापित किया और उसे प्रचारित किया, समस्त मानवजाति के कल्याण के लिए।

स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में श्रीठाकुर की बात अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुई। स्वामीजी क्या थे और विश्व के कल्याण के लिए उन्होंने क्या किया, उसे देखने और समझने का अब समय आया है। उन्होंने कहा था—"यदि और एक विवेकानन्द होता तो समझ सकता कि विवेकानन्द क्या कर गया है।"

उन्होंने और भी कहा है—"जो कुछ मैं दे गया वह डेढ़ हजार वर्ष की खुराक है।" विश्ववासी के लिए चिन्ताजगत में डेढ़ हजार वर्ष की खुराक वह दे गये हैं। स्वामीजी साम्य, मैत्री, स्वाधीनता, विश्वभ्रातृत्व, विश्वमानवता और सर्वोपरि आध्यात्मिक क्षेत्र में जो भाव दे गये हैं—जगत् के कल्याण के लिए, विश्वशान्ति के लिए वे अब क्रमशः विभिन्न आधारों के भीतर से कार्यकर हो रहे हैं। स्वामीजी की अमोघ भावधारा ही संसार के समग्र चिन्ताशील व्यक्तियों को उद्दीपना दे रही है। वे भावरूप में सदा जाग्रत हैं और हजारों हृदयों को अनुप्रेरणा दे रहे हैं।

* * *

पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ता के हाईकोर्ट के एक बड़े अटर्नी थे। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण और मेधा प्रखर थी। विद्या, बुद्धि और ज्ञानगौरव में वे अतुलनीय थे। वे एक महान् उदार मन लेकर संसार में आये थे। बाइबिल और फारसी कवि हाफिज की आयतों पर उनको बड़ा प्रेम था। उन्होंने बहुत धन कमाया था। वैसे ही व्यय भी उदार हाथों से किया था। दान तथा परोपकार यथेष्ट था। वह लोगों को खिलाना बहुत पसन्द करते थे। रसोई करने में भी वह सुदक्ष थे। उनमें इतनी दया थी कि अनेक गरीबों तथा दूर सम्पर्क के कुटुम्बियों का आदर से पालन करते थे। उनके नशे के लिए भी पैसा देने में वह संकोच नहीं करते थे। बड़े होने पर नरेन्द्रनाथ ने जब उन निकम्मे आदमियों के पालन-पोषण से आपत्ति जताया तब विश्वनाथ दत्त ने कहा, "जीवन कितना दुःखमय है उसे तू अभी क्या

समझेगा ? जब समझ सकेगा तब इस दुःख के हाथ से क्षणिक मुक्ति पाने के लिए जो लोग नशा करते हैं उन्हें भी करुणा की दृष्टि से देखेगा।"

बाबू विश्वनाथ दत्त संगीतानुरागी थे—कविता भी पसन्द करते थे। उनके विराट् व्यक्तित्व के अन्तराल में एक स्नेह-प्रवण हृदय था। उस स्नेह और करुणा से कोई भी वंचित नहीं होता था। प्रयोजन के अतिरिक्त भी नौकर-चाकर गाड़ी-घोड़ा कर्मचारी-गुमाश्ते आदि रखते थे। उससे अनेक गरीब मनुष्य उनके घर में प्रतिपालित होते थे।

माता भुवनेश्वरी देवी का चरित्र भी अनुपम था। वह महिलाओं में रत्न के समान थीं। इसलिए तो रत्नगर्भा हो सकी थीं। हिन्दू समाज में स्त्रियाँ शक्ति का मूल हैं। उनके व्यक्तित्व और चरित्र का ही प्रभाव विशेष रूप से सन्तान के ऊपर पड़ता है।* भुवनेश्वरी विशेष बुद्धिमती धर्मकुशल और भक्तिमती थीं। शरीर और मन के सौन्दर्य ने उन्हें सर्वजनप्रिय बनाया था। किन्तु पति के धर्मभाव के साथ उनका सर्वांश में मेल नहीं था। देवी देवियों पर भुवनेश्वरी का पूर्ण विश्वास था। वह पूजा अर्चना करती थीं। रामायण, महाभारत आदि उनको कंठस्थ थे। वह पूर्णतया हिन्दू रमणी थीं। उनकी तरह तेजस्विनी तथा सर्वगुण सम्पन्न महिला विरल थीं।

लगातार चार लड़कियाँ पैदा हुईं। इनमें से दो अकाल में चल बसीं। एक भी लड़का नहीं हुआ। इसलिए विश्वनाथ दत्त और भुवनेश्वरी देवी दोनों ही विशेष दुःखी थे। एक भारी अभाव-बोध उनके हृदयों को सदा पीड़ित करता था। भुवनेश्वरी देवी अपने इष्टदेव के निकट हृदय की वेदना

---

* स्वामी विवेकानन्द ने परवर्ती काल में बताया था—"अपने ज्ञान के विकास के लिए मैं अपनी माँ का ऋणी हूँ।" और भी कहा था—'जो अपनी माता की पूजा यथार्थ में नहीं कर सकता, वह कभी बड़ा नहीं होता।" पिता माता की भक्ति संसार के सामने आर्यसभ्यता का श्रेष्ठ अवदान है। उपनिषद् का उपदेश है—"पितृदेवो भव, मातृदेवो भव।"

एकान्त में निवेदन किया करती थीं। उन्होंने सुना था आशुतोष शिव की प्रसन्नता से उनकी मनोकामना पूर्ण हो सकती है। इस कारण वह शिव-पूजा में रती हुईं। काशी के वीरेश्वर शिव जाग्रत देवता हैं। उन्होंने वहाँ की किसी सम्बन्धी महिला के द्वारा एक पुत्र की मनौती करके प्रतिदिन वीरेश्वर की पूजा करने का प्रबन्ध किया।

उधर भुवनेश्वरी देवी भी शिव-पूजा, शिव का ध्यान और शिवनाम जप में दिनों दिन तन्मय हो गयी थीं। कातर प्रार्थना से उनका हृदय भर गया। गृहकार्य कर काम के भीतर भी उनका मन प्रार्थनारत रहा करता था। इसी ढंग से एक साल बीता।

एक रात को भुवनेश्वरी देवी ने एक अपूर्व स्वप्न देखा। उन्होंने देखा, देवादिदेव महादेव योग निद्रा से व्युत्थित होकर शिशु रूप में उनकी गोद में आ गये। दिव्यानन्द से उनका शरीर पुलकित हो उठा। सहसा उनकी निद्रा भंग हो गयी। तब तक हिमगिरि-तुल्य ज्योतिर्मय देवता भी अन्तर्हित हो गये थे। उन्होंने भक्तिपूरित चित्त से चन्द्रमौलीश्वर के उद्देश्य से प्रणाम किया—"शिव शिव ! हे करुणामय कृपानिधि !"

* * *

उसदिन पौष मकरान्ति थी। शिव का वार सोमवार तथा मकर सप्तमी तिथि थी। कलकत्ता नगर उत्सवों से पूर्ण था। सुरसरिता के पुण्य स्नान के लिए दल के दल स्त्री पुरुष चल रहे थे। सूर्योदय के कुछ क्षण बाद भुवनेश्वरी की गोद आलोकित करते हुए एक भुवनमंगल देवशिशु का आविर्भाव हुआ। दत्त-परिवार में आनन्द-कोलाहल होने लगा। मंगलशंख बज उठे। हुलुध्वनि के साथ घर की महिलाओं ने नवजात बालक का स्वागत किया।

देवशिशु के समान पुत्र को देखकर भुवनेश्वरी देवी समझ गयीं कि देवस्वप्न सफल हुआ है। स्वयं वीरेश्वर ही शिशु रूप से आये हैं।

जननी ने बालक का नाम 'वीरेश्वर' रखा। पुकारने का नाम हुआ 'बिले'। अन्नप्राशन के समय 'नरेन्द्रनाथ' यह नाम रखा गया।

* * *

प्रातःकाल से ही दिन के प्रकाश की सूचना होती है; बालक के भीतर भी उसके भावी रूप की सम्भावना रहती है। बालक जैसे जैसे बढ़ने लगा वैसे वैसे उसके जीवन की विशेषतायें प्रकट होने लगीं। उस शिशु के भीतर जो ब्रह्माड को हिला देने वाली महान् शक्ति थी वह विविध छन्दों और विभिन्न रूपों में अपने को प्रकट करने लगी। उतना सा बालक, पर उसके उपद्रवों से घर के लोग परेशान होते थे, बड़ा ही जिद्दी था वह। जिसे पकड़ता किसी तरह भी वह उसे नहीं छोड़ता। डाँट फटकार, प्रहार, भय प्रदर्शन सभी व्यर्थ हो जाते। माता अशान्त पुत्र को गोदी में लिये कहती थीं, "बहुत सिर धुनकर मैंने महादेव के निकट एक पुत्र माँगा था, परन्तु उन्होंने भेज दिया एक भूत को।"

बहुत सोचविचार कर लड़के को शान्त रखने के लिए उन्होंने एक उपाय का आविष्कार किया। 'शिव' मन्त्र का जप करते हुए सिर पर जल डाल देते ही बालक एकदम शान्त हो जाता था। कभी उसे डराते हुए भुवनेश्वरी देवी कहती थीं—"देख बिले, वैसी नटखटी करेगा तो शिव तुझे कैलास नहीं जाने देंगे।" बालक भी भय से माता के मुख की ओर देखते हुए चुप हो जाता था।

परवर्ती काल में बिले के बचपन के उपद्रवों की बात पाश्चात्य शिष्यों को बताते हुए भुवनेश्वरी देवी ने गर्व के साथ कहा था—"क्या कहूँ, उसे सम्हालने के लिए दो नौकरानियाँ साथ-साथ घूमती थीं।" उन्होंने और भी कहा था—"बचपन से ही नरेन के भीतर एक बड़ा दोष था। क्रोध आने पर उसे हिताहित का ज्ञान नहीं रहता था; घर के आसबाब तोड़फोड़ डालता था।"

बिले कुछ बड़ा हो गया, तीन चार साल की अवस्था थी। माँ बाप ने

साथ घोड़ा गाड़ी में घूमने निकला। पिता ने पूछा—"बिले, तू बड़ा होकर क्या बनेगा, बता।"

बिले ने सिर उठाकर उत्तर दिया—"मैं साईस या कोचवान बनूगा।" जरी की पगड़ी पहना हुआ कोचवान नरेन्द्र के सामने एक विस्मयजनक व्यक्ति था। वेगवान् दो तेजस्वी अश्वों को संयत रखकर चलाना क्या मामूली बात है।

बचपन में ही गरीब दुःखी, साधु-सन्यासी के प्रति नरेन्द्रनाथ का विशेष आकर्षण था। गरीब देखते ही कोई दूसरी वस्तु न पाने पर वह अपनी पहनी हुई धोती ही खोलकर दे देते थे। और उसी से उन्हें परम तृप्ति मिलती थी।* समय-समय पर कौपीन पहनकर सन्यासी बनना वह पसन्द करते थे।

माँ के मुख से रामायण की कथा सुनकर नरेन्द्रनाथ को रामसीता के प्रति बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई थी। बाजार से सीताराम की मूर्ति खरीद लाकर छत के ऊपर की छोटी कोठरी में वह एकान्त में पूजा किया करते थे।

घर में बहुत से पालतू पक्षी, बकरे, मयूर, काकातुआ, कबूतर, विलायती सफेद चूहे तथा एक दुधारु गाय आदि थे। फिर एक बन्दर भी था। दो तेज़ घोड़े भी थे। सभी से नरेन्द्र का बहुत स्नेह सम्बन्ध था। साईस और कोचवान् इनके अन्तरंग मित्र थे। अनेक प्रकार के सुख दुःख के वार्तालाप इनसे होते थे। एकदिन साईस ने कहा,—'विवाह करना बड़ी विपत्ति का काम है, विवाह के दूसरे दिन से ही मेरे घर में अशान्ति और दुःख का

---

* स्वामी जी ने अमेरिका से एक पत्र में लिखा था—"नहीं, मैं तत्व-जिज्ञासु नहीं हूँ, दार्शनिक भी नहीं हूँ। नहीं, नहीं, मैं साधु भी नहीं हूँ। मैं गरीब हूँ और गरीबों को मैं प्यार करता।" वे पृथ्वी पर के सारे गरीबों के लिए आँसू बहाते थे। गरीबों का कल्याण-साधन ही उनके जीवन का श्रेष्ठ व्रत रहा।

राज फैला हुआ है।" सहानुभूति से नरेन्द्र का हृदय भर गया। सच ही तो विवाह ही सारे दुःखों का कारण है। रामचन्द्र को जो इतने दुःख-कष्ट सहने पड़े थे वह भी तो विवाह करने के कारण ही था। बालक का मन विवाह के विरुद्ध एकदम विद्रोही हो उठा। वे जो रामसीता की पूजा करते हैं ये भी तो विवाहित थे। तो कैसे इस प्रकार के रामसीता की वे पूजा कर सकते हैं? अव्यक्त वेदना से उनका हृदय, मन भर गया। कुछ निर्णय न कर सकने के कारण वे माँ के पास पहुँचे। माँ की छाती में मुँह छिपाकर रोते हुए नरेन्द्रनाथ ने अपने मन की वेदना जतायी। सान्त्वना देते हुए भुवनेश्वरी देवी बोलीं,—'इसमें क्या हुआ है बिले, तो तू शिवपूजा करना।"

वे सन्ध्या के अल्प अन्धकार में छत के घर के भीतर गये; सीताराम की युगल मूर्ति की ओर कुछ देर तक एकटक देखते रहे। उसके बाद दोनों हाथों से उठाकर सीताराम की मूर्ति को उन्होंने सड़क पर फेंक दिया। दूसरे दिन वहाँ शिव की मूर्ति बैठा दी। उस मूर्ति के सामने बैठकर वह बहुत देर तक आँख मूँदे ध्यान करते रहे। एकदिन साथियों के साथ वह खेल के बहाने शरीर में भस्म लगाकर ध्यान में बैठ गये। कुछ देर के बाद एक लड़का 'साँप साँप' चिल्ला उठा। सभी साथी दरवाजा खोलकर भाग गये, किन्तु नरेन्द्रनाथ ध्यान मग्न हो बैठे रहे। साँप या हल्ला कुछ भी उन्हें सुनाई न पड़ा। हल्ला सुनकर घर के लोग दौड़ आये। साँप देखकर सभी को डर हुआ। अब उपाय क्या है? बिले को कैसे बचाया जाय? साँप को भगाने की चेष्टा की जाय तो शायद वह उल्टे हानि कर बैठे, इस डर से लोग चुपचाप खड़े रहे।

थोड़ी देर बाद ही वह साँप फण समेट कर धीरे धीरे चला गया। नरेन्द्रनाथ उस समय भी ध्यान मग्न थे। उन्हें पकड़कर बाहर लाया गया। सब सुनकर उन्होंने कहा,—'मुझे तो कुछ भी पता नहीं था।"

"नरेन्द्र ध्यानसिद्ध महापुरुष है" ऐसा रामकृष्ण देव ने कहा था।

"जिस दिन यह जान जायगा कि यह कौन है, उस दिन यह संसार में नहीं रहेगा, दृढ़ संकल्प के बल पर उसी समय योग मार्ग से शरीर छोड़ देगा।"

विवेकानन्द ने छुआछूत के विरुद्ध युद्ध घोषणा की थी।*—बचपन से ही उनमें अविवेक और जातिविचार के सम्बन्ध में विशेष कौतूहल था। उसी बचपन में वृद्ध की तरह अनेक प्रश्न उठाकर वे माँ को परेशान कर डालते थे।—नौकरानी चौके में चली जाये या कोई छू दे तो क्या होता है? दूसरे का छुआ अन्न खाने से जाति कैसे चली जाती है?"—ऐसे और भी सैकड़ों प्रश्न।

विश्वनाथ दत्त के पास विभिन्न जातियों के मुवक्किल आते थे। वह बहुत ही शौकीन तथा ताम्रकूट-सेवी थे। ब्राह्मण, शूद्र, मुसलमान आदि विभिन्न जातियों के मुवक्किलों के लिए हुक्के पृथक्-पृथक् थे। नरेन्द्रनाथ के लिए इस प्रकार हुक्का विभाजन बहुत ही कौतूहल का विषय था। खासकर जब उन्होंने सुना कि एक एक जाति के हुक्के से दूसरी जाति का मनुष्य तम्बाकू पी ले तो उसकी जाति चली जाती है। एकदिन मुवक्किल लोग धूम्रपान कर चले गये, ठीक उसी समय नरेन्द्रनाथ उस कमरे में जाकर हर एक हुक्के में मुँह लगाकर धूआँ खींचने लगे। विश्वनाथ दत्त ने उस घर में आकर उन्हें इसी अवस्था में देखते हुए हँसकर पूछा—"क्या हो रहा है बिले?" नरेन्द्रनाथ ने निःसंकोच उत्तर दिया—"देखता हूँ जाति न मानने

---

* परवर्ती काल में स्वामीजी ने कहा था—"हिंदू धर्म विचार मार्ग में नहीं, ज्ञान मार्ग में भी नहीं, केवल छुआछूत मार्ग में है। मुझे मत छुओ—बस! छुआछूत एक तरह का मानसिक रोग है। छुआछूत हिंदू का धर्म ही नहीं है। हमारे शास्त्र में इसका उल्लेख भी नहीं है। यह एक अनादि कुसंस्कार है, जिसने जातीय कर्मशक्ति को हर एक क्षेत्र में रोक दिया है। यथार्थ में धर्म अब हमारे चौके में घुस गया है।" छुआछूत ऐक्य बोध का विरोधी है।

से क्या होता है?" "अरे, ऐसी नटखटी!"—कहते हुए विश्वनाथ दत्त हँसकर चले गये।

स्वतन्त्रता प्रिय, निडर, दृढचेता, सदाप्रफुल्ल तथा खेलकूद में मस्त नरेन्द्रनाथ के भीतर बचपन से ही एक विशेष शक्ति का विकास दिखाई पड़ता था। पाँच वर्ष की अवस्था में नरेन्द्र का विद्यारंभ हुआ और उसके एक साल बाद ही वह विद्यालय में भेज दिये गये। नये स्थान में बहुत से नये साथी पाकर नरेन्द्रनाथ बहुत ही प्रसन्न हुए। थोड़े दिनों के भीतर ही उनके मुख से कुछ अश्लील शब्द सुनकर विश्वनाथ दत्त ने पुत्र को विद्यालय भेजना बन्द करके घर में ही शिक्षक रखकर उनकी पढ़ाई का प्रबन्ध किया। कई कुटुम्बियों के लड़के भी उनके साथी हुए। खेलकूद में नरेन्द्रनाथ को बड़ा आनन्द मिलता था। राजा-वजीर का खेल होता था, नरेन्द्रनाथ राजा बनते थे। सर्वत्र ही वह दलपति होते थे। दोपहर भर शरारत चलती थी। घर के सभी लोग परेशान थे। एकदिन आँखमिचौनी का खेल खेलते समय एकायक पैर फिसल जाने से वह दो-मंजिल की सीढ़ी पर से लुढ़कते हुए नीचे आ गिरे और बेहोश हो गये। कपाल फट जाने से खून बहने लगा। डाक्टर बुलाये गये। सभी लोग घबराने लगे। घण्टों बाद बालक होश में आया। दाहिनी आँख के ऊपर वह कटने का चिह्न जीवनभर था।

परवर्ती समय दक्षिणेश्वर में इस घटना की बात सुनकर परमहंस देव ने कहा था—"यदि उस दिन इस तरह उसकी शक्ति घट न जाती तो वह सारी पृथ्वी को एकदम उलट पलट देता।"

अपूर्व मेधा, तीक्ष्ण बुद्धि और श्रुतिधरत्व गुण लेकर नरेन्द्रनाथ ने जन्म ग्रहण किया था। जिसे वह एकबार सुनते या पढ़ते थे वही उन्हें याद हो जाता था। एक दूर-सम्पर्कीय वृद्ध के साथ रात को नरेन्द्रनाथ सोते थे। वह बालक की प्रखर मेधा देखकर रात्रि में मुग्धबोध व्याकरण मुख से ही पढ़ाने लगे। आश्चर्य की बात यह है कि सालभर के भीतर ही वह व्याकरण बालक को कण्ठस्थ हो गया।

रामभक्त अद्भुतकर्मा हनुमान थे नरेन्द्रनाथ के जीवनादर्श के प्रतीक

उन्होंने साहस, बल, शौर्य और पवित्रता के प्रतीक* महावीर की पूजा निखिल भारत के घर-घर में प्रचलित करना चाहा था और कहा था—"देश भर में महावीर हनुमान की पूजा चला दो। दुर्बल हिन्दुओं के सामने इस महावीर का आदर्श रखो। शरीर में बल नहीं है और न हृदय में है साहस—क्या होगा इन जड़पिंडों से! मुझे इच्छा होती है कि घर घर में महावीर की पूजा हो।"

—•:०:•—

दो

सप्तम वर्ष की अवस्था में जब नरेन्द्रनाथ को विद्यासागर महाशय के द्वारा प्रतिष्ठित कलकत्ते के मेट्रोपोलिटन इन्स्टिट्यूशन में भर्ती कर दिया गया उस समय वह अंग्रेजी पढ़ने को एकदम राजी न हुए। "वह विदेशी भाषा है, उसे क्यों पढ़ूँगा। उसके बदले अपनी भाषा ही सीखना अच्छा है"—

---

* दास्यभाव के जीवित प्रतीक महावीर के सम्बन्ध में देशवासियों के प्रति स्वामी विवेकानन्द की उक्ति है—"महावीर का चरित्र ही अब तुम्हें आदर्श मानना होगा। देखो, राम की आज्ञा से वे सागर लाँघकर चले गये। जीवन मृत्यु की ओर दृष्टि ही नहीं, महान् जितेन्द्रिय और महान् बुद्धिमान् थे वे। दास्यभाव के इस आदर्श में तुम्हें अपने-अपने जीवन का गठन करना होगा। हनुमान् में एक ओर जैसे सेवाभाव था, दूसरी ओर वैसे ही त्रिलोक-सन्त्रासी सिंह-विक्रम! राम के हित के लिए जीवन देने में कुछ भी संकोच नहीं था। रामसेवा को छोड़कर अन्य सभी विषयों में उपेक्षा—ब्रह्मत्व, शिवत्व लाभ तक में भी उपेक्षा! रघुनाथ का आदेश पालन ही था जीवन का एकमात्र व्रत! इसी प्रकार एकनिष्ठ होना चाहिए।

यही उनकी बात थी। बालक के मन में विदेशी भाषा के प्रति ऐसा स्वाभाविक विराग और अश्रद्धा का कारण क्या था, उसे कहना कठिन है। आरम्भ में बहुत कहने-सुनने पर भी उन्हें अंग्रेजी पढ़ने को राजी करना सम्भव नहीं हुआ। इस तरह कई महीने बीत गये। बाद में जब उनके मन में परिवर्तन आया तो वह बड़े उत्साह से अंग्रेजी पढ़ने लगे। सुना गया है कि उन्होंने अपनी माता के पास आरम्भ में अंग्रेजी वर्णमाला पढ़ी थी।

नरेन्द्रनाथ की दुर्दमनीय शक्ति का विकास केवल स्कूल-पाठ्य पुस्तकों में ही सामाबद्ध नहीं था। उनकी चंचलता, उपद्रव और बहुमुखी प्रतिभा से शिक्षक तथा सहपाठी परेशान हो जाते थे। उनकी स्मृति शक्ति इतनी प्रबल थी कि विद्यालय का पाठ कंठस्थ करने में बहुत ही अल्प समय लगता था। बाकी समय को कैसे बितायें यह एक समस्या थी।

एक दिन की घटना है। मास्टर महाशय भूगोल पढ़ा रहे थे। नरेन्द्रनाथ से एक प्रश्न पूछा गया। उन्होंने उसका उत्तर दिया। किंतु शिक्षक की ऐसी धारणा हुई कि उत्तर ठीक नहीं हुआ। वह बालक को मारने लगे। नरेन्द्रनाथ जितना ही कहे—"मुझसे भूल नहीं हुई है,—मैंने ठीक ही कहा है" उतना ही बेन की मार बढ़ने लगी। वे चुपचाप उसे सहते हुए सिर झुकाकर खड़े रहे। कुछ देर के बाद मास्टर साहब ने अपना भ्रम समझकर नरेन्द्रनाथ से माफी माँग ली।

बचपन से ही नरेन्द्रनाथ भय किसे कहते हैं, नहीं जानते थे। हौए का भय, भूत का भय, ब्रह्म-राक्षस का भय वह हँसकर उड़ा देते थे। ऐसे ऐसे डर दिखाकर उन्हें किसी काम से रोकना सम्भव नहीं था।

'किसी ने कहा है' केवल इतने मात्र से किसी बात पर विश्वास करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। बचपन से ही किसी का प्रत्यक्ष प्रमाण पाये बिना वह विश्वास नहीं करते थे।

नरेन्द्रनाथ खेलकूद में उस्ताद थे। रसोई में भी वह निपुण थे। फिर उसी वयस में पड़ोस के लड़कों को लेकर वह संगीत का दल, थियेटर पार्टी, व्यायामशाला, कुश्ती का अखाड़ा बनाते थे। न जाने और भी क्या क्या!

उनमें इतनी शक्ति थी कि उसे रखने की मानो स्थान ही नहीं पाते थे। हर समय कुछ न कुछ करना ही चाहिए। उन्होंने कलकत्ता लाकर गाड़ी बनायी। उस समय कलकत्ते में गैस की बत्ती जल चुकी थी। नरेन्द्रनाथ साथियों को लेकर गैस बनाने के काम में लग गये। गुल्ली-डंडा, टोपधूप, मुर्गा-मुर्गी, लाठी और तलवार का खेल, उछलकूद, तैरना आदि सभी में वे प्रथम स्थान प्राप्त कर लेते थे। वे एक श्रेष्ठ शिल्पी थे।

संन्यासी होने की आकांक्षा उनमें स्वाभाविक थी। बचपन से वे संन्यासी होने का स्वप्न देखा करते थे। गर्व के साथ मित्रों से कहते थे—"मेरे दादा जी संन्यासी थे, जानते हो, मैं भी संन्यासी हो जाऊँगा। मेरे हाथ में संन्यासी होने की एक रेखा है। मैंने एक साधु को हाथ दिखाया तो उन्होंने कहा था।" साथी उनके संन्यासी होने की कहानी सुनकर दंग रह जाते थे।

उनके भीतर संन्यासी का खून था। इनके दादा दुर्गाचरण दत्त २५ साल की अवस्था में विपुल धन, मान, यश आदि का परित्याग कर शिशु-पुत्र विश्वनाथ को छोड़ संन्यासी हो गये थे। देखने में नरेन्द्रनाथ बहुत कुछ अपने दादा के समान ही थे। इस कारण परिवार के लोगों का ख्याल था कि दुर्गाचरण ही शरीर छोड़कर नरेन्द्र रूप में जन्मे हैं।*

नरेन्द्रनाथ की अवस्था जब आठ वर्ष की थी तो एकदिन वह अपने साथियों को लेकर मटियाबुरुज में लखनऊ के भूतपूर्व नवाब वाजिद अली शाह की पशुशाला देखने चले। चाँदपाल घाट से नाव में वहाँ जाना होता है। गंगा के ऊपर सबलोग बहुत आनंद कोलाहल करते हुए चलने लगे, क्योंकि सभी तो बालक ही थे। नाव पर सवार होने का अभ्यास किसी को नहीं था। नाव हिलने-डोलने लगी। लौटते समय एक साथी बालक ने

---

* श्रीरामकृष्ण देव ने जब नरेन्द्रनाथ को संन्यास धर्म में दीक्षित किया था उस समय उनकी अवस्था २५ साल की थी। श्रीठाकुर के शरीर छोड़ने के बाद उन्होंने बराहनगर मठ में आनुष्ठानिक भाव से संन्यास दीक्षा ली थी। उनका बचपन का स्वप्न मूर्तीभूत हुआ था।

एकायक अस्वस्थ होकर नाव में ही उल्टी कर डाली। मुसलमान मल्लाह आग-बबूला होकर मारने को उतारू हुए। वे डॉटने लगे कि नाव साफ कर देनी होगी, नहीं तो किसी को नाव से उतरने नहीं दिया जायेगा। बालकों ने कहा—'रुपया देता हूँ किसी से साफ करा लेना।' परंतु मल्लाहों ने उनकी एक न सुनी। झगडा होते होते मारपीट होने की नौबत आ गयी। सारे मल्लाह एकदल के थे। वे नाव को किसी तरह तीर में नहीं लगाना चाहते थे। इसी शोर-गुल में नरेन्द्रनाथ नाव से कूद पडे। गंगा के किनारे दो गोरे सिपाही घूम रहे थे। वह दौडकर उनके पास गये। उनमें से एक का हाथ पकड कर टूटी फूटी अंग्रेजी में सारी घटना बताकर मदद माँगी और गोरो को खींचकर नाव के पास लाये। गोरे सिपाहियों को देखकर मल्लाहों के होश उड गये। गोरों के छड़ी घुमाकर धमकाते ही उन्होंने नाव को तीर में लगा दिया। सभी बालक नाव से उतर पडे। नरेन्द्रनाथ के दुर्जय साहस और उपस्थित-बुद्धि के कारण सभी साथी उन्हें शाबाशी देने लगे—"तुम्हीं ने आज हमलोगों को बचाया है।" नरेन्द्रनाथ को इसकी परवाह ही नहीं थी। आनंद-कोलाहल करते हुए वे सबको लेकर घर लौट आये।...

उनकी उद्दंडता तथा दुःसाहस की और भी बहुत सी घटनायें तो नित्य की घटनायें थीं। इसी कारण जब वह अमेरिका से विश्वविजयी होकर लौट आये तो परिहास करते हुए शिष्यों से कहते थे—"बचपन में मैं बहुत ही उद्दंड था। नहीं तो क्या मैं इस तरह सारी दुनियाँ घूम आ सकता था?"

उनके अन्तर में जो विराट् पुरुष निवास करते थे उन्हीं की सक्रिय शक्ति के प्रभाव से बचपन से ही वह महान् तेजस्वी थे। वह शक्ति अनेक प्रकार से प्रकट हो पडती थी। केवल ज्योतिर्मंडल के ऋषि ही नहीं, बुद्ध, शंकर, नेपोलियन, बाल्मीकि, व्यास आदि महान् आत्मायें मानो नरेन्द्रनाथ के भीतर उत्पन्न हुई थीं। इसी कारण उनके भीतर विपुल आध्यात्मिक शक्ति का विकास हुआ था,—व्यष्टिमुक्ति के लिए नहीं, समष्टिमुक्ति की साधना, दया,

उदारता, परदुःखकातरता, साम्य, मैत्री, स्वाधीनता, आत्मविश्वास, तेज, वीर्य, स्थिरता, धैर्य, दैहिक और मानसिक बल—ऐहिक और पारत्रिक ज्ञान—सबसे ऊपर अप्रतिद्वन्द्वी नेतृत्व का भाव। धर्म, समाज तथा राष्ट्र में उन्होंने आगे चलकर जिस विप्लवी आन्दोलन की सृष्टि की थी उनके बाल्य जीवन में यह मुकुलित होते दिखाई पड़ता था। बचपन में छोटी बड़ी सैकड़ों घटनाओं तथा कार्यों की समष्टिरूप थे—भावी विवेकानन्द।

स्कूल का पाठ तैयार करने में उन्हें अधिक समय की आवश्यकता नहीं होती थी। बाकी समय वह अपने वयस के अनुसार अनेक विषयों की पुस्तकें पढ़कर अपने ज्ञान-भंडार को समृद्ध करते थे। साहित्य और इतिहास के प्रति उनका झुकाव अधिक था। परीक्षा के दो-तीन मास पहले से वह परीक्षा के लिए तैयार होते थे और हर साल सफलता के साथ उत्तीर्ण हो जाते थे।

उनका शरीर भी बहुत बलिष्ठ था। वयस के बढ़ने के साथ-साथ जिमनास्टिक, मुद्‌गर चलाना, तलवार घुमाना, दण्ड-बैठक, कुश्ती, लाठी चलाना, फुटबाल, तैरना, घुड़सवारी करना आदि में वह विशेष दक्ष हो गये थे।* साथ-साथ रसोई, संगीत, हास-परिहास आदि विषयों में भी वह निपुण

---

* शारीरिक उत्कर्ष लाभ के सम्बन्ध में स्वामीजी की वाणी थी—"शारीरिक दुर्बलता ही हमारी दुर्दशा का एक प्रधान कारण है। देश के युवकों को सबसे पहले बलशाली होना होगा। धर्म का स्थान बाद में। तुमलोग बलवान् हो जाओ—तरुण भाइयों के प्रति मेरा यही उपदेश है। तुम्हारी उमर में गीता पाठ की अपेक्षा फुटबाल का खेल ही तुम्हें स्वर्ग के अधिक समीप पहुँचा देगा। बलवान् शरीर से जब तुमलोग मनुष्य की तरह सीधे और दृढ़ता के साथ खड़े हो सकोगे तभी उपनिषद् और आत्मा की महिमा अच्छी तरह समझ सकोगे। इस कारण युवकों के चरित्र गठन के लिए चाहिए—लोहे के समान पेशियाँ और फौलाद के समान स्नायुओं के भीतर वज्र कठिन मन। चाहिए— वीर्य, मनुष्यत्व, क्षात्रवीर्य के साथ ब्रह्मतेज।

थे। विश्वनाथ दत्त अपने पुत्र के जीवन के पूर्ण विकास के लिए हर तरह से सहायता देते थे।

* * *

नरेन्द्रनाथ १४ वर्ष के हुए। मेट्रोपलिटन विद्यालय की वह तीसरी कक्षा के छात्र थे। विश्वनाथ दत्त किसी काम से तथा हवा बदलने के लिए मध्यप्रदेश (रायपुर) चले गये। कुछ महीनों के बाद उन्होंने अपने परिवार के लोगों को बुला भेजा। सबको ले जाने का भार बालक नरेन्द्रनाथ के ऊपर पड़ा।

रायपुर में कुछ मास तक रहने के फलस्वरूप सभी के देहमन की विशेष उन्नति हुई। वहाँ कोई स्कूल नहीं था। इस कारण विश्वनाथ दत्त ने स्वयं ही पुत्र की शिक्षा का भार लिया। स्कूल की पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त इतिहास और साहित्य आदि अनेक विषय वह पुत्र को सिखाने लगे। विश्वनाथ बाबू के पास अनेक विशिष्ट व्यक्ति आया करते थे। अनेक विषयों की आलोचना होती थी। नरेन्द्रनाथ को भी इन आलोचनाओं में शामिल होकर अपने स्वतन्त्र मतामत प्रकट करने का अवसर मिलता था। इस तरह कुछ दिनों में नरेन्द्रनाथ ने अनेक विषयों का गंभीर ज्ञान अर्जित कर लिया। केवल इतना ही नहीं, उनके भीतर दृढ़ आत्मविश्वास तथा मर्यादाबोध जाग उठा। वह विभिन्न विषयों में प्रसिद्ध लेखकों के अनेक ग्रन्थ पढ़कर उनके विचारों से परिचित हुए। अनेक विषयों की आलोचना करने की विशेष शक्ति का प्रथम विकास रायपुर में ही हुआ था। विश्वनाथदत्त के मित्र नरेन्द्रनाथ की असाधारण शक्ति और बुद्धि का परिचय पाकर उनके उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में मुक्तकण्ठ से प्रशंसा किया करते थे। नरेन्द्रनाथ सभी के विशेष प्रियपात्र बन गये थे।

दो वर्षों के बाद विश्वनाथदत्त सपरिवार कलकत्ता लौट आये। नरेन्द्रनाथ के शरीर और मन की यथेष्ट उन्नति हुई थी। दो साल से उनका स्कूल छूटा हुआ था। इस कारण मैट्रिक क्लास में भर्ती होने में अनेक बाधाएँ उपस्थित

हुई। परन्तु उन सब बाधाओं का अतिक्रमण कर विशेष अनुमति से वह मैट्रिक क्लास में बैठ ही सके। तीन वर्षों का पाठ्य एक वर्ष में समाप्त करना था। कठोर परिश्रम और लगन के साथ तैयार होकर वह परीक्षा देने बैठे। उन्होंने एक समय कहा था—"प्रवेशिका परीक्षा के दो-तीन दिन ही बाकी थे। देखा कि रेखागणित कुछ भी पढ़ा नहीं गया है। मैं रातभर जागकर उसे पढ़ने लगा और २४ घंटों में ४ खण्ड रेखागणित पढ़ कर परीक्षा दे आया।" पास अच्छी तरह ही हुए। उस साल उस स्कूल के मैट्रिक परीक्षार्थियों में केवल वही प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो सके।

मेट्रोपलिटन में पढ़ते समय विद्यालय के एक अनुष्ठान के समय उनके भीतर के 'वक्ता विवेकानन्द' ने आत्मप्रकाश किया। स्कूल के पुरस्कार वितरण तथा एक वृद्ध शिक्षक के विदाई अभिनन्दन के लिए सभा थी। सुवक्ता सुरेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय सभापति थे। उनके सामने खड़े होकर भाषण देने का साहस किसी में नहीं हुआ। अन्त में लोगों के विशेष अनुरोध से कुछ कहने के लिए नरेन्द्रनाथ खड़े हुए। विशुद्ध अंग्रेजी में आधे घंटे तक सुन्दर भाषण देकर जब वह बैठ गये तो चारों ओर से उच्च प्रशंसा ध्वनि उठने लगी। सभापति ने केवल उनके भाषण की ही प्रशंसा नहीं की, वक्ता के उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में भी स्पष्ट इंगित दिया था।

* * *

नरेन्द्रनाथ प्रेसिडेन्सी कालेज में भर्ती हुए, परन्तु दूसरे साल जनरल एसेम्बिलिज इन्स्टिट्यूशन—वर्तमान स्काटिश चर्च कालेज में पढ़ने लगे। प्रवेश के साथ ही उनके सामने एक महान् जगत् का द्वार खुल गया। उनके चिन्ता जगत् में भारी हलचल मच गयी। हर विषय को वह विश्लेषणकारी के मन से देखने और सुनने लगे। नयी-नयी चिन्ताओं, नयी-नयी समस्याओं ने उनके हृदय पर अधिकार जमा लिया। वह लगन से दर्शनशास्त्र और साहित्य पढ़ने लगे। मिल आदि पाश्चात्य तार्किकों, ह्यूम, हार्बर्ट स्पेन्सर

आदि दार्शनिकों के सूक्ष्म विचारों से वह परिचित हुए। शेली की कविता, हेगेल के दर्शन ने उनके मनोराज्य पर विशेष प्रभाव का विस्तार कर लिया। वह भारतीय कवियों के दृष्टिकोण तथा उस समय के समाजसुधारकों के विचारों से परिचित हुए तथा ब्राह्म नेताओं के निकट भी जाने लगे।

उनके मन में ऐसा प्रश्न भी जगा कि इस दृश्यमान संसार की सुनियन्त्रित परिकल्पना के पीछे क्या ऐसी कोई विराट् शक्ति है जिसके इशारे से यह जडजगत परिचालित हो रहा है? सबसे ऊपर, मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या है? ऐसी जिज्ञासा ने भी उनके अन्तर पर अधिकार कर लिया। संसार में इतने दुःख और वैषम्य क्यों हैं? धनिक के महल के पास ही गरीब की झोपड़ी, एक राष्ट्र धन, ऐश्वर्य बल से समुन्नत है तो दूसरी जाति दुःख, दुर्दशा आदि से पददलित होकर मृतप्राय क्यों है? ऐसी चिन्ताएँ उनके हृदय में उत्कण्ठा उत्पन्न करने लगीं। व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राष्ट्रीय विषमताओं ने उनके हृदय को विद्रोही बना दिया।

अवस्था की वृद्धि के साथ-साथ उनकी ज्ञान-स्पृहा बढ चली। वर्ड्सवर्थ के काव्य ने उनके मन पर गंभीर प्रभाव उत्पन्न किया। डेकार्टे के अहंवाद, ह्यूम और बेन के नास्तिक्यवाद, डारविन के उत्कर्षवाद और स्पेन्सर के अज्ञेयवाद ने नरेन्द्रनाथ के हृदय में विप्लव उपस्थित कर दिया। यहाँ तक कि प्राचीन आरिस्टाटल (अरस्तू) के मत के प्रति भी वह उपेक्षा नहीं दिखा सके। फिर ऐसा दिन भी आया जब उन्हें रूँधे हुए कण्ठ से कहना पड़ा था—"जो कुछ मैंने पढा है, यदि मैं उसे एकदम भूल जा सकता!" परन्तु यह भाव सामयिक था। उनकी ज्ञानस्पृहा सहजात थी। उनके जन्मगत संस्कार और धर्मविश्वास, सांसारिक समस्याओं तथा विषमताओं ने उनके हृदय को मथित कर तुमुल संघर्ष उत्पन्न कर दिया था। इन सबों का समाधान खोज निकालने के लिए वह अत्यन्त अशान्त हो उठे।

पाश्चात्य दर्शनों के द्वारा वह विशेष रूप से प्रभावित होने पर भी प्राच्य और प्रतीच्य दर्शनों का तुलनामूलक अध्ययन करके उन्होंने कहा था—"हिन्दू दर्शन इतिहास के पूर्व युग में जिस परम सत्य की उपलब्धि करके स्थिर सिद्धान्त में

पहुँचे हैं पाश्चात्य दार्शनिकों ने उस मत का बहुत क्षीण आभास ही पाया है—पूर्ण रूप की उपलब्धि वे अभी तक नहीं कर सके हैं।"

* * *

प्रतिभामण्डित सदा आनन्दमय युवक नरेन्द्रनाथ थोड़े ही दिनों में कालेज के छात्रों तथा अध्यापकों के विशेष प्रिय पात्र हो गये। उनकी अतुलनीय प्रतिभा, पाण्डित्य, स्वाधीन चिन्ता, तर्कशक्ति, भाव प्रकट करने की शैली तथा मधुर संगीत* सभी को मुग्ध करते थे। जहाँ कहीं भी वह जाते थे वहीं उनका व्यक्तित्व प्रगट हो पड़ता था। जिसमें हाथ डालते थे वही अनिन्द्य-सुन्दर हो जाता था। रसिक, आमोदप्रिय, प्राणशक्ति से विपुल प्रसन्नवदन नरेन्द्रनाथ दल के नायक थे। वह जहाँ कहीं भी, जिस किसी से भी मिलते थे सभी के हृदय में आनन्द की लहर उठा देते थे। कालेज के सभी छात्र उनके मित्र थे। सभी को वह अपने प्राण से भी प्रिय समझते थे। सभी उनके ऊपर हर विषय में निर्भर करते थे। उनके चरित्र का श्रेष्ठ गुण था पवित्रता। उससे वह अणुमात्र भी विच्युत नहीं होते थे। वेश-भूषा में भी वह बहुत सीधे सादे थे। शरीर मन वाणी से पवित्रता ही थी उनके जीवन का आदर्श। वह जो कुछ करते थे पर्याप्तमात्रा में करते थे। इस कारण मित्र लोग प्रायः

* विश्वनाथ दत्त ने घर में बड़े बड़े उस्तादों को रखकर नरेन्द्रनाथ को उच्चाङ्ग के संगीत सिखाये थे। उनका सुमधुर कण्ठ सभा के हृदय में आनन्द देता था। श्रीरामकृष्ण देव उनका संगीत सुनना इतना अधिक पसन्द करते थे कि गाना सुनते हुए उनका मन अतीन्द्रिय राज्य में चला जाता था—वह समाधिस्थ हो पड़ते थे (अपने शरीर को दिखाकर)—"इसके भीतर जो है वह नरेन का गाना सुनकर फुफकार उठता है।" अर्थात् उनकी कुलकुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो उठती है। नरेन्द्रनाथ जिस प्रकार संगीत में सुदक्ष थे उसी प्रकार तबला, पखावज तथा सितार बजाने में भी वह सिद्धहस्त थे। वह नृत्य भी अच्छी तरह जानते थे।

उन्हें अत्यधिक पवित्रतावादी* कहते थे। अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन, नियमित ध्यान धारणा और प्रार्थना के फलस्वरूप उनके शरीर और मन में ऐसे एक आध्यात्मिक तेज का विकास हुआ था जिसके सामने सभी लोग सिर झुकाते थे।

माता पिता की शिक्षा तथा आदर्श जीवन ने नरेन्द्रनाथ के मन के ऊपर प्रभूत प्रभाव का विस्तार किया था। पिता की विद्याबुद्धि, सहृदयता, दया, उदारता, स्वाधीनचिन्ता, परदुःखकातरता तथा महानुभावता नरेन्द्रनाथ को मुग्ध करती थी। उनकी जननी शिक्षित और महीयसी महिला था। धर्मप्राणता और वदान्यता उनके चरित्र की विशिष्टता थी। परवर्ती काल में नरेन्द्रनाथ ने कहा था—"मेरी माँ मेरे जीवन और कर्म की अविराम प्रेरणा-प्रस्रवण स्वरूप थीं।"

विश्वनाथ दत्त की शिक्षा की शैली अनोखी थी। वह कभी पुत्र का शासन और ताडन नहीं करते थे। हर एक कार्य के भीतर ही वह पुत्र का आत्ममर्यादा बोध जगा देते थे। नरेन्द्रनाथ ने एकदिन क्रोध के कारण माँ के साथ झगड़ा करते हुए उन्हें कटु वचन कहा था। जब विश्वनाथ बाबू ने सुना तो पुत्र से कुछ नहीं कहा। केवल पुत्र जिस कमरे में रहता था उसके दरवाजे के ऊपर की दीवाल पर बड़े-बड़े अक्षरों में उन्होंने लिख दिया—"नरेन बाबू ने अपनी माँ से आज ऐसी ऐसी बातें कही हैं।" मित्र लोग आकर उस लेख को देखते थे। आत्मग्लानि और लज्जा से नरेन्द्र का सिर झुक गया।

एक दूसरे दिन की घटना है। पुत्र के प्रति पिता के कर्तव्य के सम्बन्ध में विश्वनाथ बाबू विशेष सावधान थे तथापि नरेन्द्रनाथ उससे सन्तुष्ट नहीं

---

* अमेरिका से उन्होंने लिखा था— 'मेरी उमर जब बीस साल की था तब मेरे भीतर समझौते का भाव बिल्कुल नहीं था। हर विषय में मेरी उग्रता थी। कलकत्ते की जिस पटरी पर थियेटर था उस पटरी पर मैं कभी नहीं चलता था।'

होते थे। पिता की उदारता, गरीब दुःखियों को दान और बन्धु प्रीति के कारण समय समय पर लोगों को खिलाने पिलाने तथा स्वजन-बन्धुओं का पालन पोषण करने में आय की अपेक्षा व्यय अधिक हो जाता था। अगले दिन के लिए कुछ भी संचय नहीं रह जाता था। पत्नी-पुत्रों के भविष्य की भावना भी उनमें नहीं थी। कुछ उमर बढ़ने पर नरेन्द्रनाथ परिवार के भविष्य के विषय में सोचकर चिन्तित रहते थे। एकदिन उन्होंने पिता से कहा—" आपने मेरे लिए क्या किया है?" पिता ने पुत्र के मुँह की ओर ताका और उसके बाद कहा—"दर्पण में जाकर अपना चेहरा देख। उसी से तू समझ जायेगा मैंने तेरे लिए क्या किया है।"

सिर झुकाये नरेन्द्रनाथ चले गये। उन्होंने पिता का इशारा समझ लिया। "उन्होंने तो कुछ कम नहीं दिया है। उदार हाथों से उन्होंने मेरे जीवन को भर दिया है।"

—•○•—

तीन

हेस्टी साहब उन दिनों जनरल असेम्ब्लिज के अध्यक्ष थे। पवित्र जीवन, उदार स्वभाव, पांडित्य तथा बहुमुखी प्रतिभा के कारण वह छात्रों के विशेष श्रद्धा के पात्र थे। साहित्य के अध्यापक अस्वस्थ थे इस कारण वह छात्रों को साहित्य पढ़ाने आये। वर्डसवर्थ की कविता पढ़ाने लगे। प्राकृतिक सौन्दर्य के दर्शन से पूर्णतया अपने को भूलकर कवि का मन अतींद्रिय राज्य में जाकर कहाँ तक समाहित हो जाता है उसकी व्याख्या करते हुए साहब ने कहा—"उस प्रकार की अवस्था प्राप्त करना बहुत ही दुर्लभ है। मन की पवित्रता

तथा किसी विशेष वस्तु के प्रति एकाग्रता के फलस्वरूप वैसी अवस्था प्राप्त हो सकती है। मैंने दक्षिणेश्वर में एकमात्र परमहंस देव के वैसी अवस्था होते देखा। उनकी वह अवस्था एकदिन देख लोगे तो तुम लोग भी समाधि क्या चीज है समझ सकोगे।"

हेस्टी साहब के मुख से नरेन्द्रनाथ ने पहले पहल श्रीरामकृष्ण देव की बात सुनी, किन्तु उसकी प्रतिक्रिया क्या हुई थी वह जाना नहीं गया।

नरेन्द्रनाथ हेस्टी साहब से दर्शन शास्त्र पढ़ते थे। छात्र की प्रतिभा से मुग्ध होकर साहब ने एकदिन कहा था—"नरेन्द्रनाथ दत्त यथार्थ में एक प्रतिभावान् छात्र है। मैं अनेक स्थान देख आया हूँ पर इसके ऐसा छात्र कहीं भी नहीं देखा, यहाँ तक कि जर्मन विश्वविद्यालय में दर्शन के छात्रों में भी नहीं। यह युवक संसार में निश्चय ही एक नाम कमायेगा।"...

* * *

अन्तर्द्वन्द्व के घात प्रतिघातों से प्रपीड़ित नरेन्द्रनाथ सत्य धर्म लाभ करने के लिए ब्राह्म समाज में और भी अधिक आगमनागमन करने लगे। केशवचन्द्र समाचार पत्रों तथा भाषणों में श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक जीवन और वाणी के सम्बन्ध में आलोचना करते थे। उससे कलकत्ते के जनसाधारण श्रीरामकृष्ण के विषय में अनेक बातें जान गये। ब्राह्म नेताओं के साथ घनिष्ठ भाव से मिलकर, समाज की प्रार्थना आदि में योगदान करके नरेन्द्रनाथ बहुत ही आनन्द पाते थे और रविवार की उपासना के समय मधुर ब्रह्म संगीत गाकर सबको आनन्द देते थे। थोड़े दिनों के ही भीतर वह ब्राह्म नेताओं के विशेष प्रिय पात्र हो गये तथा उस समाज के सभ्य बनकर निराकार सगुण ब्रह्म की उपासना में व्रती हुए। बचपन से ही उन्हें ध्यान करने का अभ्यास था। इस कारण मन को संयत रखने के लिए उन्हें अधिक चेष्टा नहीं करनी पड़ी। इस भाव से ब्रह्म ध्यान में मग्न होकर वह बहुत ही शान्ति पाते थे।

सन्देहवाद उनके मन में ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में कितना ही सन्देह

क्यों न पैदा करें, यह जगत् क्षणिक है, जीवन स्वप्न के समान और सांसारिक सुख-दुःख की अनुभूति तुच्छ है इस विषय में निश्चित होने के लिए इस सिद्धान्त ने उन्हें बहुत सहायता दी थी। मरीचिका की तरह अनित्य अस्थायी वस्तुओं के पीछे दौड़ते रहना निरर्थक है—यह चिन्ता उनकी सम्पूर्ण सत्ता को मथित करता था। उनका हृदय विद्रोही हो गया। वह भूमा की खोज में व्याकुल हो गये। वह ब्राह्म समाज में जाते, ब्राह्म नेताओं के धर्म उपदेश सुनते और प्रार्थना आदि में योगदान करते थे। हृदय की अतृप्त वासना लेकर कलकत्ते के विभिन्न धर्म प्राण व्यक्तियों के पास वह जाया करते थे। उनका एकमात्र प्रश्न था कि चिरशान्ति कहाँ है?

ब्राह्म समाज की प्रणालीबद्ध उपासना से उनका मन तृप्त नहीं होता था। वहाँ सभी कुछ दिखावटी थे। वह गम्भीर भाव में डूब जाना चाहते थे। क्रमशः उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि ब्राह्म समाज एक समाज संस्कारक प्रतिष्ठान मात्र है। वह केशवचन्द्र के प्रति श्रद्धा रखते थे। व्याख्यान आदि सुनकर वह उनके प्रति गुणमुग्ध थे। परन्तु वह जो वस्तु चाहते और जिस अवस्था में स्थित होने की चेष्टा करते थे—

"यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते—"*

उस अवस्था में न पहुँचने तक उनके मन में शान्ति नहीं मिल सकती। ब्राह्म समाज में उन्हें वह शान्ति नहीं मिली। अध्ययन चल रहा था। परन्तु हृदय अत्यन्त वेदना से भरा हुआ था। कठोर ब्रह्मचारी का व्रत लेकर वह जमीन पर सोते थे—आहार में तथा वेशभूषा में संयम रखते तथा सारी रात ध्यान करते हुए बिता देते थे। हृदय का आवेग उन्हें अशांत करने लगा।

* जिस आत्मस्वरूप का पाकर दूसरे सासारिक लाभ अधिक नहीं प्रतीत होते, जिस अवस्था में स्थित होने पर महान दुःख से भी चित्त विचलित नहीं होता—गीता ६।२२

वह कहाँ जायँ, कौन उन्हें सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म-लाभ का मार्ग बता देगा?

महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर एक शक्तिमान् पुरुष, बड़े धार्मिक नेता और आचार्य थे। उपासना और ध्यान भजन की सुविधा के लिए महाप उस समय कलकत्ते के निकट गंगा के ऊपर एक नाव में निवास करते थे।

एक दिन नरेन्द्रनाथ ने उन्माद की तरह नाव में प्रविष्ट होकर महर्षि से पूछा—"महाशय, क्या आपने ईश्वर को देखा है?"

सम्भवत महर्षि ऐसे प्रश्न के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने उस युवक की ओर क्षणभर देखकर कहा—"तुम्हारे दोनों नेत्र ठीक योगियों के समान है।" बहुत आशा लेकर नरेन्द्रनाथ महर्षि के पास गये थे, परन्तु कुछ भी न पाकर हताश चित्त से लौट आये। उनके अन्तर की अशान्ति और भी अधिक बढ़ गयी। कहाँ मिलेंगे वह तत्त्वदर्शी पुरुष जो शान्ति का मार्ग दिखा देंगे? प्राचीन आर्य ऋषियों का प्रश्न उन्हें आलोडित करने लगा। यही प्रश्न लेकर शौनक अंगिरा के पास गये थे—"कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति?" ऋषि इस प्रश्न का उत्तर जानते थे। इस कारण उन्होंने कहा था,—"द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति—परा चैवापरा च। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।"* किन्तु कौन उन्हें परा विद्या का मार्ग बता देगा?

* * *

इस अन्तर्द्वन्द्व के समय उनके अन्तर के देवता ने मानो उन्हें मार्ग का इंगित दिया। उन्होंने बाद में कहा था—"यौवन में पदार्पण करने के बाद से प्रत्येक रात में लेटते ही मेरी आँखों के सामने दो कल्पनायें दिख

---

* भगवन्, किस विषय को जानने से संसार के सब कुछ जान जा सकते है? ब्रह्मविद लोग कहते हैं कि दो विद्यायें जानना होती है—परा और अपरा। जिसमें उस अक्षर पुरुष को जाना जा सकता है वही परा या श्रेष्ठ विद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या है—(मुण्डक उपनिषद १।१।४-५)

पड़ती थी। एक में दिखाई पड़ता, मानो मुझे अनेक धन जन मानद मान आदि का लाभ हुआ है। संसार में जो बड़े आदमी कहलाते हैं मानो उनके शीर्ष स्थान में मैं चढ़ गया हूँ। ऐसा लगता था कि वैसा होने की शक्ति मुझमें सचमुच ही है। फिर दूसरे ही क्षण दिखाई पड़ता था, मानो मैं संसार के सर्वस्व का परित्याग कर केवल ईश्वर की इच्छा पर निर्भर रहकर कौपीन धारण, यदृच्छा भोजन और वृक्ष के नीचे रात्रि यापन करके जीवन बिता रहा हूँ। ऐसा भी लगता था कि मैं चाहूँ तो उस ढंग से ऋषि मुनियों की तरह जीवन यापन करने में समर्थ हूँ। इन दो प्रकार के जीवन चित्र कल्पना में उदित होने पर अन्तिम चिन्ता ही हृदय पर अधिकार जमाये बैठती था। मैं सोचता था, परमानन्द लाभ का यही मार्ग है। मैं इसी मार्ग से चलूँगा। उस भूमानन्द के विषय में सोचते-सोचते मेरा मन ईश्वर-चिन्ता में मग्न हो जाता और मैं सो जाता था। आश्चर्य का विषय है, बहुत दिनों तक प्रतिदिन ही ऐसा होता था।"*

उपनिषद् के ऋषि मानो उनके हृदय में बैठकर बताते थे, "न कर्मणा न प्रजया धनेन, त्यागेनैकेन अमृतत्वमानशुः।" अर्थात् कर्म से, पदार्थों से या धन से नहीं, एकमात्र त्याग से ही अमृतत्व का लाभ होता है। उस अमृतत्व लाभ का मार्ग ही मानो उन्हें हाथ के इशारे से बुलाने लगा। उस समय से कुछ पहले या बाद में एक अपूर्व दर्शन ने उनके मनोराज्य में युगान्तर ला दिया। उस समय वह बहुत ध्यान करते थे। सच्चिदानन्द-स्वरूप ब्रह्म का ध्यान

---

* वह और भी एक अद्भुत विषय की उपलब्धि करते थे जो असाधारण विषय था। निद्रा के पूर्व आँख लेटने पर आँख मूँदते ही वह भ्रूमध्य में एक ज्योति विन्दु देखते थे। क्रमशः वह ज्योति विविध रंगों में फैल कर उनका सारा शरीर आच्छन्न कर डालती थी। वह उस अखण्ड ज्योति समुद्र में नहाकर सो जाते थे। बहुत समय के अनन्तर मित्रों से बातचीत कर वह जान गये थे कि सोने के पूर्व उनमें से किसी को उस प्रकार दर्शन नहीं होता था।

उन्हें अच्छा लगता था। उससे उन्हें बहुत अधिक आनन्द मिलता था। एकदिन गम्भीर ध्यान के अनन्तर उस अव्यक्त आनन्द के आवेश में उस समय भी विभोर होकर वह ध्यान के आसन में बैठे थे। अकस्मात् उन्होंने देखा— दिव्य ज्योति से घर भर गया। एक अपरिचित सन्यासी की मूर्ति आविर्भूत होकर निकट ही खड़ी है। उनके अङ्ग पर गैरिक वस्त्र, हाथ में कमण्डलु और मुखमण्डल में स्वर्गीय सुषमा थी। स्थिर, प्रशान्त, अन्तर्मुख और आनन्दमय वह सन्यासी एकदृष्टि से नरेन्द्रनाथ को देखने लगे, मानो कुछ कहेंगे। सन्यासी को अपनी ओर धीरे धीरे अग्रसर होते देखकर वह भय से तुरन्त आसन छोड़ दौड़ते हुए घर से निकल आये, परन्तु दूसरे ही क्षण उन्हें ऐसा लगा—सच ही तो, भय होने का कारण क्या था? मैंने भूल की है। साहस लौट आते ही वह पुनः घर में प्रविष्ट हो गये, परन्तु तब तक वह सन्यासी अदृश्य हो गये थे। बहुत देर तक प्रतीक्षा करने पर भी वह सूक्ष्मदेहधारी सन्यासी फिर दिखाई न पड़े। भागने के कारण पश्चात्ताप से नरेन्द्रनाथ का हृदय भर गया। उस घटना के प्रसंग में उन्होंने बाद में बताया था—"सन्यासी तो मैंने अनेक देखे हैं किन्तु उस प्रकार मुख की अपूर्व कान्ति किसी में कभी नहीं देखी, वह मुख चिरकाल के लिए मेरे हृदय में अङ्कित हो गया है। हो सकता है कि वह भ्रम था, परन्तु मुझे प्रायः यही प्रतीत होता है कि उस दिन मैं बुद्ध देव का दर्शन लाभ करके धन्य हुआ था।*

* * *

नरेन्द्रनाथ के मनोराज्य में प्रचण्ड आँधी चल रही थी। महर्षि की बात से उनका मन शान्त नहीं हुआ। साथ साथ भारत को अनेक समस्यायें उनकी

---

* बुद्धदेव के जीवन का प्रभाव नरेन्द्रनाथ के ऊपर विपुल भाव से पड़ा था। वह भगवान् बुद्ध के हृदय की उदारता तथा महाप्राणता की बहुत प्रशंसा करते थे। उस आदर्श रूपी संन्यासी ने अपने मुक्ति के लिए कुछ भी नहीं किया था, उन्होंने पत्नी, पुत्र, राजसिंहासन आदि सब कुछ छोड़कर मनुष्य

चिन्ता से विरत बन गयी। जातिगत अधिकार और विषमता के वह पक्षपाती नहीं थे। हिन्दू धर्म की संकीर्णता का घेरा तोड़कर जातीय जीवन को जाग्रत कर लेना भी उनकी एक परिकल्पना थी। ब्राह्म समाज का प्रभाव भी उनके चिन्ताजगत में आवर्त उत्पन्न कर रहा था। स्वामी शिवानन्द के रूप में उन्होंने समाज नियम के जो संस्कार किये थे वे प्रथम जीवन में ही उनके हृदय पर अधिकार जमाकर उनके जीवन के अंग बन गये थे। विभिन्न चिन्ताओं के घात प्रतिघात से तथा अन्तर्द्वन्द्व से वह उत्पीड़ित हो रहे थे। इधर एफ० ए० परीक्षा देने के लिए वह तैयार हो रहे थे। इसी समय एक अभावनीय उपाय से श्रीरामकृष्ण देव के साथ उनका मिलन हुआ।

नरेन्द्रनाथ ने केशवचन्द्र के भाषण से तथा उपासना आदि में श्रीरामकृष्ण का नाम सुना था। केशव परिचालित पत्रिका आदि में भी उनकी वाणी और उपदेश पढ़े थे। ठीक उसी समय वह उस मिलन के लिए कहाँ तक प्रस्तुत

मात्र की मुक्ति के प्रशस्त पथ के आविष्कार के लिए कठोर साधना की थी। उस महान् आत्मा के प्रति स्वामीजी के हृदय में अगाध श्रद्धा थी। बुद्धदेव के सम्बन्ध में उनका कथन था—'बुद्ध के हृदय की ओर दृष्टि डालो। यहाँ तक कि एक छोटे छाग शिशु की प्राणरक्षा के लिए वह अपना जीवन देने में भी प्रस्तुत थे। बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय—जीवन देने की बात और क्या कहीं देखी कभी? उनकी विशालप्राणता और कैसा असीम करुणा! सभी के लिए, विशेषतया अज्ञानी और दरिद्र के लिए, उनकी अपूर्व समवेदना ही थी तथागत की श्रेष्ठ महिमा। वेदान्त की नीति को कार्यरूप में परिणत करने के लिए ही बुद्धदेव का आविर्भाव हुआ था। उन्होंने समस्त विशेष सुविधाओं को चूर चूर कर दिया था। आभिजात्य सुविधावाद का ध्वंस कर उन्होंने साम्यवाद का प्रचार किया था। भगवान बुद्ध सर्वश्रेष्ठ मनुष्य थे और थे अपूर्व संघस्रष्टा। संसार में जहाँ कहीं कोई भी ज्ञानरश्मि दिखाई पड़ता है वह इसी महामानव के ज्ञान से निकली है।

थे, हम नहीं जानते। श्रीरामकृष्ण और नरेन्द्रनाथ का मिलन मानो प्राच्य और प्रतीच्य का मिलन, प्राचीन के साथ नवीन का मिलन, समुद्र के साथ नदी का संगम, स्वर्ग के साथ मर्त्य का तथा विश्व के साथ भारत का मिलन था—उसे हम आगे देखेंगे।

नरेन्द्रनाथ की उमर उस समय १८ वर्ष की थी। उन्होंने प्राच्य और पाश्चात्य दर्शनों की तुलनामूलक आलोचना की थी। संशयवाद और नास्तिकवाद के साथ वह परिचित थे। संसार की अनेक समस्यायें उनकी चिन्ता के विषय थीं। यद्यपि वह ऐश्वर्य के क्रोड में लालित पालित, देखने-सुनने लिखने-पढ़ने गाने बजाने तथा भाषण देने में अद्वितीय थे तथापि गरीब-दु:खियों के लिए उनका हृदय रोता था। दयामय भगवान् के राज्य में इतने दु:ख क्यों है?—इस प्रश्न का वह कुछ भी समाधान नहीं पाते थे। संसार में इतनी विषमता, धनी और दरिद्र में ऐसे पर्वत के समान पार्थक्य को किसने बनाया? सभी तो एक ही भगवान् की सन्तान हैं परन्तु ब्राह्मण और चंडाल में ऐसे दुर्लंघ्य अन्तराल की सृष्टि कैसे हुई?—और भी शत शत चिन्तायें उनके तरुण मन को आकुल कर डालती थीं। इधर शिशिर के धोये फूल की तरह उनका जीवन पवित्र था। कमलदल के तुल्य उनके दोनों नेत्र थे। गम्भीर ध्यान में मग्न होकर वह रात पर रात बिता देते थे। रात भर ध्यान करने से उनके सुन्दर नेत्रद्वय लाल हो जाते थे।

यो वै भूमा तत् सुखं, नाल्पे सुखमस्ति।

भूमैव सुखं, भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य*॥ छन्दोग्य उपनिषद् ७।२३।१

आर्य ऋषि की इस वाणी ने उनके तरुण प्राण पर अधिकार कर लिया था। भूमानन्द की खोज के लिए उनका प्राण व्याकुल रहता था। केवल आत्मचिन्ता ही नहीं, आत्ममुक्ति ही नहीं—विश्वमानवों के समस्त दु:खों की

---

* जो भूमा या बृहत् है वही सुखस्वरूप है। खंड वस्तु में सुख नहीं है। भूमा में ही सुख है। भूमा को ही जानने के लिए इच्छा करनी होगी।

मुक्ति के उपाय का उद्भावन करने के लिए उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति को नियोजित किया था। यह थे ज्ञानी, गुणी, आत्मविश्वासी और मुक्तिवादी।

इस प्रकार से नरेन्द्रनाथ का मिलन एक निरक्षर दरिद्र पुजारी ब्राह्मण रामकृष्ण के साथ हुआ। वह दक्षिणेश्वर में भवतारिणी काली की पूजा करते थे। भगवान को छोड़कर उन्होंने जीवन में और कुछ नहीं चाहा था तथा और कुछ न जाना था। वह व्याख्यान नहीं देते और न प्रचार ही करते थे। उन्होंने कोई ग्रंथ नहीं लिखा था। हिमालय की गुफा में वह तपस्या करने भी नहीं गये थे। दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में ही लगभग ३० वर्षों तक रह रहे थे। केशवचन्द्र सेन, विजयकृष्ण गोस्वामी, शिवनाथ शास्त्री आदि ब्राह्म नेता इस रहस्यमय पुरुष के चरणों के पास आकर घण्टों बैठे रहते थे। उनके मुख से ईश्वर प्रसंग मन्त्रमुग्ध की तरह सुनते थे। उनकी भावसमाधि देखकर वे विस्मित होते थे। शास्त्र ग्रन्थ न पढ़कर भी वह ऐसी सुन्दर तत्त्व-कथा—जिसे वे भी नहीं जानते थे—कैसे कहते हैं? देखने में वह उन्मादी के समान प्रतीत होते, पहनने की धोती भी ठीक से सम्हाल नहीं सकते थे किन्तु जब माँ का गाना गाते थे तो श्रोताओं का हृदय रोने लगता था। मानो तीर चुभ गया है।

काली माता ही उनके सामने ईश्वर है। काली माता ही उनके लिए ब्रह्म है। छोटे शिशु की तरह वह सदा माँ माँ पुकारते रहते, माँ का गाना गाते, माँ से बातें करते थे। उनके सामने कालीमाता केवल पत्थर की मूर्ति ही नहीं थी। माँ उनसे बातें करतीं, उनके हाथ से खातीं, फिर बहुत से उपदेश देती थीं। उसी माँ की चिन्ता तथा उस कालीमाता को लेकर ही वह सदा विभोर रहते थे।

* * *

सिमला मोहल्ले के सुरेन्द्रनाथ मित्र श्रीरामकृष्ण को देखकर मुग्ध हो गये थे। उनकी ईश्वर-परायणता, भक्ति विश्वास, भगवत प्रेम, कामिनी-कांचन-त्याग,

बार-बार भाव-समाधि—सब कुछ ही अमानव और अलौकिक थे। उन्होंने उस देवमानव को और भी अधिक घनिष्ठ भाव से पाने के लिए—अपने घर और मोहल्ले को धन्य करने के लिए उस ईश्वरप्रेमिक श्रीरामकृष्ण को घर में आमन्त्रण करके उत्सवानन्द का आयोजन किया। मोहल्ले के लोगों को तथा परिचित मित्रों को उन्होंने निमन्त्रण दिया। उत्सव का अर्थ है आध्यात्मिक समारोह तथा भजन कीर्तन और ईश्वरीय प्रसंग। देव देवियों की महिमा के संगीत सुनते ही श्रीरामकृष्ण का मन एक अद्वितीय लोक में चला जाता और वह सच्चिदानन्द परमब्रह्म के साथ मिलकर समाधिस्थ हो जाते थे। बाहरी ज्ञान विलुप्त हो जाता, रहता केवल आत्मज्ञान—आत्मचैतन्य। उस अवस्था में ही वह ईश्वरीय प्रसंग करते जिसे सुनकर लोग मुग्ध हो जाते थे। सबके मन में दिव्य भाव जाग उठता तथा सबलोग दिव्यानन्द का स्वाद पाते थे।

१८८१ ई० का नवम्बर मास था। सुरेन्द्रनाथ के भवन में कुछ अनुरागी भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण देव का शुभागमन हुआ। एक सुगायक का अभाव प्रतीत हुआ। सुरेन्द्रनाथ पड़ोसी विश्वनाथ दत्त के पुत्र नरेन्द्रनाथ को भजन गाने के लिए बुला लाये। गायक को देखते ही श्रीरामकृष्ण देव चौंक उठे। यही तो ब्रह्मलोक का वह ऋषि है। वह युवक को पहचान गये। मकान के परिचय या मातापिता के परिचय से नहीं। उनके अलौकिक दर्शन ने उनका परिचय बता दिया। वह विह्वल हो गये। वह तो इसी की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे।

नरेन्द्रनाथ ने दिल खोलकर गाया। उनका गाना सुनकर श्रीरामकृष्ण देव 'भावस्थ' हो गये। भजन आदि के समाप्त होने पर श्रीठाकुर ने सुरेन्द्रनाथ और रामदत्त से युवक का परिचय पूछा। एकदिन उसे साथ लेकर दक्षिणेश्वर आने के लिए उन दोनों से अनुरोध किया। उससे भी सन्तोष न होने के कारण उन्होंने नरेन्द्रनाथ को पास बुलाया और स्नेहपूर्ण दृष्टि से वह अपने अन्तर की निधि को देखने लगे। वह तो नरेन्द्रनाथ को और भी अधिक घनिष्ठभाव से पाना चाहते थे। इसीलिए विनती के स्वर से उन्होंने स्वयं ही

नरेन्द्र को एकदिन दक्षिणेश्वर आने के लिए निमंत्रण दिया। शिष्टता के अनुरोध से नरेन्द्रनाथ ने भी जाने का वचन दिया।

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर लौट आये। नरेन्द्रनाथ भी अपने घर चले गये। पर वह परीक्षा का समय था। वह अध्ययन में डूब गये—दक्षिणेश्वर जाना भूल गये। किन्तु श्रीरामकृष्ण वे दिन गिनना नहीं चाहते थे। प्रतिदिन ही उनके आने की प्रतीक्षा में बैठे रहते थे। नरेन्द्र को देखने के लिए अब वह बहुत ही व्याकुल होने लगे। पर कोई उपाय नहीं था। इस कारण हृदय के गम्भीर आँसुओं को किसी तरह दबाकर उस मिलन की प्रतीक्षा में कुम्हलाने लगे। उन्होंने कहा था—"नरेन को देखने के लिए समय समय पर हृदय में इतनी वेदना होती थी, मानो छाती के भीतर कोई अंगोछा निचोड़ने की तरह जोर से निचोड़ रहा है। 'अरे तू आजा, तुझे बिना देखे मैं रह नहीं सकता'—ऐसे पुकार पुकार कर मैं रोता था।"

नरेन्द्रनाथ की परीक्षा समाप्त हो गयी। साथ साथ उन्हें एक अग्नि-परीक्षा का सामना करना पड़ा। पिता ने एक धनी व्यक्ति की कन्या के साथ उनका विवाह निश्चित कर लिया। कन्या श्यामांगी थी। इस कारण दहेज में अनेक वस्तुओं के साथ १० हजार रुपये मिलने वाले थे। प्रस्ताव सुनकर नरेन्द्रनाथ विद्रोही हो पड़े। वह विवाह किसी तरह नहीं करना चाहते थे। उनके जीवन में कोई आकांक्षा थी। अन्तर में उन्होंने महान् कर्तव्य की पुकार सुनी थी। विवाह करके वह आत्मा बनने और इन प्राणियों की तरह जीवनयापन करने के साथ वह समझता नहीं कर सके। उनका एकमात्र उत्तर था—'किसी तरह भी विवाह नहीं करूँगा।' नरेन्द्रनाथ के वैराग्यप्रवण मन में तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई। वह ध्यान भजन में और भी अधिक डूब गये और ब्रह्मसमाज में उनका गमनागमन और भी बढ़ गया।

श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग भक्त रामचन्द्र दत्त नरेन्द्रनाथ के दूर सम्पर्क के सम्बन्धी थे। वह नरेन्द्र के घर में ही प्रतिपालित हुए थे। पढ़ लिखकर वह बड़े डाक्टर हुए। दक्षिणेश्वर के प्रमोन्मत्त ठाकुर के प्रति वह विशेष रूप से अनुरक्त थे। नरेन्द्र भी रामबाबू को बहुत प्यार करते थे। उन्हें राम

भैया कहकर पुकारते थे। अपने मन की बात उनसे कहते थे। एकदिन विवाह प्रसंग में उन्होंने अपने मन की अशान्ति की बात उनसे खोलकर कही। उनकी बातें सुनकर रामदत्त ने स्नेह के स्वर से कहा—"भाई, यदि यथार्थ धर्मलाभ करना ही तुम्हारे जीवन का उद्देश्य हो तो ब्रह्मसमाज आदि स्थानों में वृथा न भ्रमकर दक्षिणेश्वर में परमहंस देव के पास जाओ।" उनकी बात नरेन्द्रनाथ को अच्छी लगी। पड़ोसी सुरेन्द्रनाथ ने उन्हें एकदिन अपनी गाड़ी से दक्षिणेश्वर ले जाने के लिए बुलाया। दो-तीन मित्रों के साथ नरेन्द्र सुरेन्द्रनाथ की गाड़ी से दक्षिणेश्वर पहुँचे।

चार

१८८१ ई० का दिसम्बर मास। गंगा की ओर के दरवाजे से नरेन्द्रनाथ साथियों के साथ श्रीरामकृष्ण के घर में प्रविष्ट हुए। देखते ही आनन्दित होकर श्रीठाकुर ने सामने फर्श पर जो चटाई बिछी थी उस पर नरेन्द्र को बैठने के लिए कहा। बाद में गाना गाने के लिए अनुरोध करने पर नरेन्द्रनाथ ने कहा कि वह बंगला गाना केवल दो ही-चार जानते हैं। उसी को गाने के लिए कहा गया। "मन चलो निज निकेतने"*—इस गाने को उन्होंने मन-प्राण से गाया—मानो वह ध्यानस्थ हो गये थे। मधुर सुर-झंकार से सारा

---

* (१) मन चलो निज निकेतने।
संसार-विदेशे विदेशीर वेशे, भ्रमो केनो अकारणे।
विषय पचक आर भूतगण, सब तोर पर, केउ नय आपन।
पर प्रेमे केनो होये अचेतन, भुलेछो आपन जने॥

पर भर गया। श्रीरामकृष्ण देव अपने को सम्हाल नहीं सके। अहा, अहा! कहते एकदम समाविस्थ हो गये।

साधुसंगो नामे आछे पान्थधाम, श्रान्त होले तथाय करियो विश्राम।
पथभ्रान्त होले सुधाइयो पथ, से पान्थनिवासिगणे।
जदि देखो पथे भयेरि आकार, प्राणपणे दियो दोहाई राजार
से पथे राजार प्रबल प्रताप, शमन डरे जाँर शासने॥

* अर्थात्—(१) मन! अपने घर चलो। संसार विदेश में विदेशी के वेश में क्यों वृथा भटक रहे हो। पाँच विषय और पाँच भूत सभी तेरे पराये हैं, कोई अपना नहीं है। पराये प्रेम में अचेतन होकर क्यों अपने जन को भूल गये हो।···साधु सग के नाम से पांथ निवास है, श्रान्त हो जाने पर वहाँ विश्राम लेना। पथभ्रान्त होने से पथ की बात उस पांथनिवास के रहनेवालों से पूछ लेना। यदि पथ में भय का आकार देखो तो प्राणप्रण से राजा की दुहाई देना क्योंकि उस पथ में राजा का प्रबल प्रताप है, जिनके शासन से यमराज भी डरते हैं।

अनन्तर एक दूसरा गाना गाया—

(२) जाबे कि हे दिन आमार विफले चलिये,
आछि नाथ दिवा निशि, तव आशापथ निरखिये।
तुमि त्रिभुवन नाथ, आमि भिखारी अनाथ।
कैमने बलिबो तोमाय एशो हे मम हृदये।
हृदय-कुटीर द्वार, खुले राखि अनिवार।
कृपा कोरे एकबार एशे कि जुड़ावे हिये॥

(२) क्या मेरे दिन वृथा ही चले जायँगे। हे नाथ, दिन रात मैं तुम्हारी बाट जोह रहा हूँ। तुम त्रिभुवन के नाथ हो और मैं भिखारी अनाथ हूँ। मैं कैसे तुमसे कहूँ—मेरे हृदय में आओ, हृदय कुटीर का द्वार मैं सदा खुला रखता हूँ। कृपा करके एकबार आकर क्या मेरे हृदय को शान्त करोगे?

उसके बाद एक अचिन्तनीय घटना हुई। नरेन्द्र के सबकुछ विचार उलट-पलट हो गये। एकायक श्रीठाकुर नरेन्द्र का हाथ पकड़कर उन्हें उत्तर की ओर के पट से घिरे बरामदे में ले गये और आनन्दाश्रु बहाते हुए बोले—"इतने दिनों के बाद आये? मैं तुम्हारे लिए व्याकुल प्रतीक्षा में बैठा हूँ। इस पर जरा ख्याल भी करना चाहिए था।" दूसरे ही क्षण रोते हुए हाथ जोड़कर उन्होंने कहा—"मैं जानता हूँ प्रभु, तुम वही पुरातन ऋषि, नररूप नारायण हो, जीवों की दुर्गति दूर करने के लिए पुन शरीर धारण कर यहाँ आये हो।"

श्रीठाकुर के उस अपूर्व आचरण से उनके मन म जो प्रतिक्रिया हुई थी उसे बहुत दिनों के बाद नरेन्द्रनाथ ने कहा था—"मैं तो उस प्रकार के व्यवहार से एकदम निवाक् और स्तम्भित हो गया था। मन म सोचने लगा—किसे देखने आया हू। यह तो एकदम उन्माद है, नहा तो मैं विश्वनाथ दत्त का पुत्र हूँ। मुझसे ऐसी बातें कहता है? जो हो मैं चुप रह गया। यह अद्भुत पागल जो मन में आया करता चला। दूसरे हा क्षण मुझे वहीं रुके रहने के लिए कहकर वह घर मे घुस गये। मक्खन, मिसरी और कुछ मिठाई लाकर अपने हाथ से मुझे खिला देने लगे। मैंने कहा—'मुझे दीजिये मैं साथियों के साथ जाकर खाऊँगा। परन्तु उन्होंने एक न माना, कहा—"वे लोग बाद में खायेंगे।" इतना कहकर मुझे सब अपने हाथ से खिला दिया, तब शान्त हुए। उसके बाद मेरा हाथ पकडकर बोले, बोलो—तुम जल्दी ही एकदिन यहाँ अकेले आओगे? उनका एकान्त अनुरोध टाल न सकने के कारण मुझे लाचार होकर 'आऊँगा' कहना पड़ा। उसके बाद उनके साथ घर में आकर मै साथियों के संग बैठ गया।"

परन्तु घर म आते ही श्रीठाकुर मानो दूसरे ही आदमी बन गये। थोड़ा भी असलग्नता का नहा थी। नाना प्रकार के ईश्वरीय प्रसग बताये। उन्हें भाव समाधि हुई। नरेन्द्रनाथ उस रहस्यमय व्यक्ति को विस्मय विमुग्ध चित्त से

देखने लगे। उनकी बातें वह मुग्ध होकर सोचने लगे—यह जो कुछ कह रहे हैं, पुस्तक की रटी हुई बात तो मालूम नहीं होती।

भगवान् को देखा जा सकता है या नहीं, इस प्रसंग में श्रीठाकुर ने आशा की वाणी सुनाकर कहा—"हाँ जी उन्हें देखा जा सकता है। जैसे तुम्हें देख रहा हूँ, तुम्हारे साथ बातें कर रहा हूँ, वैसे ही ईश्वर को भी देखा जा सकता है—उनसे बातें की जा सकती हैं। परन्तु वैसा चाहता कौन है? लोग पत्नी-पुत्र के शोक में घड़ों आँसू बहाते हैं, विषय-सम्पत्ति और पैसे के लिए रोते हैं, परन्तु भगवान न मिले इसके लिए कौन रोता है? वह नहीं मिले इसलिए यदि कोई रोते हुए उन्हें पुकारता है तो वह अवश्य दर्शन देते हैं।"

श्रीरामकृष्ण देव की बातें नरेन्द्रनाथ के हृदय में चुभ गयीं। वह मौन रहकर केवल सोचने लगे—उन्माद होने पर भी ईश्वर के लिए ऐसा त्याग संसार में बहुत अल्प मनुष्य ही कर सके हैं। उन्माद होने पर भी ये महापवित्र और महात्यागी हैं। उन्होंने ईश्वर का दर्शन किया है, मानव हृदय की श्रद्धा और पूजा पाने के ये योग्य हैं।

श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में इस प्रकार की बातें सोचते हुए नरेन्द्रनाथ उस दिन कलकत्ता लौट आये, किन्तु श्रीरामकृष्ण के वार्तालाप और अद्भुत व्यवहार ने उनके मन में तुमुल आँधी उत्पन्न कर दी। जितना ही वह सोचने लगे उतना ही उस अर्धोन्मादी मनुष्य का जीवन गूढ़ता-पूर्ण प्रतीत होने लगा। उनकी बातों को एकदम पागल का प्रलाप कहकर उड़ा नहीं दिया जा सकता। उस दिन से नरेन्द्रनाथ का अलिप्त मन और गभीर ध्यान श्रीठाकुर के जीवन-रहस्य के उद्घाटन में नियोजित हुआ।

* * *

घर लौटकर उन्होंने अध्ययन में मन लगाने का प्रयत्न किया परन्तु श्रीरामकृष्ण को वह भूल न सके। उनकी हर एक बात तथा प्रत्येक व्यवहार ने नरेन्द्रनाथ के

हृदय में विपुल विस्मय उत्पन्न कर दिया। उनका सब कुछ दुर्ज्ञेय और रहस्यपूर्ण था। जितना ही सोचते उतना ही चित्त विभ्रान्त हो जाता—कुछ भी समाधान नहीं मिलता। श्रीरामकृष्ण के सत्संग का मुहूर्त स्वप्न सा मालूम होने लगा। दिनरात, हर समय श्रीरामकृष्ण की चिन्ताओं ने उन्हें अस्थिर कर डाला। एक अनिर्वचनीय आकर्षण ने उनके दृढ़ मन को भी अभिभूत कर दिया। अनेक प्रकार की चिन्ताओं से विचलित होकर लगभग एकमास के बाद नरेन्द्रनाथ एकदिन अकेले दक्षिणेश्वर के लिए रवाना हुए। श्रीरामकृष्ण उनके आगमन का शुभसमाचार जान गये। इस कारण वह अकेले अपने कमरे की छोटी चौकी पर बैठकर प्रतीक्षा करने लगे।

नरेन्द्र को देखते ही आनन्द से अपार होकर उन्होंने—'तू आ गया!' कहकर उनका हाथ पकड़कर अपनी चौकी पर बिठाया और स्नेह की दृष्टि से वह नरेन्द्र को एकटक देखने लगे। सहसा श्रीठाकुर के भीतर अद्भुत भावान्तर हुआ। वह भावाविष्ट की तरह अस्फुट स्वर से कुछ बड़बड़ाते हुए नरेन्द्र की ओर उसकते आने लगे। उसके आगे की घटना को नरेन्द्रनाथ ने ही बताया था—"मैंने सोचा शायद पागल पहले दिन की तरह कोई पागलपन करेगा। इस प्रकार की चिन्ता होने के साथ ही साथ उन्होंने एकायक मेरे पास आकर दाहिने पैर से मुझे छू दिया। उस स्पर्श से मुझे उसी क्षण एक अपूर्व अनुभूति हुई। आँखें खुली हुई थीं—देखा दीवालों के साथ सारे सामान वेग से घूमते हुए कहाँ लीन होते जा रहे हैं और सारे ब्रह्मांड के साथ मेरा 'अहं' भाव भी मानो एक सर्वग्रासी महाशून्य में एकाकार होने के लिए दौड़ता चला जा रहा है। भय से मैं अभिभूत हो गया। ऐसा लगा 'अहं' भाव का नाश ही तो मृत्यु है। वह मृत्यु सामने है, बहुत ही निकट। अपने को सम्हाल न सकने के कारण मैं चिल्ला उठा—अजी तुमने मेरा क्या कर डाला? मेरे तो माँ बाप हैं।

वह अद्भुत पागल उस बात को सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ा। हाथ से मेरी छाती छूकर वह कहने लगे—'तो अब रहने दो। एकबार में नहीं तो

भविष्य में होगा*। आश्चर्य की बात यह है कि उनका स्पर्श तथा वैसी बात पहले ही मेरे वे अपूर्व प्रत्यक्ष दर्शन लुप्त हो गये। मैं प्रकृतिस्थ हो गया और घर के भीतर और बाहर की सारी चीजें पहले की तरह अवस्थित दिखायी पड़ीं।

आँख की एक ही पलक में वैसा दृश्य उपस्थित हुआ था। नरेन्द्रनाथ अत्यन्त आश्चर्यचकित हो पड़े। उनके मन में युगान्तर उत्पन्न हो गया। क्या यह सम्मोहिनी विद्या है! इन्द्रजाल! ब्लैक मैजिक! किन्तु नरेन्द्रनाथ का मन उसे स्वीकार करना नहीं चाहता था। उनका मन इतना दुर्बल तो नहीं है। वह प्रबल इच्छाशक्तिसम्पन्न हैं। क्षणभर में उन्हें प्रभावित करना कैसे सम्भव हुआ! यह तो इन्हें अघटनीय समझते हैं। किसी एक सिद्धान्त पर पहुँचना होगा। अन्तर में हलचल मच गयी। महाकवि की बात याद आयी—"स्वर्ग और पृथिवी पर ऐसे अनेक तत्त्व हैं जिनका रहस्य भेदन मनुष्य-बुद्धि-रचित दर्शन शास्त्र नहीं कर सके हैं।"

परन्तु उन्होंने दृढ़ सकल्प किया—इनके हाथ का खिलौना नहीं बनूँगा। अच्छी तरह सावधान रहना होगा, अपने को प्रकृतिस्थ रखूँगा, सन्हालकर रहूँगा। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। फिर यह भी सोचा—जो व्यक्ति क्षणभर में मेरे जैसे दृढ़ इच्छाशक्तिसम्पन्न मन को कीचड़ के पिंड के समान तोड़ फोड़ सकता है, वह तो मामूली आदमी नहीं है, असा-

---

* नरेन्द्रनाथ जिस ब्रह्मोपलब्धि के लिए इतने व्याकुल थे वह ब्रह्मज्ञान ही उस दिन श्रीरामकृष्ण देव ने नरेन्द्रनाथ को देना चाहा था। परन्तु बाद में सोचा कि अभी समय नहीं हुआ है। यह निर्विकल्प ब्रह्मज्ञान उन्होंने नरेन्द्रनाथ को कई साल बाद काशीपुर के बाग में दिया था। 'काल' अर्थात् समय एक बहुत बड़ी चीज है। काल की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उस शुभ मुहूर्त के लिए प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

साधारण शक्ति सम्पन्न हैं! उनके आत्मविश्वास तथा चित्त की दृढ़ता के ऊपर एक प्रचण्ड आघात पड़ा।

परन्तु इस घटना के बाद श्रीठाकुर मानो पूर्णतया भिन्न व्यक्ति हैं। इस प्रकार नरेन्द्र को खिलाने तथा आदर करने में लग गये। विविध भावों से वे स्नेह प्रकट करने लग गये। इससे उन्हें तृप्ति नहीं मिलती थी। इधर संध्या हो आयी। नरेन्द्र को कलकत्ते लौटना है। इस कारण वे श्रीठाकुर से विदा लेने गये परन्तु श्रीठाकुर ने जिद पकड़ ली और कहा—"बोलो, फिर जल्दी आओगे?" अतः वचन देकर वह कलकत्ते लौट आये।

किन्तु वे अपने मन को उस घटना के प्रभाव से मुक्त नहीं कर पा रहे थे। वे दृढ़ सङ्कल्प लेकर उस रहस्य का भेद जानने के लिए कटिबद्ध हुए। इधर श्रीरामकृष्ण की चिन्ता ने उनकी समस्त सत्ता पर अधिकार जमा लिया था। उस अद्भुत पुरुषप्रवर की बात वे जितना ही सोचने लगे उतना ही सब कुछ दिन के स्वप्न की तरह प्रतीत होने लगा। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। ऐसे चिन्ताकुल चित्त से प्रायः एक सप्ताह के अनन्तर वे पुनः दक्षिणेश्वर आये। श्रीठाकुर ने भी उनका बहुत ही समादार के साथ स्वागत किया। उसदिन श्रीठाकुर इनको लेकर यदु मल्लिक के पास वाले बगीचे में घूमने गये। कुछ क्षण इधर उधर घूमकर दोनों ही बैठक में आकर बैठे। देखते-देखते ही श्रीठाकुर को भावान्तर हो गया। वह समाधिस्थ हो गये।

नरेन्द्र सब कुछ धीर भाव से देखने लगे। श्रीठाकुर ने एकबार आँख खोलकर देखा और पहिले की तरह एकायक उन्हें छू दिया। विशेष सावधान रहने पर भी उस शक्तिपूर्ण स्पर्श से नरेन्द्रनाथ पूर्णतया अभिभूत हो गये। अनेक प्रयत्न करने पर भी वह अपने को सम्हाल न सके। उनका बाहरी ज्ञान एकदम लुप्त हो गया। कितनी देर तक वह उस अवस्था में थे या कैसे ज्ञान लौट आया उसका उन्हें कुछ भी पता न था। परन्तु बाहरी ज्ञान लौट आते ही उन्होंने देखा—श्रीरामकृष्ण मधुर मुसकान के साथ उनकी छाती पर स्नेहसे

हाथ पैर ठंडे हैं। यह वस्तु क्या जिनिस हो पड़े तथा अपने को एकदम असहाय समझने लगे।

इस दिन की घटना के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण देव ने परवर्ती काल में कहा था—"बाह्य ज्ञान लुप्त होने पर उस दिन मैंने नरेन्द्र से अनेक बातें पूछी थीं। वह कौन है, कहाँ से आया है, क्यों जन्मा है, कितने दिनों तक संसार में रहेगा इत्यादि। उसने भी उसी अवस्था में रहकर अपने अन्तराम प्रदेश में प्रविष्ट होकर उन प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दिया था। इसके संबंध में मैंने जो कुछ देखा और सोचा था उन्हें उस समय के उत्तर ने उन बातों की सत्यता प्रमाणित हो गया। यह सब गुप्त बातें हैं। उन बातों से मैं जान गया— नरेन्द्र जिस दिन जान जायगा कि वह कौन है उस दिन वह इस लोक में नहीं रहेगा। दृढ़ संकल्प की सहायता से, योगबल के द्वारा वह उसी समय शरीर छोड़ देगा। नरेन्द्र ध्यानसिद्ध महापुरुष हैं।'

पहले श्रीरामकृष्ण देव को दर्शन हुआ था कि ज्योतिर्मण्डल के ऋषि ने ही नरेन्द्र के रूप में जन्मग्रहण किया है। अब उस दर्शन की सत्यता का प्रमाण पाकर मानो वह नरेन्द्र के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो गये। परन्तु इधर नरेन्द्र के अभिमान के ऊपर प्रचण्ड आघात पड़ा। ईश्वरशक्ति के सामने वह बहुत ही असहाय शिशु है। इन्हें पागल कहना उचित नहीं है—यह अलौकिक शक्ति सम्पन्न देवमानव हैं और साधना के द्वारा इन्होंने जो असामान्य शक्ति अर्जित की है, उस शक्ति के सामने मनुष्य का व्यक्तित्व तथा शक्ति कितनी तुच्छ है! उनके चिन्ताराज्य में एक भयंकर विप्लव उपस्थित हो गया। परन्तु किसी वस्तु या तथ्य की परीक्षा किये बिना ग्रहण करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। इस कारण वे गोताखोर की तरह अतल चिन्तासागर में डूब गये। श्रीरामकृष्ण ही उनके परीक्षा के विषय तथा चिन्ता की वस्तु हुए। वे उन्हें ग्रहण करने के पूर्व यथाशक्ति उत्तम रूप से 'ठोक-ठोक कर' जाँच लेना चाहते थे—विश्लेषण की दृष्टि से वह अच्छी तरह समझना चाहते थे। श्रीरामकृष्ण देव के अनुपम त्याग, तपस्या, प्रेम, पवित्रता, सरलता, ईश्वर-

परायणता तथा भागवत जीवन भी नरेन्द्र की चिन्ता के विषय हुए। उन्होंने समझा था कि श्रीरामकृष्ण विशेष शक्तिशाली महापुरुष हैं। धर्म इतिहास में जिन देव मानवों का उल्लेख मिलता है उनके साथ वह एक आसन में बैठने योग्य हैं।

श्रीरामकृष्ण के निकट जाना आना उन्होंने बन्द नहीं किया, बल्कि उनकी अपनी इच्छा के विरुद्ध ही मानो उनका आना जाना बढ़ जाने लगा। वे श्रीरामकृष्ण की नाना प्रकार से परीक्षा तथा उनके प्रत्येक कार्य तथा बात का सूक्ष्म रूप से विश्लेषण करने लगे। दूसरी ओर एक आकर्षण उनको दक्षिणेश्वर खींच लाने लगा। श्रीरामकृष्ण भी नरेन्द्र को अपनी ओर खींचने लगे, जिस प्रकार शक्तिशाली चुम्बक लोहे के टुकड़े को खींचता है।

श्रीरामकृष्ण जानते थे कि उन्होंने क्यों देह धारण किया है, वह जान है और नरेन्द्र के साथ उनका सम्बन्ध भी क्या है? इसलिए हमलोग देख पाते हैं—नरेन्द्र के दक्षिणेश्वर आगमन के बहुत पहले ही उन्होंने अपने वातावहों को मनोबल से आकर्षित किया था। दक्षिणेश्वर के मकान की छत पर खड़े होकर वह कातर स्वर से पुकारते थे—"अरे तुम लोग कहाँ हो चले आओ।" उनकी वह पुकार—वह ध्वनि केवल वायुमंडल को स्पन्दित कर ही विलुप्त नहीं हो गयी थी। उनके उस सार्थक आह्वान के फलस्वरूप ही नरेन्द्रनाथ आदि उनके वातावह लोग क्रमशः दक्षिणेश्वर में समवेत होने लगे। वे उनलोगों के अनजान में ही अपने भविष्य के सन्यासी पार्षदों का आध्यात्मिक जीवन बहुत ही निपुण हाथ से परिपूर्ण और माधुर्यमय करके गठित करने के लिए सचेष्ट हुए।

श्रीरामकृष्ण के पार्षदों में नरेन्द्रनाथ का एक विशेष स्थान था। वे युगधर्म प्रचार के लिए सर्वश्रेष्ठ यन्त्ररूप से निर्वाचित हुए थे। श्रीरामकृष्ण ने कहा था, "नरेन लोकशिक्षा देगा।" धर्म की ग्लानि के नाश कार्य का भार नरेन्द्रनाथ पर था। इसी कारण विरुद्ध, विजातीय और अनिष्टकारी प्रभाव से नरेन्द्र को बचाये रखने के लिए उनके प्रति श्रीरामकृष्ण के मन

में असाधारण आकर्षण, अतुल प्रेम तथा सावधान-दृष्टि थी। नरेन्द्रनाथ के कई दिनों तक दक्षिणेश्वर न आने से वे उन्हें देखने के लिए बहुत ही व्याकुल हो जाते थे। इसके अतिरिक्त नरेन्द्र के जीवन को अपने भावप्रचार के सर्वांग-सुन्दर महाशक्तिशाली यन्त्र रूप से तैयार करने के लिए विशेष शिक्षा-दीक्षा तथा उनमें आध्यात्मिक शक्ति-संक्रमण की आवश्यकता थी।

परन्तु उनका प्रेम शारीरिक न था, वह था ईश्वरीय प्रेम। जिस प्रेम के आकर्षण से राजपुत्र, पत्नी-पुत्र तथा राजसिंहासन छोड़कर वनवास चले जाते हैं श्रीरामकृष्ण भी उस अलौकिक प्रेम के द्वारा नरेन्द्रनाथ को आकर्षित करते थे और उनके जीवन को निर्माण करने के लिए दारैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा से पूर्णतया मुक्त करके परमतत्त्व के धारण और प्रचार के उपयुक्त आधार करने के लिए सदा सचेष्ट थे। क्या नरेन्द्र पाषाण थे ! नहीं, वे श्रीरामकृष्ण के अहेतुक प्रेम की गम्भीरता को समझ सकते थे। वे उसे अपने हृदय में अनुभव करते थे। परन्तु शुरू शुरू में वह उनकी पकड़ में नहीं आना चाहते थे। उसके अतिरिक्त श्रीरामकृष्ण की सोलह आने जाँच बिना किये उन्हें पूर्णतया ग्रहण नहीं करेंगे—नरेन्द्रनाथ का ऐसा ही मनोभाव था। बाद में उन्होंने श्रीरामकृष्ण को जीवन के एकमात्र आदर्श रूप से ग्रहण किया था और मनुष्य देह में अवतीर्ण श्रीभगवान् के श्रेष्ठ विकास रूप में मान लिया था। परन्तु वैसा दो एक दिन में नहीं हुआ था। सुदीर्घ पाँच वर्षों तक उन्होंने श्रीरामकृष्ण की पग पग में परीक्षा ली थी। उनके प्रत्येक कार्य, प्रत्येक व्यवहार तथा प्रत्येक अलौकिक दर्शन का उन्होंने भलीभाँति विचार कर लिया था। जिस प्रकार सुवर्ण, मार्जन और घर्षण के द्वारा उज्ज्वल होता है उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण का जीवन भी इन परीक्षाओं के द्वारा और भी अधिक उज्ज्वल हो गया था।

उसदिन नरेन्द्रनाथ विभ्रान्तचित्त होकर दक्षिणेश्वर से घर लौट आये। बी० ए० में पढ़ रहे थे। अध्ययन में मन लगाया। ब्राह्म समाज में जाने आने लगे। समाज के रविवार की उपासना के समय उनका मधुर प्रार्थना-

संगीत सबको मुग्ध करता था। वे विभिन्न स्थानों की धर्मालोचनाओं में सम्मिलित होते थे। संगीतचर्चा भी नहीं छोड़ी। इष्टमित्रों के सम्मेलनों में उन्हें जाना ही पड़ता था। समाज-संस्कार, विधवा-विवाह, खाद्याखाद्य विचार, जाति विचार आदि विषयों में वह जोशीले भाषण देते थे।*

श्रीठाकुर का जीवन उनके सामने एक पहेली-सा प्रतीत होता था। सत्य लाभ उनके जीवन का ध्येय था। उसके लिए वे जीवन का प्रण लेकर बैठे थे। सत्यद्रष्टा पुरुष के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति उन्हें इस मार्ग पर अग्रसर होने में सहायता नहीं दे सकता—यह भी वे जानते थे। परन्तु श्रीरामकृष्ण के संबंध में वह उस समय तक भी किसी निश्चित सिद्धान्त पर नहीं पहुँच सके थे। उनकी अलौकिक शक्ति उनके विस्मय का कारण बन गयी था।

तीव्र मेधा, उर्वर मस्तिष्क, सबल देह, बलिष्ठ मन तथा पृथ्वी के पर्यटन में समर्थ दो पैर लेकर वह सत्य की खोज में ही चल सकते हैं। ऐसे सकल्प में दृढ होकर वह पुरुषकार के ऊपर अधिक जोर देते हुए कठोर कौमार्य व्रत और कृच्छ्र साधन में व्रती हुए। घर में स्वतन्त्र जीवनयापन करने में और ध्यान भजन में असुविधा होने के कारण वह बगलवाले नानीजी के मकान के एक कमरे में अकेले रहने लगे। वह कमरा बहुत ही सुनसान और छोटा था। उसमें कुछ असबाब भी नहीं थे। वह फर्श पर सोते थे, चारों ओर पुस्तकें फैली रहती थीं। केवल चाय का सामान रहता था। बीच-बीच में चाय पीते थे। दिन रात पढ़ते और ध्यान धारणा में डूबे रहते थे। परन्तु समाधान कुछ भी नहीं पाते थे। जब तक ध्यानमग्न रहते तबतक मन से सारी चिन्ताओं को निकालकर विमल आनन्द और अनिर्वचनीय प्रशान्ति का अनुभव करते थे, किन्तु ध्यान भंग होते ही सैकड़ों चिन्ताओं के दंशन से वह बेचैन हो जाते थे। उनका मानसिक संग्राम निद्रा में भी चलता था।

---

* श्रीरामकृष्ण देव कहते थे—"नरेन मानो नंगी तलवार है।"

जिसदिन उन्होंने श्रीरामकृष्ण के मुख से पहले पहल सुना कि ईश्वर को देखा जा सकता है, उनसे बातें की जा सकती हैं उसदिन से उनके मन में ये बातें सदा आने जाने लगीं। उन्होंने यह भी समझा था कि ये बातें अर्थहीन प्रलाप मात्र ही नहीं है। श्रीरामकृष्ण ने स्वयं ईश्वर का दर्शन करके ही ऐसा कहा था। तथापि उनका विद्रोही मन श्रीरामकृष्ण का शिष्य बनने को तैयार नहीं था।

—

नरेन्द्रनाथ ब्राह्म समाज में नियमित रूप से आते जाते थे। ईसाई धर्म प्रचारकों का व्याख्यान भी सुनते थे। वह मूर्तिपूजा के घोर विरोधी थे। श्रीरामकृष्ण थे कालीमाता के उपासक। ब्रह्म ही उनके सामने काली माता के रूप में थी*। नरेन्द्रनाथ दक्षिणेश्वर जाते परन्तु काली मन्दिर में नहीं जाते और न कालीमूर्ति को प्रणाम ही करते थे।

दूसरी ओर नरेन्द्र के दक्षिणेश्वर आने पर श्रीरामकृष्ण आनन्द से अधीर हो पड़ते थे। बहुधा उन्हें देखते ही श्रीठाकुर का मन भावराज्य में चला जाता था। सहज अवस्था में आकर अत्यन्त आनन्द के साथ अनेक आध्यात्मिक अनुभूतियों तथा अलौकिक दर्शनों की बात कहते थे। स्नेहपूर्ण स्वर से नरेन्द्र को गाना गाने के लिए अनुरोध करते थे। इधर गाना सुनते हुए वे समाधिस्थ हो जाते। "जो कुछ है, सो तू ही है"—यह गाना श्रीरामकृष्ण को बहुत

---

* 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' की सीमित व्याख्या जो लोग करते हैं, 'सर्वं ब्रह्ममयं जगत' इस तत्त्व को ग्रहण करके भी प्रतीक और मूर्ति में ब्रह्म का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते, उनलोगों की भ्रान्त धारणा और संकीर्ण मनोभाव उस समय भी नरेन्द्र का चिन्ता का विषय नहीं हुआ। 'जो साकार, वही निराकार' 'जो सगुण वही निर्गुण', 'काली ही ब्रह्म है'—यह मर्मवाणी उस समय भी नरेन्द्र के अन्तर में गृहीत नहीं हुई। श्रीरामकृष्ण के जीवन के प्रभाव से बाद में वैष्णव इत्यादि की तरह उनके मत का भी परिवर्तन हुआ था।

प्रिय था। उसे न सुनकर वे तृप्त नहीं होते थे। नरेन्द्र को खिलाकर अनेक प्रकार से स्नेह दिखाते हुए भी उनको संतोष नहीं होता था। नरेन्द्र के दक्षिणेश्वर आने पर वहाँ आनन्दोत्सव होने लगता था। उन्हें अपार आनन्द होता था। परन्तु श्रीरामकृष्ण के अलौकिक दर्शन आदि पर नरेन्द्रनाथ को बिलकुल विश्वास नहीं होता था। एक ही बात में सबकुछ उड़ाकर व कहते थे—"आप ईश्वर के रूप आदि जो कुछ देखते हैं सब आपके मस्तिष्क की कल्पनामात्र है।"

नरेन्द्र की बात से श्रीरामकृष्ण कभी कभी विचलित होते थे। वे सोचते थे तो क्या मेरा दर्शन आदि भ्रम है? क्या ये सब दिमागी कल्पनाएँ हैं? ऐसी दुर्भावना का अंत नहीं था। एकदिन व्याकुल होकर मंदिर जाकर उन्होंने भवतारिणी से पूछा, "माँ, अबतक जो कुछ तुमने दिखाया है क्या सब भ्रम है? नरेन तो ऐसा ही कहता है?" तुरत ही माँ ने कहा—"उसकी बात तू क्यों सुनता है, कुछ दिनों के बाद वह (नरेन्द्र) सब कुछ मान लेगा।' देवी के मुख की बात सुनकर वे शांत हुए।

इधर नरेन्द्रनाथ के किसी सप्ताह में दक्षिणेश्वर न आने पर श्रीठाकुर बेचैन हो पड़ते थे। किसी आदमी से उन्हें बुला भेजते थे। इससे भी न आये तो वह स्वयं मिठाई आदि लेकर नरेन्द्र के पास उपस्थित हो जाते थे। कभी वे उन्हें अपने साथ दक्षिणेश्वर लाते थे। नरेन्द्रनाथ और श्रीरामकृष्ण के भीतर कहीं दृष्टि से मेल मिलाप न पड़ता था। नरेन्द्रनाथ श्रीरामकृष्ण की कोई भी बात नहीं मानते थे—हँसी खिल्ली से उड़ा देते थे। परंतु श्रीरामकृष्ण का चित्त नरेन्द्रमय था। निरंतर वह नरेन्द्र की ही प्रशंसा करते थे। उन दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालय के और भी कई युवकों ने दक्षिणेश्वर जाना आना आरम्भ कर दिया था। सभी शक्तिमान्, वैराग्यवान तथा मुमुक्षु थे। ईश्वर दर्शन के लिए सभी व्याकुल थे। श्रीरामकृष्ण सभी युवकों को स्नेह करते थे। उनका धर्मजीवन गठित करने के लिए वे सदा चेष्टा करते रहते थे। उनके साथ ईश्वर सम्बन्धी बात करते, त्याग, वैराग्य और साधन भजन के उपदेश देते थे। उनके पवित्र संग तथा शक्ति संक्रमण के फलस्वरूप

उनलोगों के आध्यात्मिक जीवन में अनेक अलौकिक दर्शन और दिव्यानुभूतियाँ होती थीं। कीर्तन करते हुए कोई भावस्थ हो जाता—आँसू बहाते, पुलक और स्पन्दन होते रहते। सभी के धर्मजीवन गठित करने की ओर उनकी सावधान दृष्टि रहती। केवल दक्षिणेश्वर में ही नहीं, घर में भी कौन कैसा ध्यान करता है, ईश्वर दर्शन आदि कुछ होता है या नहीं—सभी की वे खबर रखते और प्रयोजन के अनुसार उनके साधनमार्ग के विघ्नों को दूर कर देते थे।

पाँच

नरेन्द्रनाथ के साथ श्रीठाकुर का सम्बन्ध मानो और भी अधिक गम्भीर, मानो और भी स्वतन्त्र था। नरेन्द्रनाथ के आने पर उनके प्रेमसिंधु में मानो उफान आ जाता था। नरेन्द्रनाथ के उपस्थित नहीं होने पर भी वे उनकी बात कहकर, उनकी प्रशंसा करके आत्मतृप्ति लाभ करते थे। एकदिन युवक भक्तों को सुनाकर उन्होंने कहा था, "ये लड़के बुरे नहीं हैं, डेढ़ परीक्षा पास हैं (अर्थात् एफ० ए० परीक्षा के लिए प्रस्तुत हो रहे हैं), शिष्ट शान्त धर्मप्राण हैं। परन्तु नरेन-जैसा लड़का एक भी नहीं देखा। जैसे गाने-बजाने, कहने सुनने, पढ़ने लिखने, वैसे ही धर्म विषय में भी। वह रातभर ध्यान करता है। ध्यान करते-करते सुबह हो जाती, होश नहीं रहता। मेरे नरेन के भीतर जरा भी कृत्रिमता नहीं है, बजाकर देखो टन टन करता है। दूसरे लड़कों को देखता हूँ, आँख कान दबाकर किसी तरह दो-तीन परीक्षायें पास कर जाते हैं। बस यहीं तक। उतना करते ही मानो उनकी सारी शक्ति खतम हो गयी। परन्तु नरेन वैसा नहीं, हँसते खेलते सभी काम कर डालता—

परीक्षा पास करना उसके लिए मानो कोई काम ही नहीं है। वह ब्राह्म समाज में जाता और भजन गाता। परन्तु दूसरे ब्राह्मों की तरह नहीं—वह यथार्थ ब्रह्मज्ञानी है। ध्यान करते समय उसको ज्योतिर्दर्शन होता है। क्या मैं यों ही नरेन को प्यार करता हूँ?"

नरेन्द्रनाथ भी न जाने कैसे एक अज्ञात आकर्षण से खिंचकर दक्षिणेश्वर आ जाते थे, सप्ताह में दो तीन दिन भी। नरेन्द्रनाथ ब्राह्म समाज में नियमित जाते, केशवचन्द्र आदि ब्राह्म नेताओं के साथ घनिष्ठ भाव से मिलते—यह सभी श्रीरामकृष्ण जानते थे। वह उसमें कोई आपत्ति नहीं करते, बल्कि प्रसन्न ही होते थे। उनके भीतर संकीर्णता का लेशमात्र भी नहीं था। उनका मन उदार, भाव उदार था।...

एकबार किसी कारण नरेन्द्रनाथ बहुत दिनों तक नहीं आये। श्रीरामकृष्ण उनके आने की प्रतीक्षा में बाट जोह रहे थे। प्रतिदिन आशा करते थे कि नरेन्द्र आ जायेगा। बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करने पर भी जब देखा कि नरेन्द्र नहीं आया तो वह अत्यन्त अधीर हो पड़े। अन्तर की विरहभावना दबा न रख सकने के कारण उसी दिन कलकत्ते जाकर नरेन्द्र को देख आने का निश्चय किया। बाद में याद आयी कि उसदिन रविवार था। यदि नरेन्द्र घर में न हो तो विशाल कलकत्ते में कहाँ-कहाँ खोजते फिरेंगे। दूसरे ही क्षण याद आयी रविवार के ब्राह्म समाज की सन्ध्याकालीन उपासना में अवश्य ही वह भजन गाने जायगा। वहाँ जाने पर भेंट होगी।

सन्ध्या को समाज की उपासना आरम्भ होती थी। ऐसे समय भावस्थ श्रीरामकृष्ण ब्राह्म मन्दिर में प्रविष्ट होकर जहाँ मंच पर बैठकर आचार्य उपासना करते हैं, उधर बढ़ आये। श्रीरामकृष्ण के आकस्मिक आगमन से समाज में बड़ी खलबली मच गयी।

श्रीरामकृष्ण सहसा मंच के पास उपस्थित होकर समाधिस्थ हो गये। उनकी उस समाधि को देखने के लिए बहुत लोग उतावले हो पड़े।

नरेन्द्रनाथ श्रीठाकुर को उस अवस्था में देखकर समझ गये कि वह क्यों आये हैं ! गुरु का श्रीरामकृष्ण के पास आ खड़े हुए। समाज मन्दिर में भारी हलचल मच गयी। श्रीरामकृष्ण को देखने के लिए अनेक व्यक्ति आगे आने की चेष्टा करने लगे। जनता को शान्त करने के लिए कोई दूसरा उपाय न देखकर समाज गृह की भारी बत्तियाँ बुझा दी गयीं। फलस्वरूप गड़बड़ी और भी बढ़ गयी।

नरेन्द्रनाथ श्रीरामकृष्ण के शरीर रक्षक के रूप में सटे रह गये। समाज के लोगों के इस अशिष्टतापूर्ण व्यवहार से वे बहुत दुःखी हुए। समाधि भंग होने पर वे श्रीरामकृष्ण को लेकर समाजगृह से किसी तरह पीछे के दरवाजे से बाहर निकले और उन्हें साथ लेकर दक्षिणेश्वर आये। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को पाकर आनन्द में विभोर हो गये। समाज के लोगों ने उनके प्रति जिस प्रकार का अशिष्ट व्यवहार किया है—यह एक बार भी उनके मन में नहीं आया। उन्होंने जो चाहा था—उसे पाया था। और किसी ओर उनकी दृष्टि नहीं थी।

श्रीरामकृष्ण को उस ढंग से अपमानित होते देखकर नरेन्द्रनाथ के चित्त पर भारी चोट पहुंची। वह उन्हें उलाहना देते हुए कहने लगे, "आप क्यों वहाँ गये ? उन लोगों ने जरा भी आपकी मर्यादा रखी ?" उन्होंने मन के दुःख में और भी बहुत कठोर वाक्य कहे थे। श्रीरामकृष्ण इस ढंग से अपमानित हुए यह उनके लिए असहनीय था।

केवल इतना ही नहीं। अपने प्रति श्रीरामकृष्ण के इतने आकर्षण का कारण न समझ कर नरेन्द्रनाथ ने एकदिन कहा था, "पुराण में है कि राजा भरत हरिण की चिन्ता करते-करते मृत्यु के बाद हरिण बन गये थे। यदि यह बात सत्य है तो आपको भी मेरे प्रति ऐसे आकर्षण का परिणाम सोचकर देखना चाहिए।"

श्रीरामकृष्ण सरल बालक की तरह थे। नरेन्द्र के मुख से यह बात

सुनकर वह बहुत ही चिन्तित हो पड़े। फिर बोले, "ऐसा ही तो है, तू ने ठीक ही कहा है। तो क्या होगा? मैं तो तुझे बिना देखे नहीं रह सकता।"

उससे भी मन शांत न हुआ। वह भयंकर पश्चात्ताप से दग्ध होकर भवतारिणी के मन्दिर में गये। कुछ देर के बाद मन्दिर से निकल आकर उन्होंने हँसते हुए कहा—"भाग साले, मैं तेरी बात नहीं मानता। माँ ने बताया है—'तू उसे साक्षात् नारायण समझता है। इसी से इतना प्यार करता है। जिस दिन तू उसके भीतर नारायण को नहीं देखेगा उसदिन उसका मुख भी नहीं देख सकेगा।"

नरेन्द्र के सारे उलाहने उनके एक ही बात से बह गये। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को विश्वनाथ दत्त के पुत्र रूप से नहीं प्यार करते थे। देखने सुनने, गाने बजाने और पढ़ने लिखने में वह अनन्य-साधारण थे—इन गुणों के लिए भी उन्हें प्यार नहीं करते थे। उन्हें नर ऋषि का अंशावतार—तथा प्रधान वार्तावह रूप से जानते थे, इसी कारण नरेन के प्रति उनका ऐसा दुर्दमनीय आकर्षण था। नरेन के आने से ही वह एकदम अस्थिर हो जाते थे, नवबत में शारदा देवी को खबर भेज देते थे—"अजी नरेन आया है, अच्छी तरह रसोई बनाओ।" मोटे मोटी रोटी तथा गाढ़ी चने की दाल नरेन को बहुत प्रिय थी। श्रीशारदा देवी भी वही पकाकर श्री ठाकुर के कमरे में भेज देती थीं।

* * *

इतने दिनों में दक्षिणेश्वर में अनेक युवक भक्तों का समागम हुआ। श्री ठाकुर रामकृष्ण देव ने सबका धर्म जीवन बहुत ही आदर के साथ गठित किये। जिनको साकार में विश्वास है उनको साकारभाव से, जिनका विश्वास निराकार में—उनको उसी भाव से धर्मोपदेश देते थे। कोई देवदेवी के प्रति विशेष अनुरागी है—फिर कोई अद्वैतवादी है। सभी के लिए स्थान श्री रामकृष्ण के पास था। वह सर्वभावमय थे इसीलिए तो सभी भावों के पथिकों को वह भूमानन्द के पथ पर तथा अनन्त की ओर परिचालित कर

करते थे। प्रत्येक युवक भक्त ही उन्हें पिता से अधिक प्यार तथा भक्ति करते थे। नाटूराम अभी थोड़े ही दिनों से दक्षिणेश्वर में आने जाने लगे थे। श्रीरामकृष्ण के अहैतुक स्नेह से उनका हृदय विगल गया। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के गम्भीर प्रेम के प्रसंग में अपनी माता से कहा था—"ओह! वे मुझे जितना प्यार करते हैं उसकी तुलना नहीं है। तुम भी मुझे वैसा प्यार नहीं करती हो।" पुत्र के मुख से ऐसी बात सुनकर नाटूराम की माँ को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने कहा—"अच्छा! मैं माँ हूँ—मैं तुझे प्यार नहीं करती?"

नाटूराम ने गर्व से कहा—"नहीं तुम भी मुझे उनकी तरह प्यार नहीं करती।"

नाटूराम की माँ चुप हो गयीं। उन्हें आश्चर्य हुआ कि मेरे लड़के को कोई व्यक्ति मुझसे भी अधिक प्यार कर सकता है? यथार्थ में श्रीठाकुर का प्रेम वैसा ही असीम अनन्त निविड़ और गम्भीर था। श्रीरामकृष्ण ने माता पक्षी की तरह अपने भक्तों को परम स्नेह से वक्षस्थल पर आच्छादित किये रखा, शरीर के ताप से उन्हें वर्धित किया तथा सुयोग पाने पर उन युवकों को आत्मज्ञान में अधिरूढ़ किया। श्रीरामकृष्ण के दिव्य आकर्षण से युवकों के गृह का आकर्षण पिता माता का आकर्षण कम हो गया। कलनादिनी गंगा के तट का यही दक्षिणेश्वर उनलोगों को प्रिय हो गया। वे ज्यादातर ही दक्षिणेश्वर आते, रात में भी वहीं रह जाते थे।

किन्तु श्रीरामकृष्ण के नेत्रों में निद्रा नहीं थी। संसार की कल्याण चिंता में ध्यान मग्न अवस्था में उनकी रातें बीत जाती थी। उप:काल में मत्त होकर मधुर कंठ से कभी माँ का नाम गान करते—कभी ताली पीटकर परम पावन हरिनाम में तल्लीन हो जाते। पहनी हुई धोती सम्हालना भी मुश्किल था। युवक भक्तों के पास जाकर कहते—"अजी तुम लोग उठो। बैठकर ध्यान करो, माँ का नाम जपो, क्या यहाँ तुमलोग सोने आये हो?"

श्रीरामकृष्ण का कंठस्वर कान में पहुँचते ही सबलोग चौंक कर उठ

जाते, कोई ध्यान में बैठते, कोई जप करते रहते थे। किस ढंग से ध्यान करना होता है उसे श्रीरामकृष्ण सबको समझा देते थे। किसी के भीतर शक्ति-संचार कर देते थे। शिष्य लोग गंभीर ध्यान में मग्न हो जाते थे।

पूर्वाकाश में लालिमा छा जाने के पहले ही मन्दिर में देवता के जाग्रत होने की मधुर घण्टाध्वनि से घोषणा हो जाती, दीपक जल उठते। नौबत बजने लगती। मंदिर में मंगल आरती आरम्भ होती, घण्टा घड़ियाल बज उठते। गंगा की कलध्वनि के साथ वह ध्वनि मिल जाती। श्रीरामकृष्ण के घर में भी मधुर प्रार्थना संगीत या कीर्तन होते। वह भावावेश से नाचते और कभी समाधिस्थ हो जाते। दिन भर ही भक्त समागम होता रहता। उनका उद्दीपनमय धर्मोपदेश सुनकर सभी का मन किसी लोकातीत सत्ता में लीन हो जाता था।

श्रीरामकृष्ण, भक्तों का भाव समझकर जिसको जहाँ वेदना थी उसे पोंछ देते थे। तारकनाथ पहले पहल दक्षिणेश्वर आये। श्रीठाकुर को देखते ही उन्हें ऐसा लगा मानो माँ बैठी हुई है—जगज्जननी माँ। प्रणाम करने के लिए सिर झुकाया कि श्रीरामकृष्ण ने दोनों हाथ फैलाकर माता की तरह तारकनाथ के सिर को छाती में खींच लिया। स्नेह और प्यार से उन्हें निहाल कर दिया। थोड़ी उमर में मातृहीन तारकनाथ के हृदय से माता का अभाव सदा के लिए दूर हो गया। श्रीरामकृष्ण के भीतर उन्होंने अपनी खोयी हुई माता को वापस पाया। वस्तुतः श्रीरामकृष्ण थे माँ—जगज्जननी आद्याशक्ति माँ, इसलिए उन्होंने रक्षण-पालन, भरण-पोषण तथा इहलोक परलोक के कल्याण के माध्यम से तारकनाथ के मन में उनकी माँ का स्थान प्राप्त कर लिया। भक्तों के धर्मजीवन गठित करने के लिए श्रीरामकृष्ण के प्रयत्न में कमी नहीं थी। उनकी योगदृष्टि के सामने उनके अन्तर का चित्र खिल उठता था। वे उनके साधन मार्ग के सारे विघ्नों को दूर कर देते थे और आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव से सभी की अपूर्णता दूर कर देते थे।

श्रीरामकृष्ण की शिक्षा की शैली अभिनव और अनुपम थी। वह शिष्य।

की मापकाठा बनाये रखकर उनके जीवन की पूर्णता सिद्ध करते थे। किन्तु, वह भाव वे जरा भी नष्ट नहीं करते थे। नरेन्द्र को वह सर्वोच्च अधिकारी समझते थे। अद्वैत ब्रह्मात्मज्ञान ही सर्वोच्च ज्ञान है। वह स्वयं ही कहते थे—"अद्वैतानुभूति ही धर्मजीवन की अन्तिम बात है।" उस समय के भक्तों में केवल नरेन्द्रनाथ ही उस अद्वैतज्ञान के अधिकारी थे।

एकदिन श्रीरामकृष्ण एकान्त में नरेन्द्रनाथ को अद्वैत ज्ञान का उपदेश दे रहे थे; जीव और ब्रह्म के एकत्व-बोध की बात समझा रहे थे। "सर्वं ब्रह्ममयं जगत्" इस अनुभूति में उन्हें प्रतिष्ठित करना चाहते थे। नरेन्द्र ने सब बातें सुनीं, किन्तु धारणा नहीं कर सके। सन्देह में उनका मन दोलायमान हो रहा था। श्रीरामकृष्ण के उपदेश की बात सोचते हुए वह बरामदे में हाजरा महाशय के पास गये। सभी 'ब्रह्म है'—इस आलोचना के प्रसंग में नरेन्द्रनाथ ने कहा—"क्या ऐसा कभी हो सकता है? लोटा भी ईश्वर, कटोरी भी ईश्वर, जो कुछ देख रहा हूँ सभी ईश्वर और हमलोग भी ईश्वर हैं?"

हाजरा महाशय ने परिहास करते हुए कहा—"ऐसा कभी हो सकता है? तुम भी कैसे भोले हो।" इस बात पर दोनों खूब हँसने लगे। श्रीरामकृष्ण अद्वैतानुभूति में प्रतिष्ठित रहकर नरेन्द्र को अद्वैत ज्ञान का उपदेश दे रहे थे। उस समय भी उनका मन उस उच्चभूमि में था। भावावेश से बाहर निकल आकर—"तुम लोग क्या कहते हो?" कहकर वे नरेन्द्र को स्पर्श करके समाधिस्थ हो गये। उनके मुखमण्डल पर स्वर्गीय हँसी खिल उठी, चिदानन्द की आभा में वह उज्ज्वल प्रतीत हो रहा था। श्रीठाकुर के उस शक्तिपूर्ण स्पर्श से नरेन्द्रनाथ के मन में अद्भुत परिवर्तन आया। मानो आँख के सामने से एक पर्दा हट गया। वह सर्वत्र ब्रह्म दर्शन करने लगे।

उस दिन की घटना के सम्बन्ध में उन्होंने आगे चलकर किसी समय कहा था, "श्रीठाकुर के उस अपूर्व स्पर्श से क्षण भर में मेरे भीतर अद्भुत भावान्तर हुआ, स्तम्भित होकर सचमुच ही मैं देखने लगा—ईश्वर के अतिरिक्त विश्व ब्रह्माण्ड में कुछ भी नहीं है। ... 'वह भाव किसी तरह भी नहीं घटता था।

मैं घर लौट आया—वहाँ भी वही भाव। जो कुछ देख रहा था सभी ब्रह्म हैं। खाने बैठा, देखा, थाली गिलास परोसने वाला सभी ब्रह्म है, मैं भी उनके सिवाय और कुछ भी नहीं हूँ। दो एक कौर खाकर ही मैं बैठा रहा। 'बैठा क्यों है रे, खाता क्यों नहीं ?'—माँ की इस बात से कुछ होश आने पर मैं पुनः खाने लगा।

नरेन्द्र एक विराट ब्रह्मानुभूति के राज्य में चले गये थे, वहाँ ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं है। सभी चैतन्यमय है। उस भाव का कुछ भी उपशम नहीं हो रहा था। रास्ते से चल रहे थे—एक गाडी वेग से आने लगी, वह देख रहे थे किन्तु दूसरे दिन की तरह गाडी के सामने से हट जाने की इच्छा नहीं हो रही थी। थोड़ा भी भय नहीं था—सभी ब्रह्म हैं।

वैसी अवस्था देखकर उनकी माँ को डर हुआ। उन्होंने सोचा कि लड़के को कोई कठिन रोग हो गया है। कहती थी—"वह अब नहीं बचेगा।"

कुछ दिनों के अनन्तर सर्वत्र ब्रह्म-भाव कुछ घट जाने पर नरेन्द्रनाथ ने समझा था कि—यही अद्वैत विज्ञान का आभास है। काशीपुर के उद्यान में श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र को अद्वैत ब्रह्मानुभूति में उन्नीत किया था। वह घटना हमें आगे मिलेगी। यह अद्वैतज्ञान आँचल में बाँधकर ही विवेकानन्द ने कहा था—"ब्रह्म से लेकर कीट परमाणु तक सर्वभूतों में वही प्रेममय है। हे मित्र! शरीर, मन, प्राण इनके चरणों में अर्पण करो।" "तुम्हारे सामने अनेक रूपों में विराजमान ईश्वर को छोड़कर तुम कहाँ उन्हें खोज रहे हो? जो व्यक्ति जीवों से प्रेम करता है, वही यथार्थ में ईश्वर की सेवा करता है।" सबके भीतर ऐसी ब्रह्म-चेतना को जाग्रत करना ही उनके जीवन का ध्येय था। उन्होंने सभी के ललाट पर ब्रह्मतिलक अङ्कित कर दिया था।

※ ※ ※

नरेन्द्रनाथ के आने पर श्रीरामकृष्ण उन्हीं को लेकर व्यस्त हो जाते थे। ऐसा भी हुआ है कि नरेन को दूर से देखते ही आनन्द से उत्फुल्ल होकर

"यह न०—, यह न०—" कहते कहते समाधिस्थ हो जाते थे। श्रीरामकृष्ण और नरेन्द्र के बीच यह गुप्त सम्बन्ध बराबर ही रहस्यपूर्ण रहा। वह ज्योतिर्मण्डल के ऋषि को नरेन के भीतर पाते थे।

किन्तु शीघ्र ही इस भूमिका का परिवर्तन दिखाई पड़ा। ऐसा एक समय आया जब जान पड़ा कि श्रीठाकुर नरेन के सम्बन्ध में ऊपरी दृष्टि से पूर्णतया उदासीन हैं। नरेन्द्रनाथ दक्षिणेश्वर में आये हैं। परन्तु श्रीठाकुर ने उनके साथ एक भी बात नहीं कही। कुछ देर तक प्रतीक्षा करके वह बाहर चले गये, फिर घर में लौट आये—श्रीठाकुर दूसरों से बातें करने लगे, उनकी ओर एक बार मुँह घुमाकर देखा तक नहीं। वह पुनः निकल गये। कुछ क्षणों के बाद वह भीतर आ बैठे। श्रीठाकुर उन्हें देखते ही बिछौने पर करवट बदलकर लेट गये। उनकी यह उदासीनता तथा मौन नरेन्द्रनाथ के लिए असहनीय प्रतीत हुए। उनका हृदय मरोड़ कर रुलाई आने लगी। किन्तु वे अधीर होने वाले मनुष्य नहीं थे। उन्होंने अपने को सम्भाल लिया। धीरे धीरे श्रीठाकुर को प्रणाम कर घर लौट आये।

कई सप्ताह बीत गये। नरेन्द्रनाथ प्रति सप्ताह आते रहे—किन्तु श्रीरामकृष्ण की उदासीनता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। बहुत दिनों के बाद श्रीठाकुर ने नरेन से पूछा, "अच्छा, मैं तो तेरे साथ एक भी बात नहीं करता तो भी तू यहाँ क्यों आता है बता तो?"

सहज स्वर से नरेन्द्र ने उत्तर दिया,—"क्या मैं आपकी बात सुनने आता हूँ? आपको मैं प्यार करता हूँ, बिना देखे रह नहीं सकता, इसी से आता हूँ!"

इससे बढ़कर और क्या बात है? श्रीरामकृष्ण ने इतना ही चाहा था। नरेन्द्र उन्हें प्यार करता है। इसी को जानकर वह प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"मैं तुझे जाँच कर देख रहा था। आदर स्नेह न पाने पर भी तू भागता है या नहीं, तेरे जैसे व्यक्ति में ही इतनी उपेक्षा सहना सम्भव है।" श्रीरामकृष्ण और नरेन्द्रनाथ अभिन्नात्मा थे।

श्रीठाकुर की आध्यात्मिक शक्ति ने विद्रोही नरेन को वशीभूत कर लिया। उन्होंने क्रमश: श्रीरामकृष्ण को पथप्रदर्शक गुरु रूप से मान लिया। उस मान लेने के पीछे श्रीरामकृष्ण की विराट आध्यात्मिक शक्ति विद्यमान थी। "करिष्ये वचन तव"—इस स्वीकृति के पूर्व अर्जुन को वश में लाने में श्रीभगवान् कृष्ण को बहुत परिश्रम करना पड़ा था। इसी का परिणाम अष्टादश अध्यायी गीता है। विश्वरूप दिखाने से भी पूरी सफलता नहीं मिली। पार्थ को यन्त्र बनाकर जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने अपने धर्म संस्थापन कार्य को सुसम्पन्न किया था उसी प्रका विवेकानन्द को यन्त्र बनाकर श्रीरामकृष्ण ने भी अपनी युगवाणी तथा युग आदर्श को संसार के सामने उपस्थित किया था।

नरेन्द्रनाथ का मन ईश्वर लाभ के लिए बहुत ही व्याकुल होने लगा। दिन पर दिन वह व्यग्र होने लगे। श्रीठाकुर के पास शीघ्र शीघ्र आने लगे। रात में भी कभी कभी दक्षिणेश्वर में ही रह जाते। श्रीठाकुर भी नरेन को हाथ पकड़ कर ले चले असीम के मार्ग में।

एकदिन श्रीठाकुर नरेन्द्र को पंचवटी में एकान्त स्थान में ले गये और बोले, "बहुत दिन हो गये माँ ने मुझमें अणिमा आदि विभूतियाँ दी हैं परन्तु मुझे उनके व्यवहार का प्रयोजन नहीं पड़ा। माँ से कहकर तुझे वे विभूतियाँ देना चाहता हूँ। माँ ने बता दिया है कि तुझे अनेक काम करने पड़ेंगे। वे शक्तियाँ तेरे भीतर रहे तो प्रयोजन के अनुसार तू उन्हें काम में लगा सकेगा। क्या कहता है?" नरेन्द्र जानते थे कि श्रीठाकुर वृथा बात नहीं कहते। उनकी अलौकिक शक्ति के अनेक परिचय उन्हें मिले थे। इस कारण वह कुछ चिन्तित हुए। बाद में पूछा—"क्या ये विभूतियाँ ईश्वर-लाभ के लिए सहायता देंगी।"

श्रीरामकृष्ण ने कहा, "नहीं, उस विषय में कुछ सहायता नहीं होगी। किन्तु ईश्वर-लाभ के अनन्तर जब तू उनका काम करेगा तब ये चीजें काम में आ सकती हैं।"

नरेन ने तब उत्तर दिया, "महाशय, तो वे सब मेरे लिए आवश्यक

नहीं है, पहले ईश्वर-लाभ। विभूतियाँ प्राप्त करने पर यदि जीवन का लक्ष्य ही भूल जाऊँ तो सर्वनाश हो जायगा।"

नरेन की बात सुनकर श्रीठाकुर बहुत प्रसन्न हुए। अत्यन्त उच्च कोटि का आधार था नरेन्द्र—एक ही बात में अणिमादि विभूतियों का परित्याग कर दिया।

छः

बी० ए० की परीक्षा निकट थी। घर में अध्ययन में विघ्न होता है—बहुत हल्ला-गुल्ला है। इस कारण नरेन्द्रनाथ अपने मकान के पास ही अपनी नानी के मकान की दूसरी मंजिल की एक कोठरी में आकर पढ़ने लगे। पूरी रात जग कर पढ़ते थे। दिन में मित्रों की मण्डली की जमघट, ब्राह्म समाज तथा दक्षिणेश्वर में आना जाना, और भी सैकड़ों काम थे। उनका मन संयम तथा स्मृति शक्ति असाधारण थी। बी० ए० परीक्षा में केवल एक महीना बाकी था। उधर इङ्गलैण्ड का वृहत् इतिहास एकबार भी नहीं पढ़ा गया था। अब उपाय क्या था? बहुत सोच विचार कर वह इतिहास के ग्रन्थों को प्रतिदिन पढ़ने लगे। और तीन-चार दिनों के भीतर ही पूरा इतिहास कंठस्थ हो गया।

बी० ए० की परीक्षा के दिन बहुत सबेरे ही वह उठ गये। टहलते हुए वह दाशरथि सान्याल के चोरबागान स्थित घर में चले आये। उस समय भी सब लोगों को सोते देखकर वह ऊँचे स्वर से गान करने लगे—

> "महा सिंहासने बसि शुनिछो हे विश्वपति,
> तोमारइ रचित छन्दे महान् विश्वेर गीत।
> मतर मृत्तिका हाये, क्षुद्र एइ कंठ लोये,
> आमिओ तोमारि द्वारे होयेछि हे उपनीत।

किछु नाहि चाहि देव, केवल दर्शन मागि,
तोमारे शुनाबो गीत, एशेछि ताहारि लागि।
गाहे यथा रविशशी, सेइ सभामाझे बसि,
एकान्ते गाहिते चाहे एइ भक्तेर चित।"*

नरेन का गाना सुनकर सब लोग चौंककर जग पड़े। किन्तु वह एक पर एक गाना गाते ही चले जा रहे थे। उनके अन्तर की भाव-नदी में बाढ़ सी आ गयी। उन्होंने फिर से गाया—"पृथ्वीर धुलिते देव मोदेर जनम्"—इत्यादि।†

वह गाना समाप्त क एक अन्य सगीत आरम्भ कर दिया—"अचल घन-गहन गुण गाओ ताँहारि"—इत्यादि।‡

मधुर सुर-लहरी देश काल के मान को नष्ट ले जाने लगी। अवकाश में एक मित्र ने कहा—"आज तो परीक्षा है। जहाँ कहीं थोड़ी बहुत कमी हो उसे पूरा कर लेना चाहिये। पर तुम्हारा देखता हूँ सभी उल्टा है। मजे से मौज करते जा रहे हो।"

नरेन्द्रनाथ ने कहा—"हाँ भाई, वही तो करता हूँ। दिमाग को साफ रख रहा हूँ। मन को थोड़ा विश्राम भी तो देना होगा?"

नरेन्द्रनाथ आत्मविश्वासी थे। इसी कारण वह विश्वविजयी हो सके थे।

* * *

* "हे विश्वपति, आप महान् सिंहासन पर बैठकर अपने ही छन्द में रचित विश्व का सगीत सुन रहे हैं। धरती की मिट्टी होकर तथा यह छोटा सा कण्ठ लेकर मैं भी आपके ही द्वार पर उपस्थित हुआ हूँ। हे देव, मैं कुछ नहीं चाहता, केवल दर्शन माँगता हूँ। आपको संगीत सुनाऊँगा, उसी के लिए आया हूँ। जहाँ सूर्य चन्द्र गाते हैं, उसी सभा के बीच में बैठकर इस भक्त का चित्त एकान्त में गाना चाहता है।"

† "हे देव, पृथ्वी की धूल मे हमारा जन्म है।"

‡ "हे मन, उनके अचल घन-गहन गुण गाओ।"

१८८४ ई० के शुरू में बी० ए० की परीक्षा हो गयी।* परीक्षा की तैयारी के लिए उन्हें अमानुषिक परिश्रम करना पड़ा। परीक्षा का फल निकलने में विलम्ब था। मित्रों ने उन्हें लेकर स्थान स्थान पर आमोद प्रमोद का आयोजन किया। उन्हें जबरदस्ती ले जाते थे। उनमें बन्धुप्रीति इतनी अधिक थी कि वह अस्वीकार नहीं कर सकते थे। भजनगान, हास्यपरिहास, विविध आलाप-आलोचनाओं के माध्यम से वह सबको विमल आनन्द देते थे। उस समय उनकी उमर बीस साल की थी।

एकदिन बराहनगर में वह एक मित्र के घर गये। रात के ११ बजे तक संगीत का आलाप चल रहा था। भोजन समाप्त कर सब लोग सो गये। रात के लगभग २ बजे उनके मित्र हेमाली ने आकर खबर दी कि हृद्रोग से आक्रान्त होकर रात के दस बजे उनके पिता विश्वनाथ दत्त का देहान्त हो गया। उस हृदयविदारक समाचार के सुनते ही नरेन्द्रनाथ झट उठकर घर लौट आये और दूर मित्रों को बुलाकर पिता के शव को गंगा किनारे श्मशान घाट लाये और यथाशास्त्र अन्तिम क्रिया सम्पन्न करके सब लोग प्रातःकाल घर लौट आये।

दो एक मास के भीतर ही नरेन्द्रनाथ के पारिवारिक जीवन में एक महान सङ्कटपूर्ण मुहूर्त उपस्थित हुआ। पिता एक कौड़ी भी नहीं छोड़ गये थे। कुछ ऋण भी था। सबसे पहले माँ भाई बहिन सहित छः सात व्यक्तियों के अन्न वस्त्र का प्रश्न उपस्थित हुआ। महाजन मौका देखकर सामने आ गये। नरेन्द्रनाथ को जीवन में यही पहले-पहल दरिद्रता का सामना करना पड़ा। वह नंगे पाँव फटा कुर्ता पहने नौकरी की तलाश में स्थान-स्थान पर भटकने

* बी० ए० पढ़ते समय ही भविष्य के विषय में सोचकर उनके पिता ने नरेन्द्रनाथ को सुप्रसिद्ध अटार्नी निमाइचरण बसु के अधीन अटार्नी का काम सीखने लगाया था और गृहस्थ रूप में विवाह के लिए कन्या की खोज भी कर रहे थे। परन्तु नरेन्द्र की एक बात—"विवाह नहीं करूँगा।"

लगे। मित्रों की विमुखता ने उन्हें मित्रता का यथार्थ स्वरूप जता दिया। माता के मलिन मुख को देखकर उनका चित्त व्याकुल हो जाता, छोटे छोटे भाई बहनों का शीर्ण शरीर देखकर बेचैनी से वह एकान्त में आंसू बहाते थे। चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था। कहीं भी आशा का थोड़ा प्रकाश भी उन्हें नहीं दिखाई पड़ा। प्रातःकाल उठकर वह पहले भंडार में चावल कितना है पता लगाते और हालत का पता लगते ही नहाकर 'निमन्त्रण है' कहते हुए घर से निकल जाते थे। दिनभर नौकरी की तलाश में आफिसों के दरवाजे खटखटाते थे, परन्तु सभी जगह से उन्हें निराश होकर लौटना पड़ता था।

उन्हें संसार का यथार्थ परिचय मिल गया। उन्होंने समझ लिया—दुर्बल, दरिद्र और अनाथ दुःखों के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। मानो यह पृथिवी शैतान की बनायी हुई है। किसी समय उन्होंने कहा था—"एक दिन कड़ी धूप में खाली पैर जल रहे थे, मान्युमेंट की छाया के नीचे थोड़ा विश्राम लेने के लिए मैं बैठ गया। इसी समय वहां दो मित्र आ जुटे। एक ने गाना आरम्भ किया—'बहिछे कृपाघन ब्रह्मनिश्वास पवने'—इत्यादि*। सुनकर मुझे ऐसा लगा मानो सिर पर किसी ने बड़े जोर से आघात किया। मैंने कहा, 'ठहर, चुप रह, भूख की ज्वाला से जिनके परिजनों का कष्ट भोगना नहीं पड़ता, खींच जाने वाले पखे की हवा खाते हुए उनके सामने ऐसी कल्पना मधुर मालूम हो सकती है, मुझे भी किसी समय ऐसा ही मालूम होता था परन्तु कठोर सत्य के सामने यह बिल्कुल परिहास प्रतीत होता है।'"मित्र दुःखित हुए।

"धनिक मित्र प्रायः गाना गाने के लिए बुलाते। उनका अनुरोध टाल न सकने के कारण मुझे जाना पड़ता, परन्तु कोई कभी मेरी दुर्दशा की बात जानने की इच्छा भी नहीं करते थे। मैंने भी किसी से अपने दुःख की बात नहीं बतायी।"

---

* वायुप्रवाह में ब्रह्म का कृपापूर्ण निश्वास बह रहा है, इत्यादि।

उसका नैतिक पतन हुआ है—यह समाचार जब उनके कानों में पहुँचा तो किसी तरह भी उसपर वह विश्वास नहीं कर सके। एकदिन भवनाथ नामक एक युवक भक्त ने रोते हुए आकर श्रीरामकृष्ण से कहा—"महाशय, नरेन को ऐसा होगा यह किसी ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।"

श्रीरामकृष्ण अस्थिर हो पड़े। उन्होंने उत्तेजित स्वर से कहा—"चुप रह! माँ ने कहा है—'नरेन कभी वैसा नहीं हो सकता।' मेरे सामने फिर ऐसा कभी कहने पर मैं तुम्हारा मुँह नहीं देख सकूँगा।"

नरेन्द्रनाथ ने किस प्रकार गम्भीर मनोवेदना से भगवान् के अस्तित्व के बारे में सन्देह प्रकट किया था, इस पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। वह बचपन से ही ईश्वर विश्वासी थे। विशेष रूप से श्रीरामकृष्ण देव के समान देवमानव के संस्पर्श में आकर उनका विश्वास और भी दृढ़ हो गया था। अपने जीवन में भी अनेक अतीन्द्रिय दर्शन प्राप्त करके वह धन्य हुए थे। क्या वह ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट कर सकते थे? वस्तुत वैसा नहीं, उनका मन एक प्रकार के क्षोभ से भर गया था। वह सोचते थे 'ईश्वर अवश्य है और उन्हें प्राप्त करने का उपाय निश्चय ही है। नहीं तो जीवित रहने का मूल्य ही क्या है? जीवन में दुःख कष्ट जितना ही आवे, ईश्वर लाभ के पथ को खोज निकालना होगा।"*

---

* दुःख के भस्म-स्तूप से ही मानो भावी आर्तबन्धु विवेकानन्द का जन्म हुआ था। श्रीरामकृष्ण ने कहा था—नरेन्द्र जिस दिन दुःख दारिद्र्य के संस्पर्श में आयेगा उस दिन उसके चरित्र का दम्भ असीम करुणा में परिवर्तित हो जायेगा। उसका अपार आत्मविश्वास दूसरे के हताश और भयभीत चित्त में साहस और विश्वास लौटा लाने के यन्त्र रूप बन जायेगा। उसके कर्म की स्वाधीनता बलिष्ठ आत्मजय में प्रतिष्ठित होकर दूसरों के लिए ग्रह के मुक्त प्रकाश यथार्थ रूप में दिखाई देगी।" श्रीरामकृष्ण की वह बात अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुई थी। सांसारिक दुःख-कष्ट की ज्वाला ने उन्हें चिरप्रेमिक विवेकानन्द के रूप में परिणत कर दिया था।

किन्तु सामयिक दुःख-कष्ट से मुक्त होने का वह कोई उपाय नहीं निकाल सके। गर्मी के महीने इसी तरह बीत गये। वह लगातार जीविका की खोज में घूमते रहे। वर्षाऋतु आ गयी। बारिश में भीगते हुए दिनभर भूखे रहकर क्लान्त शरीर से वह रात को घर लौटते। शरीर इतना अधिक थका रहता कि एक कदम भी आगे बढ़ना कठिन हो जाता। लाचार होकर रास्ते के पास एक मकान के चबूतरे पर मृतवत् पड़े रहते। सैकड़ों चिन्ताएँ उनके मन को घेर लेती थीं। अचेत की तरह कब तक वहाँ पड़े रहे इसका उन्हें पता भी नहीं था। एकाएक उनका अन्तर एक अलौकिक प्रकाश से भर गया। सारा संशय-जाल छिन्न भिन्न हो गया। वहाँ एक अनिर्वचनीय आनन्द और शान्ति का राज्य छा गया। शरीर में कुछ भी क्लान्ति नहीं थी—केवल आनन्द ही आनन्द था और मन में असीम बल तथा शान्ति विराजमान थी। जब वह घर लौटे तो अरुण की आभा से चारों ओर रंजित हो रही थी। मानो उन्हें मोहमुक्त नवजीवन का लाभ हुआ है।

* * *

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्रनाथ के दीर्घ अदर्शन से व्याकुल थे। उनके दिन मानो बीतना नहीं चाहते थे। नरेन्द्रनाथ ने भी दारुण दुःख के कारण दक्षिणेश्वर न जाने का संकल्प किया था। पितामह की तरह संन्यास धर्म ग्रहण करके गुप्त रूप से गृहस्थी छोड़ने का निश्चय किया। गृह-त्याग का दिन भी उन्होंने स्थिर कर लिया। परन्तु श्रीठाकुर को कुछ भी न बताया। ऐसे समय समाचार मिला श्रीठाकुर उसी दिन कलकत्ते के एक भक्त के मकान में आ रहे हैं। उनसे एकबार भेंट करने की इच्छा से वे उस भक्त के घर पहुँचे। नरेन्द्रनाथ को देखते ही श्रीठाकुर कोई दूसरी बात न उठाकर उन्हें दक्षिणेश्वर आने के लिए जिद करने लगे। नरेन्द्रनाथ की सैकड़ों आपत्तियाँ बह गया। उन्हें श्रीठाकुर के साथ दक्षिणेश्वर जाना पड़ा। दक्षिणेश्वर पहुँचते ही श्रीठाकुर को भावान्तर हुआ। वे नरेन के पास बैठकर गाना गाने लगे :

"कथा बोलते डराइ, ना बोलते डराइ।
(आमार) मने सन्द हय, पाछे तोमाधने हाराइ हाराइ।"*

नरेन्द्रनाथ भी अपने को सम्हाल न सके। उनके वक्ष-स्थल पर भी आँसुओं की धारा बह चली।...

श्रीठाकुर रात्रि में नरेन्द्रनाथ को पास बुलाकर एकान्त में कहने लगे—"म जानता हूँ। तुम माँ के काम के लिए आये हो। इसलिए गृहस्थी में कभी फँसे नहीं रह सकोगे। परन्तु जब तक मैं हूँ तब तक मेरे लिए यहीं रहो।" श्रीठाकुर की आँखों में आँसू आ गये। नरेन्द्रनाथ भी सिर झुकाये रोने लगे। उनका गृह-त्याग फिलहाल रुक गया। .

दूसरे दिन नरेन्द्रनाथ घर लौट आये। फिर सैकड़ों चिन्ताओं से उनका चित्त आच्छन्न हो गया। बहुत घूमने के बाद अटार्नी के आफिस में एक मामूली नौकरी मिली। पुस्तकों का अनुवाद करने से भी कुछ पैसे मिलने लगे। परन्तु उससे परिवार-पोषण के लिए कोई स्थायी प्रबन्ध नहीं हो सका। मानसिक अशान्ति से एक समय वे विक्षिप्त-से हो गये। ऐसे समय उन्होंने सोचा—श्रीठाकुर की बात तो भगवान् सुनते हैं। यदि वह मेरी इस अवस्था के लिए भगवान् के पास प्रार्थना करते हैं, तो कोई उपाय हो सकता है। और वे तो मेरा कोई भी अनुरोध नहीं टालते।

ऐसी भावना लेकर एकदिन नरेन्द्रनाथ दक्षिणेश्वर आये। और जिद करने लगे—"आपको कोई प्रबन्ध करना ही पड़ेगा। आप अपनी माँ से एकबार कहिये, तो मेरे सभी कष्टों का निराकरण हो जायेगा।" श्रीठाकुर ने धीमे स्वर से कहा—"अरे, म तो माँ से वैसी चीज नहीं माँग सकता। तू खुद क्यों नहीं माँगता? माँ को नहीं मानता इसलिए ही तो तुझे इतने कष्ट हैं।"

* अर्थात् बात कहने में डरता हूँ, न कहने में भी डरता हूँ। मेरे मन में सन्देह होता है कि शायद मैं तुम्हें खो बैठूँ, खो बैठूँ।

श्रीरामकृष्ण देव ने थोड़ा मौन रहकर कहा—"आज मंगलवार है। मैं कहता हूँ आज रात को माँ के पास जाकर तू जो माँगेगा, माँ वही देंगी।"

इस बात को सुनकर नरेन्द्रनाथ कुछ आश्वस्त हुए। उनकी बात तो मिथ्या नहीं हो सकती। नरेन्द्रनाथ ने मन ही मन संकल्प किया कि माँ के मन्दिर में जाकर माँ से निकट पारिवारिक दुःख-कष्टों के अवसान के लिए प्रार्थना करेंगे। रात का एक पहर बीत जाने पर श्रीठाकुर ने उन्हें काली मन्दिर में भेजा।

मन्दिर में जाकर माँ की तरफ देखते ही नरेन्द्रनाथ का मन एक अनिर्वचनीय आनन्द से भर गया। उन्हें ऐसा लगा मानों माँ चिन्मयी हैं, अनन्त प्रेम और सौंदर्य की स्वरूपिणी हैं। वे विह्वल हो गये। माँ के उज्ज्वल प्रकाश से उनका हृदय भर गया। भक्ति-नम्रचित्त से उन्होंने माँ को प्रणाम किया। घर गृहस्थी की चिन्ता उनके मन में नहीं था। माँ के कृपास्वाद व निर्मल आनन्द से उनका सारा हृदय भर गया। सिर झुकाये उन्होंने प्रार्थना की—"माँ मुझे विवेक वैराग्य दो, ज्ञान दो, भक्ति दो, तुम्हारा निरंकुश दर्शन दो।"

एक अलौकिक आनन्द और शांति से उनका मन प्लावित हो गया। माँ की दिव्य अनुभूति से वह अपने को भूल गये। भावाविष्ट की तरह कुछ क्षण मन्दिर में रहकर वह श्रीठाकुर के पास लौट आये। श्रीठाकुर के प्रश्न से नरेन्द्रनाथ चौंक उठे। उन्होंने सिर झुकाये कहा—"नहीं महाशय, माँ को देखते ही मैं सब भूल गया। सांसारिक दुःखों को मिटाने की बात मैं माँ से नहीं कह सका।"

तब श्रीठाकुर बोले—"जा जा, फिर जा, माँ से जाकर दुःख मोचन की प्रार्थना जना।"

वह फिर मन्दिर में गये। परन्तु फिर भी वैसा ही भावान्तर उपस्थित हुआ। इकटक माँ की ओर देखते देखते ज्ञान भक्ति की प्रार्थना जतायी। पुनः श्रीठाकुर के पास लौट आये। श्रीठाकुर के द्वारा तिरस्कृत होने पर वह दृढ़ संकल्प लेकर फिर तृतीय बार मन्दिर में गये। अब की वह नहीं भूले।

दुःख-कष्टों के दूर करने की प्रार्थना जतायेंगे इसपर निश्चय था। किन्तु माँ के सामने प्रणाम करते ही उनके मन में विचार आया दुःख विमोचन जैसी तुच्छ चीजें माँ से कैसे माँगू? लज्जा के कारण उनके मुँह से वैसी प्रार्थना नहीं निकली। माँ को बार बार प्रणाम कर गम्भीर स्वर से प्रार्थना की—"माँ मैं और कुछ नहीं माँगता केवल तुम्हें चाहता हूँ। मुझे ज्ञान भक्ति दो।"

लौट आते ही श्रीठाकुर ने पूछा—'अपनी पारिवारिक दुःख-कष्टों की बात माँ से जतायी है न?"

'नहीं जतायी' कहने पर उन्हें पुनः डाट खानी पड़ी। परन्तु नरेन्द्र ने मन में समझा—ये सब श्रीठाकुर के ही खेल हैं। उन्होंने जादूगर की तरह उनके मन को घुमा दिया। किन्तु माँ-बहनों की बात उनकी चिन्ता का विषय बनी रही। उन्होंने श्रीठाकुर से कहा—"ये सब आपके ही काम हैं। आपने ही मेरे मन को पलट दिया है। अब आप को ही मेरे भाई-बहिनों की व्यवस्था कर देनी होगी। नहीं तो मैं आपको नहीं छोड़ूँगा।"

अनेक प्रकार से आग्रह के साथ अनुरोध करने पर श्रीठाकुर ने कहा—"अच्छा जा, माँ से कहूगा जिससे उन लोगों को मोटे अन्न वस्त्र की कभी कमी न होगी।"

नरेन्द्रनाथ ने माँ को मान लिया है—इसी से श्रीठाकुर को अपार आनन्द हुआ। उनके मन से दुश्चिन्ता का एक घना मेघ मानो अपसारित हो गया। उस दिन से नरेन्द्रनाथ का नया जीवन आरम्भ हो गया। उन्होंने आद्याशक्ति जगज्जननी को मान लिया है और उनपर विश्वास किया है। वह प्रतीक से प्रत्यक्ष में आ गये हैं। प्रतीक उपासना को मर्मवाणी उनके अन्तर में ध्वनित हो रही थी। इसी दिन उन्होंने भगवान् के मातृभाव का अनुभव किया। प्रतिमा भी ईश्वर की प्रतीक है इसे उन्होंने मान लिया। हिन्दू लोग प्रतिमा का अवलम्बन लेकर श्रीभगवान् की ही उपासना करते हैं। सांसारिक दुःख और दारिद्र्य मनुष्य को कितनी बड़ी शिक्षा देते हैं। नास्तिक को भी आस्तिक बना देते हैं!

नरेन्द्र की दुश्चिन्ता का अवसान हो गया। महाकाली की महिमा वे समझ गये। माँ केवल पत्थर की प्रतिमा ही नहीं, वह ब्रह्माण्डभाण्डोदरी, चतुर्वर्ग देने वाली हैं, भुक्ति मुक्ति प्रदायिनी, वराभयदायिनी हैं, माँ के गुण गाने के लिए उनका हृदय व्याकुल हुआ। उस समय वे माँ के, संगीत कुछ भी नहीं जानते थे। इसलिए श्रीठाकुर से अनुरोध किया, "मुझे माँ का गान सिखा दीजिये।"

श्रीठाकुर आनन्दकंठ से गाने लगे :
"(आमार) मा त्व हि तारा।
तुमि त्रिगुणधरा परात्परा॥
जानि मा ओ दीनदयामयी, तुमि दुर्गमेते दुःखहरा।
तुमि जले तुमि स्थले, तुमि आद्यामूले गो मा।
आछो सर्वघटे अक्षपुटे साकार आकार निराकारा॥
तुमि सन्ध्या तुमि गायत्री, तुमि जगद्धात्री गो मा।
तुमि अकूलेर त्राणकर्त्री, सदाशिवेर मनोहरा॥*

श्रीठाकुर से वह गाना सीखकर नरेन्द्रनाथ ने उसे गाते हुए सारी रात बिता दी। उनके अंतर का समुद्र प्रेमरूप चन्द्र के उदय से उद्वेल हो उठा।

* * *

श्रीठाकुर की उस प्रार्थना से नरेन्द्रनाथ का पारिवारिक धनाभाव कुछ अंशों में दूर हुआ। वह स्कूल की शिक्षकता तथा कुछ अन्य कार्य करने लगे।

---

* (मेरी) माँ तुम ही तारा, तुम ही त्रिगुणधरा, परात्परा हो। हे माँ दीनदयामयी, मैं जानता हूँ, तुम दुर्गति में दुःखहरा हो। माँ तुम जल में, तुम स्थल में, तुम आदिमूल में, तुम सब शरीरों में, सब नेत्रों में साकार, आकार, निराकार हो, तुम संध्या, तुम गायत्री, तुम जगद्धात्री, अकूल में त्राणकर्त्री तथा सदाशिव की मनोहरा हो।

उनके हृदय का दुर्दमनीय द्वन्द्व का भाव टूट गया। उनका अन्तःकरण झञ्झा-निर्मुक्त वारिधि के समान प्रशान्त और गम्भीर हो गया। जान से वे पहुँच गये भगवत्प्रेम के ऊर्ध्वतम अतिचेतन दिव्य प्रकाश में। साथ साथ श्रीरामकृष्ण देव की महिमा ने भी उनके अन्तर पर अधिकार कर लिया। वह दक्षिणेश्वर जाने का कोई मौका हा नहीं छोड़ते थे। श्रीठाकुर के सभी दर्शन आदि को उन्होंने सत्य मान लिया। श्रीरामकृष्ण देव भी धीरे धीरे नरेन्द्र को ऊपर की ओर—असीम और भूमानन्द के निकेतन की ओर चलाने लगे।

श्रीठाकुर के जीवन को वे नयी आँखों से देखने लगे। मानो उन्हें दिव्य-नेत्र मिल गये। श्रीठाकुर ने नरेन्द्र के नेत्र में मानो दिव्य दृष्टि का अंजन-लेपन कर दिया। श्रीठाकुर की प्रत्येक बात और आचरण से वह नया प्रकाश देखने लगे और अपनी चिन्ता में भी वे परिवर्तन का अनुभव करने लगे। इसी नरेन्द्रनाथ ने किसी समय श्रीठाकुर के मुँह पर कहा था—"आपके दर्शन आदि दिमाग के खयाल—आँख के भ्रम हैं।" प्रत्येक मनुष्य अपनी सीमित दृष्टि से असीम अनन्त को देखना चाहता है, अल्प मन-बुद्धि से विराट् को नापना चाहता है।

सन् १८८४ की घटना है। श्रीठाकुर के घर में अनेक भक्तों का समागम हुआ। नरेन्द्र भी उपस्थित थे। अनेक ईश्वरीय बातें हुईं। वैष्णव धर्म की आलोचना के प्रसंग में श्रीठाकुर ने कहा—"नामे रुचि, जीवे दया, वैष्णव पूजन—येही तीन वैष्णव धर्म के सार उपदेश हैं। जो नाम है वही ईश्वर हैं—नाम और नामी के अभेद ज्ञान से अनुराग के साथ सर्वदा भगवान् के नाम लेना चाहिये। भक्त और भगवान्, कृष्ण और वैष्णव के अभेद बोध से सर्वदा साधु भक्तों की पूजा और वन्दना करनी चाहिए। और जगत्-संसार श्रीकृष्ण की ही सृष्टि है, यह बात हृदय में धारण करके सब जीवों पर दया"—यहाँ तक कहकर ही वह अकस्मात् समाधिस्थ हो गये।

कुछ देर के बाद कुछ प्रकृतिस्थ होकर उन्होंने अपने ही मन में कहा—"जीव दया, जीवे दया? धत् तेरी! कीटाणुकीट है तू जीवों पर क्या दया

करेगा ? दया करने वाला तू कौन है ? नहीं, नहीं, जीवों पर दया नहीं। शिव-ज्ञान से जीव-सेवा।"

सभी लोगों ने मुग्ध होकर यह देववाणी सुनी। परन्तु उन बातों में जो परम सत्य निहित है, उसे केवल नरेन्द्रनाथ ही ने समझा था। उन्होंने बाद में कहा था, "कैसा अपूर्व प्रकाश आज मैं श्रीठाकुर की बात से देख पाया। श्रीठाकुर ने भावावेश में आज जो कुछ कहा उससे वन के वेदान्त को घर में लाया जा सकता है। संसार के सब कार्यों में उस परम सत्य का प्रयोग किया जा सकता है।...जीवन के प्रत्येक क्षण में मनुष्य जिनके सम्पर्क में आते हैं, जिन्हें प्यार करते हैं, श्रद्धा और सम्मान करते हैं—वे सभी ईश्वर के अंश हैं—स्वयं वही हैं।...संसार के सभी जीवों की इसी तरह शिवज्ञान से सेवा कर सकने से चित्त शुद्ध होने पर मैं भी स्वयं चिदानन्दमय ईश्वर का अंश, शुद्ध मुक्त स्वभाव हूँ, यह तत्त्व धारण कर सकेगा।" यदि भगवान् कभी अवसर दें तो, आज जो सुना इसी सत्य का संसार में सर्वत्र प्रचार करूँगा। पण्डित मूर्ख, धनी दरिद्र, ब्राह्मण चाण्डाल, सबको सुनाकर मोहित करूँगा!"*

—•••—

* 'शिव-ज्ञान से जीव-सेवा'—इस महामन्त्र में साम्य मैत्री और विश्वभ्रातृत्व का बीज निहित है। सबसे निकट के स्पृश्य अस्पृश्य पड़ोसियों और समाज, जाति उपजाति महामानवजाति के मनुष्यों में भी, फिर एक ही धर्म की विभिन्न शाखाओं अथवा मतवादों एवं विभिन्न धर्मों में एकता स्थापित करने के लिए मनुष्य मात्र की शिवज्ञान से सेवा ही एकमात्र सहज उपाय है। मनुष्य ही भगवान् के श्रेष्ठतम प्रतीक और मनुष्य की सेवा ही भगवान् की उच्चतम पूजा है। 'नरनारायण'-सेवा विशेषतया भारत की विभिन्न जातियों एवं सदा विवादशील विभिन्न धर्मसम्प्रदायों में एकता सम्पादन करने के लिए

सात

श्रीरामकृष्ण देव की प्रार्थना से नरेन्द्रनाथ के परिवार के लिए मोटे अन्न-वस्त्र का प्रबन्ध धीरे-धीरे हुआ सही, परन्तु पारिवारिक समस्या और भी जटिल हो गयी। मौका पाकर जाति भाइयों की शत्रुता चरम सीमा तक पहुँच गयी। इन लोगों ने उनके रहने के मकान पर कब्जा कर लिया। माँ-भाई-बहनों को लेकर नरेन्द्रनाथ ने नानी जी के मकान की शरण ली। हाइकोर्ट में मुकदमा दायर हुआ। चारों ओर अस्त-व्यस्त अवस्था थी। श्रीठाकुर भी कण्ठरोग से आक्रान्त थे। नरेन्द्र महान धैर्य के साथ आत्मिक बल से बलीयान् होकर वीर की तरह इस विकट परिस्थिति का सामना करने लगे। संसार के दानवीय रूप ने उनके मन में भूमा के संधान की आकांक्षा को और भी तीव्र कर दिया। वह दक्षिणेश्वर बार बार आते थे। श्रीठाकुर का लोकोत्तर जीवन उन्हें और भी निविडभाव से आकृष्ट करने लगा।

सन् १८८५, सितम्बर के प्रारम्भ में चिकित्सा के लिए श्रीठाकुर पहले पहल श्यामपुकुर के एक किराये के मकान में लाये गये। नरेन्द्र मानो प्रदीप्त अग्निशिखा के समान थे। वे युवक भक्तों को एकत्रित कर श्रीठाकुर की सेवा में लग गये।

श्रीठाकुर का रोग क्रमशः असाध्य व्याधि में परिणत हो गया। डाक्टरी वैद्यक आदि किसी प्रकार की औषधि से कोई फल नहीं हुआ। चिकित्सकों ने आरोग्य की आशा छोड़ दी। श्यामपुकुर जनबहुल कलकत्ते का ही एक अंश है। डा० महेन्द्रलाल सरकार ने किसी निर्जन खुले स्थान में परिवर्तन की व्यवस्था दी।

बहुत खोज करने पर कलकत्ते के उत्तर काशीपुर में एक मनोरम उद्यान भवन मिल गया। ८०) मासिक किराया स्थिर हुआ। (११दिसम्बर, १८८५ ई०)

सहायता दे सकती है, करुणामय भगवान् श्रीरामकृष्ण देव के 'सर्व धर्म समन्वय वेद' का प्रथम मन्त्र है—'नर नारायण सेवा।'

शुभ मुहूर्त में श्रीठाकुर काशीपुर लाये गये। फलपुष्प-वृक्षलता शोभित खुले स्थान में आकर श्रीठाकुर बहुत आनन्दित हुए।

काशीपुर-उद्यान ही श्रीरामकृष्ण देव की 'अन्त्य लीला स्थान' था। यहीं श्रीठाकुर अपने शरीर में रोग का अवलम्बन कर अनेक नरनारियों में आध्यात्मिक चेतना का संचार किया। उन्होंने युवक भक्तों को त्याग के मन्त्र में दीक्षित कर भावी श्रीरामकृष्ण संघ का गठन काशीपुर में ही किया था। उन्होंने एकदिन कुमार वैरागियों को अपने हाथ से गेरुए वस्त्रों और जपमालाओं का दान करके उनके अन्तर में आध्यात्मिक शक्ति का संचार किया था। यह घटना उन युवक भक्तों के भावी जीवन के सम्बन्ध में विशेष इंगित पूर्ण थी।* ....

श्रीरामकृष्ण देव महाप्रस्थान के लिए प्रस्तुत होने लगे। उनकी नर-लीला का कार्य समाप्त हो चला। त्यागी शिष्यों के जीवन-गठन की ओर ही उनकी एकमात्र दृष्टि थी। शारीरिक अस्वस्थता की बात भूलकर वह उनको अनेक धर्म उपदेश देते और साधन भजन में नियोजित करते थे। दिनरात श्रीठाकुर की सेवा ही युवक भक्तों का एकमात्र काम था। नरेन्द्रनाथ रात को धुनी जलाकर सबको साथ लिये ध्यान में बैठते थे। शास्त्रों का पाठ तथा शास्त्रालोचना में अधिक समय व्यतीत होता था। क्रमशः इन लोगों ने घर जाना भी छोड़ दिया। भगवान् तथागत का दृढ़ संकल्प लेकर नरेन्द्रनाथ साधन में रत हुए 'मन्त्र का साधन या शरीर का पतन' यही प्रतिज्ञा थी। किसी

---

* श्रीठाकुर ने उसदिन नरेन्द्र, राखाल, योगीन, बाबूराम, निरञ्जन, तारक, शरत्, शशी, बूढ़ा गोपाल, काली और लाटू इन ११ भक्तों को गेरुए वस्त्र तथा जपमालाएँ दी थीं। बाद में गिरिशचन्द्र को भी एक गेरुआ वस्त्र दिया गया था। देहत्याग के पहले इन ११ त्यागी शिष्यों को श्रीठाकुर ने एकदिन द्वार द्वार पर मधुकरी भिक्षा करने के लिए भेज दिया था। उस भिक्षान्न का एक कणिका उन्होंने भी ली था। वह कहते थे—"भिक्षान्न बहुत पवित्र है।"

किसी रात में ये कुछ गुरुभाइयों को साथ लेकर दक्षिणेश्वर चले जाते। रात भर ध्यान में बिता कर प्रातः काशीपुर लौट आते थे।

बुद्धदेव का अलौकिक त्याग, कठोर तपश्चर्या और असीम करुणा नरेन्द्रनाथ के ध्यान की वस्तु हुई। बुद्धदेव 'इहासने शुष्यतु मे शरीरम्' (इस आसन में मेरा शरीर सूख जाय)...यही दृढ़ता अवलम्बन कर उन्होंने बुद्धत्व लाभ किया था। तारक और काली इन दो गुरुभाइयों को साथ लेकर किसी को न बताते हुए नरेन्द्रनाथ अकस्मात् बुद्धगया चले गये। वहाँ पर बुद्धदेव ने बुद्धत्व प्राप्त किया था। उन्होंने तीन दिन तीन रातें बोधिद्रुम के नीचे ध्यान में अतिवाहित कर दीं।* बुद्धदेव के विशाल हृदय और महाप्राणता लेकर नरेन्द्रनाथ काशीपुर लौट आये। विश्वमैत्री से उनका हृदय भर गया।

* * *

नरेन्द्रनाथ के हृदय की व्याकुलता क्रमशः बढ़ती चली गयी। वह जान गये कि श्रीठाकुर नरदेह में और अधिक दिन नहीं रहेंगे। परन्तु परम सत्य का लाभ अभी तक नहीं हुआ! वे आहार-निद्रा छोड़कर इसी चिन्ता में डूब गये। एक रात को वे निर्विकल्प समाधिलाभ के लिए श्रीठाकुर को घेरे बैठे। बोले 'मैं शुकदेव के समान निर्विकल्प समाधियोग से सच्चिदानन्द सागर में डूब जाना चाहता हूँ।"

नरेन्द्र की व्याकुलता देखकर श्रीठाकुर ने कहा—"माँ की इच्छा हो तो होगा।"†

---

* बुद्धदेव के सम्बन्ध में स्वामी जी ने पाश्चात्य देश से अखण्डानंद स्वामी को लिखा था, "बुद्धदेव मेरे इष्ट—मेरे ईश्वर हैं। उन्होंने, ईश्वर-वाद का प्रचार नहीं किया—वह स्वयं ही ईश्वर हैं—मैं इसे मानता हूँ।"

† नरेन्द्रनाथ की उस समय की मानसिक अवस्था का सुन्दर चित्र कथामृत ग्रन्थ (तृतीय भाग, त्रयोविंश खंड—प्रथम परिच्छेद—४ जनवरी १८८६ ई०, काशीपुर उद्यानवाटी) में मिलता है। एकान्त में मणि के साथ

श्रीठाकुर की इस बात से नरेन्द्रनाथ का चित्त शान्त नहीं हुआ। वह और भी अस्थिर हो पड़े। एकदिन सन्ध्या को नरेन्द्रनाथ ध्यान में बैठे। क्रमशः गम्भीर ध्यान में डूब गये। एक अनिर्वचनीय आनन्द में उनका मन भर गया। सच्चिदानन्द ज्योति सागर में वह डूब गये। उनका बाह्य ज्ञान लुप्त हो गया। वे ब्रह्मानन्द के साथ एक हो गये। बहुत समय बीत गया। मानो देह में प्राण का चिह्न नहीं है।...

श्रीरामकृष्ण रूप सूक्ष्म वासना का अवलम्बन कर नरेन्द्रनाथ का निर्विकल्प, निर्विषय मन क्रमशः जीव भूमि में आने लगा। स्वयं उनको कोई वासना नहीं थी। किन्तु भगवदिच्छा से उनके हृदय में 'बहुजनहिताय' कर्म

बात कर रहे थे। नरेन्द्रनाथ (मणि के प्रति) "गत शनिवार मैं यहाँ ध्यान कर रहा था, सहसा हृदय के भीतर न जाने कैसी विकलता होने लगी।" मणि—"कुण्डलिनी का जागरण।" नरेन्द्र—"वैसा ही होगा। स्पष्ट मालूम हुआ—इड़ा और पिंगला! हाजरा से मैंने कहा, हृदय पर हाथ रखकर देखो तो। ऊपर जाकर उनसे मिला—उन्हें सब बताया। मैंने कहा—"सभी को तो हुआ, मुझे भी कुछ दीजिये। सबका हो गया, मेरा न होगा?" मणि—"उन्होंने तुमसे क्या कहा?" नरेन्द्र—"उन्होंने कहा, तू घर का कुछ प्रबन्ध कर आ, सब ठीक हो जायेगा, तू माँगता क्या है?"

"मैंने कहा—मुझे इच्छा होती है कि मैं उसी तरह तीन चार दिन समाधिस्थ होकर रहूं। कभी-कभी खाने के लिए उठूँगा।" उन्होंने कहा, "तू तो बड़ा हीनबुद्धि वाला है। उस अवस्था से भी ऊँची अवस्था है। तू तो गाना गाता है—'जो कुछ है सो तू ही है।" बाद में उन्होंने कहा—"तू घर का कुछ प्रबन्ध कर आ, समाधि-लाभ की अवस्था से भी ऊँची अवस्था हो सकेगी।"

"आज सुबह मैं घर गया था। सब लोग कहने लगे—'तू क्यों फिजूल इधर-उधर भटक रहा है। बी० एल० की परीक्षा निकट है, पढ़ना लिखना छोड़कर क्यों व्यर्थ घूमता फिरता है?"

की वासना जाग्रत हो उठी। क्रमशः देह में उनका मन उतर आया। प्रकृतिस्थ होकर धीरे-धीरे वह श्रीठाकुर के पास ऊपर गये। प्रणाम करके सिर झुकाये खड़े रह गये। श्रीठाकुर आनन्द से भर गये। बोले, "अबकी तो तुझे माँ ने सब कुछ दिखा दिया। परन्तु इस समय वह सब अनुभूति ताला बन्द रहेगी। तुझे माँ का काम करना होगा, काम समाप्त होने पर फिर यह अवस्था तुझे मिल जायेगी।"* उस अवस्था को प्राप्त करके ही मन्त्रद्रष्टा ऋषि ने कहा था :

"वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥"

"नानीजी के घर के उसी कमरे में मैं पढ़ने के लिए गया। पढ़ते हुए भयंकर शंका प्रतीत हुई—मानो पढ़ाई बड़ा भय की चीज है। दिल धड़कने लगा। मैं बहुत रोया। उसके बाद मैं पोथी पत्री छोड़ भाग गया। उसके बाद मैं रास्ते से दौड़ने लगा, जूता कहीं छूट गया, पुआल के ढेर के पास से जा रहा था। शरीर में पुआल लग गये। मैं काशीपुर के रास्ते से दौड़ रहा था। गृहस्थी अच्छी नहीं लगती। जो लोग गृहस्थी में हैं वे भी अच्छे नहीं लगते—दो-एक भक्तों को छोड़कर।"

नरेन्द्रनाथ उसी रात को साधन भजन करने के लिए दक्षिणेश्वर चले गये—साथ में दो एक भक्त भी थे। गहरा अन्धेरा—अमावस्या लग गया था।

* काशीपुर में एकदिन घर का दरवाजा बन्दकर श्रीठाकुर ने देवेन्द्र मजुमदार और गिरिशघोष को नरेन के बारे में कहा था, "उसे अपना घर बता दिया जाय तो वह देह नहीं रखेगा।" इस कारण श्रीठाकुर ने नरेन के स्वरूप की अनुभूतिका "ताला बन्द" करके उनको सम्मोहित कर रखा था। संसार का कल्याण-कामना जान कर उनके 'जगत हिताय' कर्मों में नियुक्त किया था।

(सुनो विश्वजन अमृत के पुत्रों, दिव्यधामवासी देवगण, तुम लोग भी सुनो। जो अन्धकार के परे ज्योतिर्मय महान् पुरुष विराजमान हैं उन्हें मैंने जान लिया है। उनको जान लेने से ही मृत्यु का अतिक्रमण किया जा सकता है, अमृतत्व लाभ का अन्य पथ नहीं है)।

नरेन्द्रनाथ ने उस परम पुरुष को जान लिया है। उनका चित्त अभयपद को प्राप्त हो गया है। वह आप्तकाम हुए हैं। आत्मानन्द में विभोर हैं। जितने दिनों तक वे नरदेह में रहे, इतने दिनों तक आत्मानन्द में ही उनकी स्थिति थी। जीवन-यात्रा के पथ में मर्मी घात प्रतिघातों तथा तुच्छ दैन्य-क्लेशों को उन्होंने निर्विकार चित्त से सहन किया था। उनके हृदय की प्रशान्ति थोड़ी भी नहीं घटी। ब्रह्मविद की आभा उनके चेहरे पर बराबर के लिए अङ्कित हो गयी थी। इसके अनन्तर जभी वे कौपीनधारी परिव्राजक संन्यासी के रूप में, कभी वृक्षों के नीचे, देवालय में, दरिद्र के घर में, राज-प्रासाद में, ब्राह्मण के अतिथि रूप में या अस्पृश्य के कुटीर में घूमते थे— सर्वत्र ही उन्हें लोग महामानव के रूप में ग्रहण करते थे।

* * *

श्रीरामकृष्ण ने असीम की पुकार सुनी है। उनको सर्वत्र ब्रह्मदर्शन होने लगा। वे सदा आत्मस्थ ही रहते थे। देह का कष्ट उनके अजर अमर आत्मा को कभी स्पर्श नहीं कर पाता था। थोड़े ही में मन निर्विकल्प समाधि में चला जाता था।

उन्होंने एकदिन कहा था, "लोक-कल्याण की इच्छा भी मन से लुप्त होती जा रही है। उपदेश किसे दूँ। सभी राममय देख रहा हूँ।" 'सर्वं ब्रह्ममय जगत्' अब यही उनकी सहज अवस्था थी। इसी में जब मन थोड़ा उतर आता है, *त्यागी पार्षदों की आध्यात्मिक जीवन की पूर्णता-सम्पादन की* चेष्टा की सीमा नहीं थी। वे नाना भावों से शिष्यों को स्वरूप की उपलब्धि करा देते थे। सन्यासी शिष्यों को सम्बद्ध करके वे नरेन्द्र को कुलपति करेंगे जिससे वे सारे विश्व में उनकी साम्य, मैत्री, प्रेम, विश्वभ्रातृत्व, त्याग, तपस्या

ईश्वर परायणता और सर्वधर्म समन्वय की वाणी प्रत्येक नरनारी के पास पहुँचा दे।*

श्रीठाकुर की आसन्न लीला-समाप्ति की चिन्ता शिष्यों के चित्त को आकुल करने लगी। उन्होंने एकदिन अपने अन्तर्धान का इंगित देकर कहा था, "कीर्तन का दल आया, नाचा गाया, जैसे आया था वैसे ही फिर चला भी गया। कोई उन्हें पहचान न सका।"

श्रीठाकुर अब नरेन्द्र को पास से दूर नहीं जाने देना चाहते थे। पास बैठाकर एकान्त में धर्मतत्त्व की आलोचना चलती थी। भविष्य की कर्म-पद्धति का निर्देश देते थे। वह नरेन के ऊपर अपने असमाप्त कर्मों का भार सौंप जा रहे हैं। एकदिन श्रीठाकुर ने एक कागज के टुकडे पर लिख दिया—"नरेन लोक शिक्षा देगा।" मानो नरेन को अधिकार पत्र दिया।

नरेन्द्रनाथ ने कुछ क्षणों तक दुविधा में रहकर कहा—"मै इतना नहीं कर सकूँगा।" श्रीठाकुर ने उत्तर दिया "तुझे करना ही पडेगा।"

श्रीरामकृष्ण देव ने ही नरेन्द्र की गर्दन पकड कर सब काम कराये थे। इसलिए नरेन ने विवेकानन्द के रूप में कहा था, "I want to be a voice without a form"—

ये श्रीरामकृष्ण देव की 'अमूर्त वाणी'—उनके हाथ के यन्त्रस्वरूप थे। नरेन्द्रनाथ को आत्मसमर्पण करना पडा था। नरेन्द्रनाथ को विश्वास, अविश्वास, दु:खवेदना, विविध सघातो के भीतर से लाकर श्रीरामकृष्ण ने अपने हाथ से ठोंक पीटकर विवेकानन्द बनाया था।

---

* देहावसान के कुछ दिन पूर्व श्रीठाकुर ने नरेन्द्रनाथ को पास बुलाकर स्नेह के साथ कहा—"देख, तेरे हाथ में मैं सब लड़कों को सौंप जाता हूँ। तू सबसे बुद्धिमान् और शक्तिमान् है। इन्हें प्यार करके एक में मिलाये रखना। साधन-भजन में वे मन लगाये, उसकी व्यवस्था करना।...." नरेन्द्रनाथ मौन रहे। श्रीठाकुर का इशारा उन्होंने समझ लिया। वेदना के आँसू से उनके नेत्र भर गये।

श्रीरामकृष्ण की प्रेरणा से ही विवेकानन्द की विश्वविजय साकार हुई थी। वह भी उनकी अपनी इच्छा के विरुद्ध। श्रीठाकुर की अमोघ इच्छाशक्ति के वे संवाहक थे। नरेन्द्रनाथ के हृदय में जो विश्व के कल्याण साधन की स्पृहा जाग्रत हुई थी वह भी श्रीठाकुर की इच्छा से साकार हुआ था।··· विवेकानन्द के लिए संसार श्रीरामकृष्ण के प्रति ऋणी है।

● ● ●

देहत्याग के तीन चार दिन पूर्व एकदिन सन्ध्या-समय श्रीठाकुर ने नरेन को पास बुलाया। घर में और कोई न था। दरवाजा बन्द कर दिया गया। नरेन को पास बिठाकर उनकी आँखों पर दृष्टि निबद्ध कर क्रमशः श्रीठाकुर समाधिस्थ हुए। उस समय नरेन्द्र को अनुभव हुआ कि श्रीठाकुर के शरीर से बिजली की तरह एक ज्योति उनके शरीर में प्रविष्ट हो रही है। क्रमशः वे भी समाधिमग्न हो गये। दीर्घ समय तक वे उसी अवस्था में रहे। बाहरी ज्ञान लौट आने पर नरेन्द्र ने देखा कि श्रीठाकुर के नेत्र से आनन्द के आँसू बहते जा रहे हैं। स्नेह के साथ श्रीठाकुर ने कहा—"आज अपना सर्वस्व तुझे देकर मैं फकीर हो गया। तू इस शक्ति के द्वारा संसार के अनेक कार्य कर सकेगा। कार्य समाप्त होने पर लौट आयेगा।" नरेन्द्र भी रोने लगे। उनके मुख से एक भी बात न निकली।

उसदिन श्रीठाकुर ने 'जगद्धिताय' कार्य के लिए नरेन्द्र के भीतर शक्ति का सचार किया था। वह श्रीठाकुर के विपुल आध्यात्मिक शक्ति के उत्तराधिकारी हुए। एक दीपक की शिखा से दूसरा दीपक जल उठा। उसके अनन्तर और भी सैकड़ों हृदयों में वह शिखा जल उठी था।

नरेन्द्र के भीतर शक्ति रूप से श्रीठाकुर अनुप्रविष्ट हुए। दोनो एक हो गये।* महान् समुद्र में महान् नद का सम्मिलन हुआ।

---

* नरेन्द्रनाथ के साथ श्रीरामकृष्ण की जरा भी पृथक बुद्धि नहीं थी। मानो एक आत्मा है। एकदिन श्रीठाकुर ने कहा था—"तेरी तो बड़ी हीन बुद्धि है, क्या तू और मैं अलग है? यह मां मैं हूँ, वह मां मैं हूँ।"

भीषण रोग यंत्रणा से श्रीरामकृष्ण कातर थे। इतना अधिक कष्ट था कि देखकर आँसू नहीं रोके जा सकते थे। उस अवस्था में नरेन्द्र को ऐसा लगा—"अब यदि यह बोल सकें—'मैं अवतार हूँ' तभी मैं विश्वास करूँगा।"

आश्चर्य है कि नरेन्द्र के अन्तर में वह चिन्ता उदित होने के साथ साथ श्रीठाकुर ने सहज सरल कंठ से कहा—"अभी तक तुझे अविश्वास है। सच कह रहा हूँ—जो राम, जो कृष्ण, वही इस समय एकाधार में रामकृष्ण है। पर तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं।"

वज्राहत की तरह नरेन्द्रनाथ स्तम्भित हो गये। सन्देह के कारण अनुतप्त होकर वह तीव्र वेदना से रोने लगे। श्रीरामकृष्ण कौन हैं और क्यों आये थे—उनकी मर्मवाणी नरेन्द्र के हृदय में स्वर्णाक्षरों से मुद्रित हो गयी।*

श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ के अन्तर में नवीन रूप धारण कर लिया—अवतार-वरिष्ठ के रूप में। केवल वही नहीं, सभी भावों, सभी धर्मों और सभी देवदेवियों के भी रूप में। परवर्ता काल में श्रीरामकृष्ण देव के जिस प्रणाम

---

* १८९५ ई० में अमेरिका से स्वामी विवेकानन्द ने उनके अन्यतम गुरु भाई श्रीस्वामी ब्रह्मानन्द जी को लिखा था—"रामकृष्णावतार में ज्ञान, भक्ति प्रेम—अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रेम, अनन्त कर्म, जीवों के प्रति अनन्त करुणा। तुमलोग अभी समझ नहीं सके हो। 'श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्' (कोई कोई इनके विषय में सुनकर भी, इन्हें जान नहीं सके)। What the whole Hindu race has thought in ages he lived in one life His life is a living commentary to the Vedas of all nations समस्त हिंदु जाति सहस्रों युगों से जो विचार करती आयी है श्रीठाकुर ने एक ही जीवन में उन सारे भावों की उपलब्धि की है। उनका जीवन सभी जातियों के वेदों की जीवित व्याख्या रूप है।" अन्यत्र उन्होंने कहा था "सब भावों का ऐसा समन्वय संसार के इतिहास में और कहीं ढूंढने से नहीं मिलता। इसी से समझ लो कि वह कौन देह धारण कर आये थे। अवतार कहने से वह छोटे हो जाते हैं।"

मन्त्र की उन्होंने रचना की थी, उसमें मूल के रूप में श्रीठाकुर का यथार्थ स्वरूप प्रकट किया है।

"स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः॥"

(धर्म के संस्थापक सब धर्मों के स्वरूप, श्रेष्ठतम अवतार रामकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ)। आज इस प्रणाम मन्त्र का उच्चारण कर लाखों सिर श्रीरामकृष्ण के चरणों में अवनत हो रहे हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने उस वेदमूर्ति श्रीरामकृष्ण की वाणी का ही विश्ववासियों के निकट प्रचार किया था। श्रीरामकृष्ण किसी विशेष देश, जाति या धर्म के लिए नहीं आये थे। वे आये थे सनातन वैदिक धर्म का जीवित रूप लेकर, नवतम प्रकाश रूप से, विश्वधर्म के प्रतीक रूप से—द्वैत, विशिष्टाद्वैत, अद्वैत, शैव, शाक्त, गाणपत्य, मुसलमान, ईसाई, जरोयाष्ट्रियन आदि संसार के सभी धर्मों तथा मतवादों के युगोपयोगी अधुनातन प्रकाश रूप से, मानव सभ्यता की प्रगति तथा उन्नयन के साथ भविष्य में जितने धर्म का उद्भव होना संभव है, उनके भी परिपूर्ण विकासरूप से। इस परम सत्य को संसार में विज्ञापित करने की आवश्यकता थी—इसी कारण विवेकानन्द का आगमन हुआ था।*

* * *

१८८६ ई० की १६ अगस्त, सोमवार रात १ बजकर ६ मिनट पर महानिशा में तीन बार काली नाम का उच्चारण कर श्रीरामकृष्णदेव समाधिमग्न हो गये। दूसरे दिन दोपहर के पूर्व तक वे इसी समाधि अवस्था में तल्लीन रहे। वह समाधि ही महासमाधि में परिणत हो गई। वह शरीर छोड़ कर अपने आत्मस्वरूप में लीन हो गये।

---

* उन्होंने कहा था—"मैं रामकृष्ण का गुलाम हूँ। मैंने अपने शरीर को उन्हें सौंप दिया है।"

तीसरे पहर उनका पवित्र शरीर नया वस्त्र, पुष्प, माला आदि के द्वारा सुशोभित कर काशीपुर के गंगा किनारे के श्मशान में भस्मीभूत कर दिया गया। 'जय रामकृष्ण' ध्वनि चारों ओर गूँज उठी। शोक से अभिभूत नरेन्द्र आदि शिष्यों ने श्रीठाकुर की पवित्र भस्मास्थि एक ताँबे के घड़े में लाकर काशीपुर में श्रीठाकुर की शय्या के ऊपर स्थापित की।

दूसरे दिन श्रीशारदा देवी विधवा का वेश धारण करने जा रही थी एक-एक कर गहनों को उन्होंने शरीर पर से उतार डाला। हाथ का कगन खोलना चाहती थी कि इतने में उनका हाथ दबाकर श्रीठाकुर ने कहा—"कगन मत खोलो। यहीं तो मैं विद्यमान हूँ। इस घर से उस घर में जाना ही तो है!" उन्होंने और भी कहा था—"तुम जगत् की महालक्ष्मी हो। लक्ष्मी के अलंकार रहित होने से संसार में दुःख दारिद्र्य की सीमा नहीं रहेगी।"

श्रीशारदा देवी जीवन के अन्तिम दिन तक उस सोने के कगन को हाथ में धारण किये हुई थी।

अचिन्तनीय रूप से श्रीठाकुर का दर्शन पाकर और उनके मुख से बात सुनकर सबलोग समझ गये कि यथार्थ में श्रीठाकुर की मृत्यु नहीं हुई है, वह केवल शरीर छोड़कर अन्तर्धान हो गये हैं। वे और भी जीवित स्वरूप में, सूक्ष्मदेह में चैतन्यघन रूप में हैं।

श्रीशारदा देवी के निर्देश से उस दिन से ही श्रीठाकुर की पूजा आदि का प्रवर्तन हुआ। स्थूल देह में रहते समय जिस प्रकार उनकी सेवा आदि की जाती थी ठीक उसी ढंग से उनकी सेवा, पूजा, भोग आदि नियमित रूप से किये जाने लगे। भक्त लोग श्रीठाकुर के देहावशेषपूर्ण घड़े को केन्द्रित करके काशीपुर के बगीचे में और भी सात दिन रहे। श्रीश्रीमाँ शारदा देवी भी वहीं रहीं। मकान के किराये की अवधि समाप्त होने पर श्रीमाँ बागबाजार के बलराम बाबू के मकान में चली गयीं। श्रीठाकुर के व्यवहृत चीज वस्तु तथा भस्मास्थि पूर्ण घड़ा आदि भी बलराम भवन में स्थानान्तरित हुए।

आठ

श्रीमाँ कुछ सुरक्ष भक्तों और महिलाओं के साथ श्रीवृन्दावन चली गयीं। श्रीठाकुर को केन्द्र करके युवक भक्त लोग काशीपुर में समवेत हुए थे। श्रीठाकुर ने उन्हें त्याग के मन्त्र में दीक्षित किया था। परन्तु उनके देह-त्याग के साथ साथ उन लोगों के रहने के लिए कोई स्थान नहीं रह गया। बहुत लोग तो अपने ही घर लौट गये। किसी किसी ने फिर से पढ़ना आरम्भ कर दिया। योगीन और लाटू श्रीमाँ के साथ वृन्दावन गये थे। तारक भी कई दिन बाद वृन्दावन गये। काशीपुर का डेरा समाप्त हो गया।

* * *

नरेन्द्रनाथ का हृदय अत्यन्त व्याकुल था। श्रीठाकुर ने देहत्याग के पूर्व सारे युवक भक्तों की देखभाल का भार नरेन्द्र के ऊपर सौंपा था। परन्तु वे तो धनहीन और निरुपाय थे। उधर वे अपने रहने के मकान के विषय में नालिश-मुकदमे के कारण परेशान थे। कहाँ किस ढंग से युवक भक्तों को एकत्रित करेंगे, इसी चिन्ता से उनका चित्त विकल हो रहा था। श्रीठाकुर की अन्तिम इच्छा का पालन वे नहीं कर पा रहे हैं इस कारण उनके हृदय में शांति नहीं थी। वह बलराम मन्दिर को केन्द्र करके भक्तों के साथ विचार-विमर्श करने लगे। इसी समय एक अभावनीय उपाय से श्रीठाकुर की विशेष इच्छा के अनुसार सभी समस्याओं का समाधान हो गया। नरेन्द्र की चारों ओर के घने अन्धकार में एक उज्ज्वल दीप शिखा दिखाई पड़ी।

श्रीठाकुर के परम भक्त सुरेन्द्रनाथ मित्र एकदिन आफिस से लौटकर पोशाक बदल रहे थे। उस समय सन्ध्या हो गया था। ऐसे समय श्रीठाकुर ने सूक्ष्म देह में आविर्भूत होकर उनसे कहा—"सुरेन्द्र, तुम क्या करते हो? लड़के लोग निराश्रित होकर इधर उधर भटक रहे हैं। उनके लिए किसी रहने के स्थान का तुमने कोई प्रबन्ध नहीं किया।" उस दैव वाणी को सुनकर सुरेन्द्रनाथ स्तम्भित हो गये। उसी समय वे नरेन्द्र की खोज में निकल पड़े।

बहुत खोज के बाद बलराम मन्दिर में उनसे भेंट हुई। श्रीठाकुर के दर्शन और प्रत्यादेश की बात बताकर सुरेन्द्रनाथ सजल नेत्रों से कहने लगे—"भाई, तुम लोग कहाँ जाओगे? श्रीठाकुर का आदेश है कि कहीं एक मकान किराये पर ले लो। वहाँ तुम लोग रहोगे। हम लोग भी बीच-बीच में जाकर संसार की ज्वलन बुझायेंगे। मैं तो काशीपुर में उनकी सेवा के लिए कुछ-कुछ देता था। उसे बन्द नहीं करूँगा। तुमसे विनती करता हूँ कि तुम कोई प्रबंध करो, जिससे सब लोग एकसाथ रह सकें।"

यह मानो आकाश का चाँद मुट्ठी में आ गया। नरेन्द्रनाथ ने आनन्द से अधीर होकर कहा—"मेरे मन में भी तो वही एकमात्र चिन्ता थी कि कैसे सबको लेकर एक स्थान में सम्बद्ध होकर रहूँ। श्रीठाकुर का जब आदेश हुआ है तो सब ठीक हो जायेगा।"

दूसरे दिन कुछ युवक भक्तों को लेकर नरेन्द्रनाथ किराये के मकान की खोज में निकल पड़े। कुछ दिनों के भीतर कलकत्ते के उत्तर सीमा पर बराहनगर में एक भुतहा मकान १०) मासिक किराये पर ले लिया गया। उस समय उन्हें तारक भैया की बात विशेष रूप से याद आयी। वे तो श्रीठाकुर के रहते ही गृहत्यागी सन्यासी हो गये थे।

तारकनाथ तब तक वृन्दावन होकर काशी में आकर साधन भजन में निरत हो गये थे। नरेन्द्रनाथ ने किराये का मकान तथा अन्यान्य समाचार बताकर उन्हें बिना विलम्ब चले आने के लिए लिखा। चिट्ठी मिलते ही तारकनाथ कलकत्ते चले आये।

तारकनाथ और बूढ़े गोपाल को लेकर ही बराहनगर के मठ और श्रीरामकृष्ण संघ का प्रथम सूचना हुई। क्रमशः श्रीठाकुर के चित्रादि आदि तथा अस्थि (आत्माराम का डिबिया) स्थापित हुए और नियमित पूजा, आरति, भोगराग आदि चलने लगे। नरेन्द्रनाथ के मकान का मुकदमा उस समय भी चल रहा था। बराहनगर के मठ में वे रात को रहते थे। दिन में मुकदमे की पैरवी के लिए वह कलकत्ते में घूमा करते थे। गृहस्थ भक्तों का

यातायात भी आरम्भ हुआ। युवक भक्त लोग बीच बीच में आते थे। नरेन्द्रनाथ प्रायः लोगों के घर जाकर उन्हें मठ में खींच लाते थे। उस समय सभी के मन में तीव्र वैराग्य था और ईश्वर-लाभ के लिए प्राण व्याकुल थे। इस ढंग से श्री ठाकुर के शरीर छोड़ने के डेढ़ महीने के भीतर ही बराहनगर का मठ स्थापित हुआ। आज पृथ्वी भर में श्रीरामकृष्ण मत के अनेक प्रतिष्ठान स्थापित हुए हैं, नरेन्द्रनाथ की एकान्त और अक्लान्त चेष्टा से बराहनगर के मठ को केन्द्र करके उसका शुभ सूत्रपात हुआ था।

* * *

दिसम्बर मास के अन्तिम भाग में श्रीठाकुर के अन्यतम पार्षद बाबूराम की भक्तिमती माता ने, जिनका ग्राम हुगली जिले के आँटपुर में है, नरेन्द्र आदि युवक भक्तों को निमन्त्रण दिया। बाबूराम, शरत, शशी, तारक, काली, निरंजन, गंगाधर और सारदाप्रसन्न को साथ लेकर नरेन्द्रनाथ आँटपुर पहुँचे। ग्रामीण शान्त, सुन्दर, निर्जन परिवेश में आकर सभी आनन्दित हुए। बाबूराम की माता की सहृदयता तथा आतिथेयता ने उनके हृदय को स्पर्श किया। उन दिनों नरेन्द्र आदि के मन में तीव्र वैराग्य था। आँटपुर में आकर वे ध्यान-भजन आदि में डूब गये। कभी तो भजन-कीर्तन होने लगा और फिर कभी शास्त्रपाठ तथा शास्त्रों की आलोचना होने लगी। उन लोगों ने सारी रात ध्यान धारणा में बिता दी। शीतकाल का समय था, रात को धूनी जलाकर उसके चारों ओर सब लोग ध्यान में बैठ गये। रात जितनी ही गहरी होती गयी ध्यान की गम्भीरता उतनी ही बढ़ती जाने लगी। धूनी की प्रज्वलित अग्निशिखा की तरह नवीन वैरागियों का मन भी अन्तर्मुख होकर आत्मसमाधि हो गया। ग्राम की गम्भीर नीरवता और प्रशान्ति मन-संयम में सहायता देती है। कभी कभी 'हर हर बम् बम्' ध्वनि से ग्राम की रात्रिकालीन निस्तब्धता टूट जाती थी। सिर के ऊपर अगणित नक्षत्रों से युक्त नीला आकाश चाँदवा के रूप में फैला हुआ था।

एक रात को सभी लोग ध्यान में बैठे हुए थे। गंभीर स्तब्धता में प्रथम पहर बीत गया। सहसा नरेन्द्रनाथ भावाविष्ट की तरह आँखें खोलकर ईसामसीह की अनुपम जीवन-कथा कहने लगे। माता मेरी की गोद में ईसा का आविर्भाव उनके बचपन के आडम्बर रहित दिन, जार्डन नदी के तीर पर दीक्षा, उनके कठोर त्याग, तप, वैराग्य, आत्मानुभूति, शिष्य संग्रह और प्रचार का वर्णन नरेन्द्रनाथ ने ऐसी हृदयस्पर्शी भाषा में किया कि सभी के हृदय में ईसा मानो जीवित रूप में आविर्भूत हो गये। उसके अनन्तर ईसा के त्यागी संघ के संगठन की बात कहकर उन्होंने अपने गुरुभाइयों के निकट ईसा के आदर्शों से अपना जीवन गठित करने का अनुरोध किया। पापी तापियों के भ्राणकर्ता थे ईसा। संसार को दुःख से मुक्त करने के लिए उन्होंने क्रास में विद्ध होकर प्राण त्याग दिये। हम भी सर्वस्व छोड़कर संसार के कल्याण में जीवन का उत्सर्ग करना चाहिए। धुनी के सामने खड़े होकर सभी लोगों ने श्रीभगवान् के नाम से सन्यास का शपथ ग्रहण किया। "आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च" (अपनी मुक्ति के लिए तथा संसार के कल्याण के निमित्त)—यही उनके सन्यास जीवन का आदर्श था। ईसा और रामकृष्ण की जयध्वनि से दशों दिशायें गूँज उठीं।* शपथ ग्रहण के अनन्तर जब उन्हें ज्ञात हुआ कि वह

* ईसा और रामकृष्ण के जीवन में विचार और कार्य के अनेक सादृश्य विद्यमान हैं। ईसा ने देहत्याग के पूर्व सन्यासी-संघ की रचना कर भगवद् वाणी और भाव के प्रचार का भार अपने त्यागी शिष्यों के ऊपर अर्पित किया था। श्रीरामकृष्ण ने भी देह त्याग के पूर्व ११ शिष्यों के द्वारा सन्यासीसंघ संगठित करके संसार में महद्धर्म के प्रचार के लिए उन्हें निर्देश दिया था।' ' श्रीरामकृष्ण ने ईसाई धर्म की साधना के समय ईसा का दर्शन प्राप्त किया था। ईसा रामकृष्ण को आलिंगन करके उनके शरीर में लीन हो गये थे। उस दिन से ईसा और रामकृष्ण एक आत्मा हो गये। मानो जार्डन नदी गंगा से मिल गयी। श्रीठाकुर ने कहा था—"ईसाई धर्म भगवान् को लाभ करने का एक पथ है।"

दिन दिसम्बर २४ 'क्रिसमस ईव' ईसा के जन्म का पूर्व दिन था तो उन्हें आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि ईश्वर के निर्देश से ही भगवान् के नर शरीर धारण के दिन ही उन्होंने भी संन्यास जीवन धारण का पवित्र व्रत ग्रहण किया है। उन्हें भी नया जन्म लाभ हुआ।

काशीपुर के बाद अनेक भक्त बराहनगर के मठ में रहने लगे। नरेन्द्र भी अधिक समय मठ में ही रहते थे। उस समय भी मुकदमा समाप्त नहीं हुआ था। उन्हें बीच-बीच में कलकत्ते जाना पड़ता था। परन्तु वे मठ के प्राण-स्वरूप थे—सबकी प्रेरणा के उद्गम-स्थान। बराहनगर का जीवन कृच्छ्र साधन और त्याग-तपस्या से पूर्ण था। सूर्योदय से सूर्यास्त तक कीर्तन चलता रहता था। भूख प्यास क्लान्ति का बोध नहीं रहा। फिर किसी दिन उदयास्त जप-तप ही चलता था। रात-रात भर कोई तो ध्यान ही करता रहा। ब्राह्म मुहूर्त में नरेन्द्र गाते थे—"जागो सकले अमृतेर अधिकारी!" (हे अमृत के अधिकारी लोग, जागो)। इस समय सभी ध्यान में बैठ जाते थे। दोपहर तक ध्यान, जप, स्तव आदि चलते थे। फिर कभी धर्म और दर्शनादि के साथ इतिहास जड़ विज्ञान, समाज विज्ञान, साहित्य, शिल्पकला, गीता, उपनिषद—कैन्ट, मिल, हेगेल, स्पेन्सर, यहाँ तक कि नास्तिक और जड़वादियों के मतवाद के सम्बन्ध में तुमुल आलोचना चलती थी। संध्या समय धूप दीप जलाकर घंटा घड़ियाल बजाकर श्रीठाकुर की आरती उतारी जाती थी। स्वामी सुरताल के साथ भावमय नृत्य करते हुए आरती करते थे। कभी उद्दाम नृत्य के साथ—'जय शिव ओंकार, भज शिव ओंकार—हर हर महादेव' समस्वर से गीत होकर चारों दिशाएँ आनन्दमुखरित होती थीं। स्वामी ऐसे तन्मय हो जाते थे कि समय का ज्ञान भी नहीं रहता था। किसी-किसी दिन एक घंटे तक आरती उतारते थे। उनकी वह तन्मयता सभी के हृदयों में संक्रमित होती थी।

सन् १८८६ के अन्तिम भाग से सन् १८९२ के आरम्भ तक वह बराहनगर वाले मठ का भुतहा मकान ही नवीन वैरागियों की तपस्या का स्थान था। सन् १८८७ के आरम्भ में किसी समय सभी ने आनुष्ठानिक रीति से

विरजा होम करके सन्यास आश्रम का ग्रहण किया। श्रीरामकृष्ण ने सबके ललाट पर त्याग का तिलक अंकित कर दिया था। नये नाम और वेश से वे भूषित हुए। अतीत की स्मृतियों को उन्होंने अपने हृदय से पोंछ डाला। "आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च" ऐसा नया व्रत उन्होंने ग्रहण कर लिया।* श्रीरामकृष्ण के अत्यद्भुत त्याग, वैराग्य, पवित्रता और भगवान्-लाभ के लिए तीव्र व्याकुलता, सदा ईश्वर लाभ की चिन्ता में मग्नता सभी के हृदयों में नवीन प्रेरणा जगा देती थी। उन्होंने जो कुछ दिखाया है उसके शतांश का एकांश भी हम नहीं कर सके, हम धिक्कार है। उनके शिष्य रूप से परिचय देने की योग्यता अभी तक अर्जित नहीं हुई। कैसे अयोग्य हमलोग हैं—ऐसी चिन्तायें उनके चित्त को सदा अस्थिर कर डालती थी। नये उद्यम से, नया सकल्प लेकर वे और भी अधिक साधन भजन में डूब जाते थे।

---

* सन् १८९५ (शरत्काल)—अमेरिका से स्वामी जी ने अपने शिष्य आलासिंगा को लिखा था—"जब मैं सन्यासी हुआ, तब मैंने समझबूझकर ही उस पथ को चुन लिया था। समझा था कि शरीर को भूखों मरना होगा। उससे क्या हुआ? मैं तो भिखारी हूँ। मेरे मित्र सभी गरीब हैं। मैं गरीबों को प्यार करता हूँ। मैं दरिद्रता को सादर ग्रहण करता हूँ। कभी कभी मुझे उपवास से दिन बिताना पड़ता है, उसमें मैं खुश हूँ। मैं किसी की सहायता नहीं चाहता—उससे क्या लाभ? सत्य अपना प्रचार स्वयं ही करेगा। मेरी सहायता के न होने से वह नष्ट नहीं होगा। "सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्व"—सुखदुःख, लाभ अलाभ, जय पराजय सब समान जानकर युद्ध में प्रवृत्त हो (गीता)। ऐसा अनन्त प्रेम, सर्वावस्था में ऐसा अविचलित समभाव रहने से तथा ईर्ष्या द्वेष से पूर्णतया मुक्त होने पर कार्य सिद्ध होगा। मेरी सहायता के अभाव से वह नष्ट नहीं हो जायेगा।" स्वामी जी की ये बातें सन्यासधर्म की महिमा तथा दायित्व को प्रकाशित करती हैं।

वराहनगर मठ का जीवन श्रीरामकृष्ण संघ के इतिहास में एक उज्ज्वल अध्याय है। उस त्याग, तपस्या और अपरिग्रह ने श्रीरामकृष्ण के त्यागी संघ को शताब्दियों का स्थायित्व दिया है। ईश्वर दर्शन की कामना प्रत्येक हृदय में दावाग्नि के समान सर्वक्षण प्रज्वलित हो रहती थी। उसमें संसार की सारी चिन्तायें और वासनायें दग्ध हो जातीं। नरेन्द्र आदि प्रायोपवेशन में देह त्याग करने में उद्यत हुए।

भोजनादि का कोई ठिकाना नहीं रहा। उसके लिए किसी में कोई चेष्टा भी नहीं थी। हर रोज पर्याप्त भोजन मिलता नहीं था। प्रसंगक्रम से बाद में स्वामी विवेकानन्द ने उन आनन्दमय दिनों के विषय में कहा था—"वराहनगर में ऐसे कई दिन बीत गये कि खाने के लिए कुछ भी नहीं था। भात मिला तो नमक नहीं। कुछ दिनों तक तो नून भात ही चला। परन्तु किसी का उस ओर ध्यान नहीं था। जप ध्यान के प्रबल प्रवाह में हमलोग बहते जा रहे थे। कभी-कभी अरवी की पत्ती सिझाकर उसके साथ नून भात ही खाया। आहा! वे दिन कैसे थे! उस कठोरता के देखने पर भूत भी भाग जाता, मनुष्य की बात ही क्या है?"

वराहनगर की तपस्या और कृच्छ्रसाधन से तृप्त न होकर कुछ नवीन सन्यासी परिव्राजक रूप से तीर्थपर्यटन तथा तपस्या के लिए निकल जाने लगे। सभी अवस्थाओं और सभी विषयों में श्रीभगवान् के ऊपर निर्भर रहना ही परिव्राजक जीवन का उद्देश्य है। उससे भगवान् पर विश्वास अधिक दृढ़ होता है।

स्वामी विवेकानन्द के हृदय में उस समय तीव्र वैराग्य था। वे भी अपने अन्तर में असीम की पुकार सुनते थे। परन्तु वे असीम धैर्य का अवलम्बन कर अनुकूल समय की प्रतीक्षा करने लगे। श्रीठाकुर के अन्तिम आदेश का स्मरण कर वे उसी समय वराहनगर मठ छोड़कर जा न सके। गुरुभाइयों को संघबद्ध करने तथा उनके जीवन में पूर्णता विधान करने का दायित्व उन्होंने ग्रहण कर लिया था। केवल साधन भजन ही नहीं अतीन्द्रिय तत्त्व की अनुभूति

के साथ श्रीरामकृष्ण की आध्यात्मिक भावधारा और प्रेमवाणी का सामजस्य वह गुरुभाइयों को समझाने लगे। तुलनामूलक भाव से वह सांख्य, वेदान्त, न्याय और योग आदि षट्दर्शन, धर्मशास्त्र, विज्ञान, इतिहास, समाजविज्ञान की शिक्षा भी देने लगे। ज्ञान वृक्ष की सभी शाखा प्रशाखाओं का परिचय और फल का स्वाद देकर वे सबको आचार्य रूप से गठित करने लगे।

प्रायः सभी सन्यासी लोग मठ छोड़कर भ्रमण में निकल पड़े। केवल स्वामी रामकृष्णानन्द ने कभी ऐसा नहीं किया। वे थे 'मठ के स्थिर केन्द्र'—श्रीरामकृष्ण के विश्वासी सेवक। वे श्रीठाकुर की सेवापूजा आदि लेकर बराहनगर मठ में पड़े रहते थे। उनकी एकनिष्ठ सेवा के आदर्शों ने सैकड़ों हृदयों में अनुप्रेरणा जगा दी है। वे श्रीठाकुर को केन्द्र करके—श्रीठाकुर की सेवापूजा को परम साधन तथा परमार्थ जानकर—आश्रम छोड़ कहीं नहीं गये।"

काशीपुर के उद्यान में एकदिन श्रीरामकृष्ण देव ने भावावेश में श्रीशारदा देवी से कहा था—"अजी तुमलोग चिन्ता न करो, भविष्य में (अपने शरीर को दिखाकर) घर घर इसकी पूजा होगी।" दक्षिणेश्वर में नौबत के नीचे के घर में जहाँ श्रीशारदा देवी रहती थीं, वहाँ दूसरी देव देवियों के चित्रों के साथ श्रीरामकृष्ण देव का भी एक चित्र रखा था। श्रीशारदा देवी उसकी पूजा करती थीं। एकदिन श्रीठाकुर ने भावावेश से नौबत में जाकर अपने उस चित्र को पुष्प पत्तियों से पूजा की थी।

श्रीरामकृष्ण देव की भविष्य वाणी आज अक्षरशः सत्य होती जा रही है। आज सारे विश्व में अगणित नरनारी उन्हें श्रीभगवान् का नवतम विकास जानकर पूजा कर रहे हैं। श्रीरामकृष्णानन्द की एकनिष्ठ पूजा ही उसके लिए पथप्रदर्शक थी।

—*०*—

नव

बराहनगर मठ की प्रतिष्ठा देखकर स्वामीजी को कुछ सान्त्वना मिली। उनके गुरुभाई प्रायः तीर्थाटन में निकल जाया करते थे। किन्तु बराहनगर का मठ ही उनका स्थायी केन्द्र था—जहाँ थके पक्षी की तरह वे लौट आते थे। स्वामीजी के एक गुरुभाई स्वामी शिवानन्द ने एक समय कहा था—"यद्यपि हमलोग परिव्राजक के रूप में तपस्या करने तथा तीर्थभ्रमण में निकल जाते थे तथापि हमारा मन बराहनगर मठ में "आत्माराम को" केन्द्र करके पड़ा रहता था।"

पहले स्वामीजी कुछ दिनों के लिए वैद्यनाथ और शिमुलतला आदि स्थानों में गये, फिर बराहनगर लौट आये। किन्तु १८८८ ई० में वह एकाएक परिव्राजक के रूप में निकल पड़े। वाराणसी, अयोध्या, लखनऊ, आगरा, वृन्दावन और हाथरस होकर हिमालय की तराई में हरिद्वार और ऋषिकेश तक गये। परन्तु शारीरिक अस्वस्थता तथा गुरुभाइयों के विशेष अनुरोध के कारण वे बराहनगर लौट आये।

इस भ्रमण से उन्होंने बहुत कुछ सीखा था और उनके चित्त में भविष्य कर्म पद्धति का एक सक्रिय रूप गठित हुआ था। साधारण सन्यासियों की तरह वह कपर्दकहीन दण्डकमण्डलधारी सन्यासी के वेश में ही भ्रमण करते थे। भिक्षान्न के ऊपर ही वे पूर्णतया निर्भर रहते थे। कभी-कभी शरीर-रक्षा के लिए यथेष्ट भोजन भी उन्हें नहीं मिलता था।

काशी में रहते समय उन्हें एक बड़ी शिक्षा प्राप्त हुई। एकदिन दुर्गाजी के मन्दिर में दर्शनार्थ गये तो बहुत से बन्दर उन पर हमला करने के लिए दौड़े। कोई उपाय न देखकर वह एक ओर भागने लगे। बन्दर भी उन्हें खदेड़ते हुए उनके पीछे दौड़ने लगे। इतने में उन्हें सुनाई पड़ा कि मानो कोई कह रहा है—"रुको रुको, भागो मत। रुककर सामना करो।" स्वामीजी के घूमकर खड़े हो जाते ही बन्दर भाग गये। स्वामीजी उस घटना का

उल्लेख कर कहते थे—"Face the brutes. Face nature, face ignorance, illusion. Never fly !" अर्थात् पशुओं का सामना करो। प्रकृति, अज्ञान, माया का वीर की तरह सामना करो। कभी डरकर कायर की तरह भाग मत जाओ।

काशी से अयोध्या होकर वह लखनऊ आये। 'करतलभिक्षा, तरुतल-वास'—इस ढग से वे निःसग होकर घूमा करते थे। भूख प्यास से उनके प्राण ओठों तक आ जाते किन्तु वे कभी अपने सकल्प से च्युत नहीं होते थे। श्रीभगवान् को उन्होंने पग पग पर ठोंक-पीटकर जाँच लिया था।

आगरा का ताजमहल देखकर वे विशेष रूप से मुग्ध हुए थे। वह कहते थे—"इस विशाल अनुपम स्थापत्यकला की तुलना नहीं होती। इसके अति क्षुद्र अंश तक को एकदिन जाँचकर देखने की आवश्यकता होगी। समस्त महल को अच्छी तरह देखने के लिए कम से कम छः महीने का समय आवश्यक है!"

वृन्दावन के पथ पर चल रहे थे। भूख प्यास तीव्र थी। शरीर धूली से मलीन था। रास्ते में देखा एक आदमी बैठे मौज से तम्बाकू पी रहा है। उन्हें भी तम्बाकू पीने की इच्छा हुई। उस आदमी से चिलम माँगने पर वह बहुत सकोच के साथ बोला—"महाराज मैं भंगी हूँ।" वे उसका तम्बाकू बिना पिये ही आगे बढ गये। बहुत सोचने पर उनके मन में विचार आया 'मैं सन्यासी हूँ। मुझे सर्वभूतों में ब्रह्मदर्शन होना चाहिए। अभी भी मैं मामूली जातिपाँति के भेद से परे नहीं जा सका!'

स्वाम जी लौट पड़े। वह आदमी उस समय भी तम्बाकू पी रहा था। उसकी किसी भी आपत्ति की उन्होंने परवाह नहीं की। उसके हाथ से चिलम लेकर तम्बाकू पीकर वे पुन वृन्दावन की ओर चलने लगे।*

---

* स्वामीजी के मुख से यह कहानी सुनकर गिरिश बाबू ने परिहास करते हुए कहा था—"तुम गँजेड़ी हो, इसलिए नशे के झोंके में मेहतर की चिलम पी थी।" उन्होंने कहा था—"नहीं, नहीं, जी सी (गिरिश चन्द्र), सचमुच

वृन्दावन में काला बाबू के कुञ्ज में स्वामी जी ठहर गये। श्रीकृष्ण-महिमा की ज्योति से उनका अन्तर भर गया, मानो नये नेत्र खुल गये। निष्काम लोक-कल्याण रूप में श्रीकृष्ण ने स्वामीजी के हृदय पर अधिकार कर लिया। वे पूर्णकाम होते हुए भी संसार के कल्याण के लिए अश्रान्त कर्म कर गये हैं।

गिरिगोवर्धन परिक्रमा के समय स्वामीजी ने संकल्प किया—आज किसी से भिक्षा नहीं माँगूँगा। श्रीकृष्ण के शरण में आया हूँ, देखूँ वे खाने को देते हैं या नहीं। जैसा संकल्प वैसा ही कार्य। दोपहर बीत गये। भूख प्यास से व्याकुल, तिस पर भी मूसलाधार वृष्टि! वह श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए आगे चल रहे थे। शरीर अवसन्न था और आगे चल नहीं सकते थे। तथापि किसी से भिक्षा नहीं माँगी। आगे बढ़ते ही जाने लगे। ऐसे समय सुनाई पड़ा मानो कोई पीछे से उन्हें रुकने के लिए पुकार रहा है। उन्होंने उस पर ध्यान नहीं दिया। वे अपने मन से चलते रहे। क्रमशः एक आदमी दौड़ते हुए आकर उनका रास्ता रोक कर खड़ा हो गया। उसके हाथ में अनेक खाने की चीजें थीं। वह आश्चर्य-चकित हुए। समझ गये भगवान् श्रीकृष्ण की लीला है। आवेग से उनके नेत्र से आँसू बहने लगे।*

श्रीवृन्दावन की एक और घटना ने स्वामीजी के मन पर गंभीर प्रभाव डाला था। वे राधाकुण्ड पहुँचे। एकमात्र ही आवरण वस्त्र सम्बल था। कुण्ड के जल में उसे धोकर धूप में सुखने के लिए डाल दिया। और वे स्नान करने के लिए उतरे। स्नान के अनन्तर देखा कि वस्त्र वहाँ नहीं है। यह जनशून्य स्थान था। अवाक् होकर देखा कि एक वानर उनका कपड़ा लेकर पेड़ के एक ऊँची डाल पर जा बैठा है। उनका अन्तर वेदना और असन्तोष

ही मुझे अपनी परीक्षा लेने की इच्छा हुई थी। संन्यास लेने के बाद पूर्व संस्कार दूर हुआ है या नहीं, जातिवर्ण के पार पहुँच गया हूँ या नहीं उसी की परीक्षा लेकर देखना चाहा था। ठीक ठीक संन्यासी होना बड़ा कठिन काम है। बात और कार्य में जरा भी इधर-उधर हो नहीं सकता।

से भर उठा। बहुत देर तक प्रतीक्षा की, फल कुछ भी नहीं हुआ। कपड़ा वापस न पाकर उनका हृदय बहुत दुःखी हुआ और कुण्ड के अधिष्ठात्री देवी पर वे क्षुब्ध हुए। उनके राज्य में ऐसा अत्याचार! बस्ती की ओर न जाकर जंगल की ओर चल पड़े। कुछ दूर जाने के बाद ही सुनाई पड़ा मानो कोई उन्हें पीछे से बुला रहा है। मुँह घुमाकर पीछे की ओर ताका तक नहीं। क्रमशः वह कण्ठस्वर निकट आने लगा। एक आदमी जल्द चलकर उनके सामने आकर खड़ा हुआ। उस आदमी के हाथ में गेरुआ वस्त्र और खाने का सामान था। स्वामीजी को समझने में विलम्ब न लगा कि यह सब राधारानी का लीला है।

चिन्मयधाम श्रीवृन्दावन की महिमा उनके अन्तर में भर गयी। चिन्मय-श्याम और चिन्मयी राधारानी की अवस्थिति का अनुभव कर वे विशेष आनन्दित हुए।* "नित्य भगवान्, नित्यधाम, नित्यभक्त।"

वृन्दावन के बाद हरिद्वार जाते हुए हाथरस आये। स्टेशन के प्लेटफार्म पर एक कोने में चुपचाप वे बैठे थे। भूख-प्यास से शरीर अवसन्न था। इसी समय असिस्टेन्ट स्टेशन मास्टर शरतचन्द्र गुप्त की दृष्टि स्वामीजी के ऊपर पड़ी। वे चौंककर खड़े हो गये। मानो प्रदीप्त पावक है—कौन है यह संन्यासी? देखते ही उन्हें मालूम हुआ, "वाह-वाह, ऐसे साधु तो कभी मेरी दृष्टि में दिखाई न पड़े।"

---

* वे श्रीकृष्ण और श्रीराधा को पहले ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं मानते थे। श्रीठाकुर के साथ उन्होंने बहुत तर्क-वितर्क किये। श्रीकृष्ण-लीला की बहुत कठोर समालोचना करते थे। श्रीठाकुर ने नरेन्द्र का तर्क सुनकर कहा था—"बहुत अच्छा—श्रीकृष्ण और राधा को मानने की तुझे आवश्यकता नहीं है। किन्तु उनके भावों को तू ले सकता है। उनके भावों को तू ले ले। श्रीठाकुर की बात सत्य हुई है। स्वामीजी ने श्रीकृष्ण और राधा को केवल माना ही नहीं बल्कि उनके हृदय में वे भावघन रूप में प्रवेश कर उन्हें विह्वल कर रखा।

स्नेहवशतः उन्होंने पूछा—"आपका भोजन हुआ है?" भोजन नहीं हुआ जानकर विशेष आत्मीयता के साथ उन्हें अपने निवास पर ले गये।

क्रमशः परिचय घनिष्ठता में परिणत हुआ। स्वामीजी के साथ जितना ही मिलने लगे इतना ही वह मुग्ध हुए। स्वामीजी के ललाट पर भगवान् ने अपने हाथ से राजतिलक अंकित कर दिया था। कहीं पर भी अपने को छिपा कर नहीं रख सकते थे। उनकी लावण्यमयी मूर्ति लोगों की दृष्टि और श्रद्धा आकृष्ट करती थी। परिव्राजक जीवन में स्वामीजी प्रायः तीन दिन से अधिक कहीं नहीं रहते थे। किन्तु हाथरस में उनके विविध धर्म प्रसंग और मधुर संगीत सुनकर स्थानीय उच्च वर्ग के लोग इतने आकृष्ट हुए कि वे स्वामीजी को किसी तरह छोड़ना नहीं चाहते थे। सबके विशेष अनुरोध से स्वामीजी को यहाँ और कुछ दिन रहना पड़ा। दिन पर दिन अधिक से अधिक लोग उनके मुख की वाणी सुनने के लिए आने लगे। इस युवक संन्यासी ने समस्त हाथरस को धर्मभाव से मस्त कर दिया।

शरत् बाबू* एकदिन शिष्य की तरह विनीत होकर कुछ सदुपदेश पाने के उद्देश्य से स्वामीजी को घेरे बैठे। स्वामीजी ने एक गाना गाकर उनका जवाब दिया—

'विद्या यदि लभिते चाओ,
चाँदे मुखे छाइ मारो, नइले एइ बेला पथ देखो।'

गान के आशय से शरत्बाबू बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने स्वामीजी का इङ्गित समझा। त्याग के बिना अमृतत्व का लाभ नहीं होता। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—"आपके आदेश से मैं अपने प्राणों तक का त्याग करने को राजी हूँ।"

---

* यही बाद में स्वामी सदानन्द के रूप में स्वामीजी के प्रथम संन्यासी शिष्य हुए थे। ये कहते थे कि स्वामीजी की दोनों आँखों ने उन्हें विशेष रूप से आकृष्ट किया था और प्रथम दर्शन से ही उन पर विशेष श्रद्धा और अनुराग उपजा हुआ था।

कुछ दिनों तक हाथरसवासियों के हृदय में उच्च आध्यात्मिक भाव जगा करके स्वामीजी ने एकदिन कहा कि दूसरे दिन वह ऋषिकेश की यात्रा करेंगे। सन्यासी के लिए एक स्थान में अधिक दिन रहना उचित नहीं है। किन्तु शरत् बाबू स्वामीजी को छोड़कर नहीं रह सकेंगे। उन्होंने स्वामीजी के अनुगमन का संकल्प करके अपनी हृदय की इच्छा व्यक्त की। स्वामीजी ने उनकी परीक्षा लेने के लिए कहा—"क्या तुम सचमुच ही मेरे साथ जाने को तैयार हो? क्या अभिमान अहंकार का त्याग कर सकोगे? क्या दरिद्रता को अपना सकोगे?"

शरत् बाबू के सिर झुकाकर सम्मति व्यक्त करते ही उन्होंने कहा—"यह लो मेरा भिक्षापात्र। द्वार द्वार से भिक्षा माँग लाओ।"

स्टेशन मास्टर ने बिना दुविधा के हाथ फैलाकर भिक्षान्न ले लिया। स्टेशन के कुलियों के निकट तथा लोगों के घर घर भिक्षा माँगने लगे।··· स्वामीजी ने बहुत प्रसन्न होकर उन्हें साथ चलने के लिए आज्ञा दी।···

तपोभूमि ऋषिकेश में आकर स्वामीजी विशेष आनन्दित हुए। साधारण साधुओं की तरह वे शिष्य के साथ भिक्षान्न ग्रहण करते हुए साधन भजन में समय बिताने लगे। उन दिनों ऋषीकेश निबिड़-वनानी-परिवृत साधन-भजन का पवित्र स्थान था। उनके हृदय में हिमालय के गभीर प्रदेश में केदारनाथ और बदरीनारायण के दर्शन की इच्छा हुई।

ऋषीकेश की जलवायु उस समय स्वास्थ्यजनक नहीं थी। मलेरिया का बहुत प्रभाव था। एक ही समय भिक्षान्न ग्रहण करने से दोनों के शरीर बहुत क्षीण और दुर्बल हो गये थे। ऐसे ही समय शिष्य कठिन रोग से आक्रान्त हुआ। स्वामीजी तो फकर सन्यासी थे। शिष्य को प्राण रक्षा के लिए वे बहुत घबराये। सेवा शुश्रूषा के द्वारा शिष्य को रोगमुक्त करना ही उनकी चिन्ता का विषय हुआ। उस समय की अवस्था का वर्णन करते हुए शरत् बाबू ने कहा था—"मैं तो बेमार हो पड़ा। वे मेरे जूता सहित सारी चीजों को ढोकर निरापद स्थान में लाये। उनके साथ रहने पर मृत्यु भी तुच्छ प्रतीत

होती थी। उनके प्रेम और स्नेह की बात क्या कहूँ। वह प्रेम के अवतार थे।"

स्वामीजी के प्यार से वह अन्तर के लिए उनके गुलाम बन गये थे। शरत् बाबू की गुरुभक्ति इतनी गंभीर थी कि वे घमण्ड के साथ कहा करते थे— "मैं स्वामीजी का कुत्ता हूँ।" प्रभुभक्ति का प्रतीक कुत्ता ही तो है।

शिष्य की तकलीफ के कारण केदार बदरी दर्शन का संकल्प छोड़कर स्वामी जी थोड़े दिनों के बाद हाथरस लौट आये। स्वामीजी को पुनः पाकर हाथरस निवासियों की आनन्द की सीमा न रही। कुछ दिनों के अनन्तर स्वामीजी मलेरिया से आक्रान्त हो गये। शरत् बाबू भी फिर से बीमार पड़े। दैवयोग से ठीक उसी समय स्वामी जी के गुरुभाई स्वामी शिवानन्द वृन्दावन के रास्ते से हाथरस आ पहुँचे। स्वामी जी को अस्वस्थ देखकर वराहनगर मठ में लेकर जाने के लिए ज़िद करने लगे। उस मठ में स्वामीजी की अस्वस्थता का समाचार पहुँचते ही उनके गुरुभाइयों ने उन्हें लौट आने के लिए पत्र लिखा।

टूर्नेल बाबू लेकर ही वह स्वामी शिवानन्द के साथ वराहनगर की ओर रवाना हो गये। निहायत अप्रतिकूल होते हुए भी शरत् बाबू को उन्हें विदा कर देना पड़ा। परन्तु गुरुजी का अभाव वे सहन नहीं कर सके। थोड़े ही दिनों के बाद वह नौकरी से त्याग पत्र देकर वराहनगर मठ में जा गुरुदेव से मिलित हुए।

आचार्य शङ्कर ने ठीक ही कहा है —

"क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका,
भवति भवार्णव-तरणे नौका।"

अर्थात्—इस संसार में क्षण भर के लिए एकमात्र साधु संग ही भवसागर से उत्तीर्ण होने की नौका है।

साधुसंग की महिमा अपार है। साधु मानो स्पर्शमणि है जिसके संस्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है। युवक शरत्चन्द्र स्वामीजी के संस्पर्श में

आकर जीवन की अनित्यता समझ गये। उनके मन में विवेक और वैराग्य का उदय हुआ। श्रेयोलाभ का पथ उन्होंने चुन लिया। स्वामीजी ही उनकी जीवन-नौका के कर्णधार हुए। सबसे ऊपर उन्होंने स्वामीजी के भीतर ऐसे एक अपार्थिव प्रेम का सधान पाया जिसके आकर्षण से उनका संसार-बन्धन टूट गया।

स्वामीजी को पुन बरहानगर मठ म पाकर गुरुभाई लोग बहुत आनन्दित हुए। उन्होंने भ्रमण के समय जो शिक्षा प्राप्त की थी उससे अपने गुरुभाइयों को परिचित कराया। देशप्र मिक और स्वाधीनता के ऋत्विक स्वामी विवेकानन्द भ्रमण के माध्यम से समझ गये कि जगत् के कल्याण के लिए, मुख्यत• भारत के कल्याण के लिए श्रीरामकृष्ण देव की भावधारा के प्रचार का विशेष प्रयोजन है। और उस कठिन कार्य के सम्पादन का दायित्व उन्हा पर निर्भर है। उन्होंने कहा था—"श्रीरामकृष्ण देव के प्रभाव से विच्छिन्न भारत एक हो जायेगा।" अन्यत्र लिखा था " श्रीरामकृष्ण देव के चरणों के पास बैठकर शिक्षा ग्रहण करने से ही भारत उठ सकेगा। उनके जीवन और उपदेश का चारों ओर प्रचार करना होगा, ताकि हिन्दू समाज के सर्वांश में, प्रत्येक अणु परमाणु में, यह उपदेश ओतप्रोत भाव से व्याप्त हो जाय। कौन यह काम करेगा? श्रीरामकृष्ण देव की ध्वजा वहन करते हुए कौन सारे ससार के उद्धार के लिए यात्रा करेगा? प्रभु जिसे मनोनीत करेंगे, वही धन्य है—वही महान् गौरव क अधिकारी है।"

भारत की एकता तथा उनके अवलम्बन से समस्त एशिया भूखण्ड और सारी पृथ्वी की एकता के साधन के लिए ही श्रीरामकृष्ण देव का आविर्भाव तथा उनका समन्वय पूर्ण जीवन है। केवल धर्म के क्षेत्र ही में नहीं सामाजिक तथा राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी उस आदर्श से विश्वमानवता, विश्वभ्रातृत्व और विश्वप्रेम गठित होंगे। किस ढग से यह सफल हो सकेगा, यही स्वामीजी की चिन्ता का एकमात्र विषय हुआ।

उत्तर भारत के प्रांतों में भ्रमण करते समय ही उनके सामने प्राचीन, वर्तमान और भविष्य भारत का रूप उद्भासित हो उठा।* और साथ साथ उनकी अभ्रान्त दृष्टि के सामने भविष्य विश्वमानवता का नवक्षितिज प्रतिभासित हुआ। उनके अन्तर में उस सनातन वैदिक भारत—पौराणिक इतिवृत्त और किंवदन्ती के महिमामण्डित देवदेवियों का भारत—उस द्राविड़ आर्य की सभ्यताओं की मिलन भूमि—साम्य मैत्री और स्वाधीनता जिस सभ्यता का मर्मवाणी थी—उस आर्य भारत तथा प्रागैतिहासिक युग से जिस देश ने जाति वर्ण का भेद न रखकर सभी देशों, सभी धर्मों के मनुष्यों को हा अपने वक्ष में आश्रय दिया है वह विश्वमानवता की जन्मभूमि भारत मानो जाग्रत हो उठा।

* आधुनिक युग में स्वामी विवेकानन्द केवल पूर्व और पश्चिम के मिलन के उत्तम सेतु रूप ही नहीं, वह भारत के अतीत और वर्तमान के भीतर भी सेतु के समान तथा भविष्य के पथप्रदर्शक थे। भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता और विशिष्टता के सम्बन्ध में उन्होंने अनेक बातें कही हैं। उन्होंने यह भी घोषणा कर दी है कि समस्त विश्व में साम्य और मैत्री के स्थापन के लिए भारतीय संस्कृति ही श्रेष्ठ भूमिका ग्रहण करेगी। इस कारण भारतीय संस्कृति की विशुद्धि की रक्षा करना पहला प्रयोजन है। उनकी वाणी थी—"सांस्कृतिक जीवन में पूर्णता विधान के लिए अपनी प्रकृति के अनुसार ही हमें बढ़ते जाना होगा। पाश्चात्य समाज में प्रचलित कर्मपद्धति का अनुसरण हमारे देश में करना व्यर्थ है। वस्तुतः वह असम्भव ही है।

"हमलोग पाश्चात्य नहीं बन सकते। अतः पाश्चात्य जातियों का अनुकरण करना हमारे लिए निरर्थक है। भारत में हमारी अग्रगति के मार्ग में दो विशाल बाधाएँ हैं—पुराना कट्टरपन और वर्तमान योरोप की सभ्यता का संकट। इन दोनों में मैं योरोप की जीवनधारा के बदले सनातन कट्टरपन का पक्षपाती हूँ। प्राचीन पन्थी अन्धविश्वासी मनुष्य कुसंस्कारपूर्ण और स्थूलबुद्धि हो सकते हैं, परन्तु उनमें मनुष्यत्व है, विश्वास है, आत्मशक्ति है—अपने पैर पर वे खड़े रह सकते हैं। दूसरी ओर योरोपीय साँचे में ढले

स्वामीजी ने गुरुभाइयों को अपनी भावधारा का भागी बनाया। सभी लोग उस भावधारा को पूर्णरूप से ग्रहण कर सके थे या नहीं उसे हम नहीं जानते। हम स्वामीजी को देखते हैं—वराहनगर लौट आकर साधन भजन की ओर जिस प्रकार उन्होंने ध्यान दिया, उसी प्रकार वेदान्त-भाष्य आदि तथा अष्टाध्यायी पाणिनि व्याकरण को मन लगाकर पढ़ने लगे। वह श्रीरामकृष्ण-जीवनरूप भाष्य के प्रकाश से सब शास्त्रों के मर्मोद्घाटन में प्रवृत्त हुए।

हुए मनुष्य किंतु मेरुदंडहीन है।'''इन दोनों में निःसन्देह कहा जा सकता है कि प्रथम व्यक्ति वरणीय है, क्योंकि उसकी उन्नति की सम्भावना है। जातीय संस्कृति पर उसको आस्था है, उसका अवलम्बन कर वह जी सकेगा। दूसरे व्यक्ति का विनाश अवश्यम्भावी है। आध्यात्मिकता का विसर्जन कर यदि तुमलोग जड़ाश्रयी पाश्चात्य सभ्यता की ओर अग्रसर होगे, तो तीन पीढ़ियों के बाद इस जाति का लोप अनिवार्य है। इसका मेरुदंड टूट जायेगा। जातीय सौध की नींव का ध्वंस अनिवार्य है, फलस्वरूप सामूहिक ध्वंस अवश्यम्भावी हो जायेगा।" सांस्कृतिक दृष्टिभंगि के प्रसार के लिए। उन्होंने कहा है—"भारत बाहरी संसार को छोड़कर चल नहीं सकता, परंतु अब तक निर्बोध की तरह हमने सोचा था कि वैसा हो सकता है। हमारे सहस्र वर्षों का दासत्व उस बुद्धिहीनता का दंडस्वरूप है। इस दंड का भोग हमने किया है। आगे वैसा न करना पड़े। भारतवासी भारत के बाहर न जायेगा ऐसी मूढ़ धारणा अत्यन्त बालकपन है। तुमलोग जितना ही भारत के बाहर जाकर पृथ्वी की जातियों के साथ मिलोगे उतना ही तुम्हारे देश का कल्याण होगा। भारत की उन्नति के लिए अनेक विघ्नों में से एक यह भी है कि हमारी उत्कट धारणा है कि हम पृथ्वी की अन्य जातियों से श्रेष्ठ हैं। याद रखो हर एक जाति से हमें शिक्षा लेने योग्य अनेक महत्त्वपूर्ण विषय हैं। इस कारण हमें सभी जातियों से उत्तमोत्तम गुणों की शिक्षा ग्रहण करने के लिए सदा तैयार रहना चाहिये। हमारे श्रेष्ठ विधानदाता मनु ने कहा है—'उत्तम गुण ज्ञानहीन व्यक्ति से भी ग्रहण करना चाहिये।' अतः

गुरुभाइयों के साथ उन सबकी आलोचना होती थी। किन्तु श्रीरामकृष्ण की विचारधारा को सक्रिय करने के लिए उन्हें कई वर्ष लगे थे और अनेक संघर्षों तथा संघातों का सामना करना पड़ा था।...

• • •

उस समय दो विपरीत भावों का द्वन्द्व स्वामी विवेकानन्द के अन्तर को आलोड़ित कर रहा था। एक था, भगवान लाभ की प्रकृतिगत प्रबल इच्छा—पार्थिव सब कुछ त्याग देकर आत्मानन्द में डूबा रहना। दूसरा था 'जगद्धिताय कर्म'—जिस विशेष कार्य के लिए श्रीरामकृष्ण उन्हें अपने पार्षद रूप से लाये थे। यद्यपि अपनी मुक्ति की बात छोड़कर श्रीरामकृष्ण के आज्ञापालन के लिए वे प्रतिज्ञाबद्ध थे, तथापि सचेतन भाव से न होने पर भी, उनके अवचेतन

मनु के यथार्थ वंशधरों की तरह हम उनके निर्देश के अनुसार इहलौकिक तथा पारलौकिक विषयों में प्रत्येक जाति के योग्य शिक्षकों से शिक्षा ग्रहण करने को तैयार रहेंगे।"

भारतीय संस्कृति के प्रचार के महत्त्व के सम्बन्ध में उनका निर्देश है, "हमारी जाति की प्राणशक्ति को उद्बुद्ध तथा तेजोदीप्त करने का एकमात्र उपाय है भारतीय भावधारा के माध्यम से पृथ्वी पर विजय।... इस प्रसंग में हमें भी भूलने से काम न चलेगा कि भारतीय आध्यात्मिकता के द्वारा संसार की विजय करना, इन शब्दों से मैं जीवनप्रद तत्त्वों का प्रचार समझता हूँ। जिस दिन धर्म के क्षेत्र में भी पाश्चात्य देशवासियों के हाथ में अपने को सौंपकर इस देश के निवासी उनके चरणों के पास बैठकर धर्म सीखना चाहेंगे उसदिन अधःपतित भारतवासियों का जातीय वैशिष्ट्य सदा के लिए लुप्त हो जायेगा। मुझे विश्वास है कि इस धर्म के अनुशीलन और वेदान्त के व्यापक प्रचार के द्वारा यह देश और पाश्चात्य भूखंड दोनों ही प्रचुर लाभवान् होंगे।"

स्वामी जी अपने जीवन में इस कार्य की शुभ सूचना कर गये हैं।

मन में भगवान् लाभ की आकांक्षा उनको कम व्याकुल नहीं करती थी। इसलिए देखा जाता है, स्वामी विवेकानन्द ने जगत् के कोलाहल से दूर—हिमालय की नीरवता में अपने को डुबो रखने के लिए बार बार चेष्टा की थी, किन्तु श्रीरामकृष्ण की अदृश्य शक्ति उनको निर्मम भाव से खींचकर नीचे उतार लाती थी। जितनी बार वह आत्मानुभूति के लिए हिमालय के सुनसान जंगलों में गये उतनी ही बार उन्हें कठिन रोग से आक्रान्त होकर या किसी दूसरे कारण से उतर आना पड़ा था। उसे हम उनके परिव्राजक जीवन की अनेक घटनाओं के भीतर देखेंगे।" *

वराहनगर मठ में लौट आने पर उनकी मानसिक अवस्था का पूर्ण चित्र उनके जुलाई ४, १८८९ के पत्र में मिलता है—"ईश्वर के मंगल हस्त पर से मेरा विश्वास नहीं गया और जाने का भी नहीं—शास्त्रों पर से भी मेरा विश्वास नहीं हटा, परन्तु भगवान् की इच्छा से गत पाँच सात वर्षों का मेरा जीवन निरन्तर विविध प्रकार की विघ्न बाधाओं के साथ संग्राम से परिपूर्ण रहा। मैंने आदर्श शास्त्र पाया है, आदर्श मनुष्य को अपने नेत्रों से देखा है परन्तु पूर्ण रूप से स्वयं कुछ नहीं कर पा रहा हूँ। यही कष्ट है। विशेषतया कलकत्ते के निकट रहने से कुछ होने का उपाय भी नहीं है। (पारिवारिक) दुरवस्था देखकर रजोगुण की प्रबलता के कारण अहंकार के विकार स्वरूप कार्यकारी वासना का उदय होता था। उस समय मन में भीषण संघर्ष था।"

श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ को भुलावा दिया था। उनके विचार-जगत में आमूल परिवर्तन लाने के लिए उन्हें शारीरिक, मानसिक तथा सांसारिक दुःखकष्टों के अनुभव के भीतर से लाने का विशेष प्रयोजन था। श्रीरामकृष्ण ने ही विश्वप्रेमी विवेकानन्द को गठित किया था।*

---

* उस घटना के सम्बन्ध में आगे चलकर श्रीअरविंद ने 'कर्मयोगिन्' पत्रिका में १९०९ ई० में लिखा था—"जो पूर्ण युगप्रवर्तक तथा अतीत के अवतारों के समष्टि रूप थे, उन्होंने भारत को नहीं देखा या उस सम्बन्ध में

स्वामीजी शक्ति के मूर्त विग्रह थे। उनके अन्तर में एक जाग्रत पुरुषसिंह था। निर्जीवता के प्रति उनमें प्रचंड घृणा थी। भारत के जातीय जीवन में वर्तमान अवनति के लिए वह कर्मविमुखता को ही दोषी करते थे। इस कारण भारत के प्रति उनकी वाणी थी—"सबसे पहले शक्तिशाली बनो, पौरुष प्राप्त करो।"

स्वामीजी वराहनगर में गुरुभाइयों को उसी भाव में गठित करने के लिए व्रती हुए। ध्यान भजन के साथ सेवामूलक कार्य और स्वाध्याय का मिलन करके उन्होंने नये सन्यासीसंघ की सृष्टि की था।

स्वामी विवेकानन्द अन्तर के एकान्त प्रदेश में विवेक की पुकार सुन पाते थे। वे जान गये थे कि विश्व को हिला डालने वाला विराट कर्तव्य उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। उनके विचार के भीतर भासित होते थे—नवयुग की उन्मादना, पाश्चात्य सभ्यता की सर्वग्रासी क्षुधा और उसके फलस्वरूप दुःख-वेदना, चारों ओर से उत्थित पीड़ित मानवता का मूक आवेदन, और भारत के अतीत अभ्युदय तथा भविष्य का समुत्थान और शक्ति का समारोह। यह पुनरुत्थान श्रीरामकृष्ण को केन्द्र करके होगा। भारत को सार्वजनीन कल्याण के लिए जीवित रहना होगा। क्योंकि समस्त विश्व की आध्यात्मिक भावधारा को पुनरुद्दीप्त करने के साथ-साथ भारत का कल्याण निजड़ित है। भारत को विश्व के लिए ही जीवित रहना होगा, परन्तु यह किस भाव से संघटित होगा उसे वे उस समय भी पूरी तरह नहीं जान पाये थे। ईश्वर के निर्देश के लिए वह प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ नहीं कहा—इस बात पर हम विश्वास नहीं करते।...वे भविष्य भारत के प्रतिनिधि को अपने सामने बैठाकर गठित कर गये हैं। ये भविष्य भारत के प्रतिनिधि थे स्वामी विवेकानन्द।' स्वामी विवेकानन्द का स्वदेश-प्रेम उनके पूज्यपाद गुरुदेव का ही दान था। श्रीरामकृष्ण जानते थे कि उनके भीतर जो शक्ति-संचार हम करते जा रहे हैं समय पाकर उस शक्ति की उद्दीप्त प्रकाश से समस्त देश प्रखर सूर्यकिरणजाल से आप्लुत होगा।"

फिर स्वामीजी कुछ दिनों के लिए वैद्यनाथ, गाजीपुर, काशी, प्रयाग आदि स्थानों के दर्शन के लिए निकल पडे। किन्तु उन्हें पग पग पर बाधा-विघ्नों का सामना करना पडा। कोई एक अज्ञात शक्ति मानो उनका रास्ता रोककर खडी हो गयी। गाजीपुर रहते समय भक्तप्रवर सुरेन्द्रनाथ मित्र के कठिन रोग का समाचार पाकर वे कलकत्ते लौटने के पहले काशी आये और वहाँ प्रमदादास मित्र के साथ रहते समय श्रीठाकुर के परमभक्त बलराम बाबू की कठिन बीमारी की खबर पाकर वे अविलंब कलकत्ते लौट आये। बलराम बाबू की बीमारी की खबर से स्वामीजी को विशेष कातर देखकर प्रमदा बाबू ने उनसे पूछा—"आप सन्यासी हैं। क्या आपको ऐसा शोकाकुल होना उचित है?"

स्वामीजी ने उत्तर दिया—"आप ऐसा कहते हैं? क्या मैं सन्यासी हुआ इसलिए हृदय को भी खो बैठा! यथार्थ सन्यासी का हृदय साधारण मनुष्य के हृदय की अपेक्षा और भी अधिक कोमल होना चाहिये। हजार हो, हम मनुष्य ही तो हैं, उसके सिवाय वे तो मेरे गुरुभाई हैं। हमने एक गुरु के चरणों के समीप बैठकर शिक्षा प्राप्त की है। जो सन्यास हृदय को पत्थर बनाने का उपदेश देता है, उस सन्यास को मैं पसन्द नहीं करता।" सन्यासी का हृदय तो कुसुम से भी कोमल है।

स्वामीजी तुरन्त कलकत्ते लौट आये। महायात्रा के लिए प्रस्तुत बलराम बाबू स्वामीजी को पाकर मृत्यु-यन्त्रणा भूल गये। वह श्रीरामकृष्ण देव की चिन्ता में डूब गये। उनका चित्त एक अनिर्वचनीय आनन्द से भर गया। वह स्वामीजी को छोडना नहीं चाहते थे। क्योंकि श्रीठाकुर और स्वामीजी अभिन्न हैं। श्रीरामकृष्ण का नाम जपते हुए बलराम बाबू का १३ मई, १८६० ईस्वी में देहान्त हो गया। इसके ७ दिन बाद मई २०, १८६० ईस्वी को सुरेन्द्रनाथ मित्र भी श्रीगुरुपद में मिलित हो गये।

सुरेन्द्रनाथ, युगावतार श्रीरामकृष्ण के अन्यतम पोषक थे। इनको यन्त्र मानकर ही बराहनगर मठ स्थापित हुआ था। और प्रधानतया इन्हीं की

आर्थिक सहायता से मठ का खर्च चलता था। सुरेन्द्रनाथ की बीमारी के समय से ही मठनिवासियों का जीवन बहुत कष्ट से चल रहा था। उन के बाद दूसरे विशिष्ट भक्तों के देहत्याग से मठ की अवस्था अब शोचनीय हो गयी थी।

परन्तु स्वामीजी किसी स्थिति से हार मानने वाले मनुष्य नहीं थे। अनेक प्रकार के प्रयत्न करके मठ की आर्थिक चरम दरिद्रता की समस्या को अंशतः दूर किया। उस भीषण धनाभाव के समय संन्यासियों के हृदय में वैराग्य और तपस्या का भाव और भी तीव्र हुआ। श्रीभगवान् के ऊपर निर्भरता से उनका चित्त परिपूर्ण था। एकदिन सबने संकल्प किया—आज कोई भिक्षा में न जायेगा। जिनके नाम से घर-गृहस्थी छोड़ दी है, हम देखेंगे कि वे खाने को देते हैं या नहीं। भीतर से दरवाजा बन्द करके सभी ध्यान में बैठ गये। संध्या तक निरन्तर ध्यान चलता रहा, उसके बाद कीर्तन प्रारम्भ हुआ। कीर्तन के भावावेश में रात तक ताण्डव नृत्य चला। सभी उपवासी थे, परन्तु भगवदानन्द में विभोर।

गहरी रात में किसी ने बाहर से आकर दरवाजे का कुंडा खटखटाया। दरवाजा खोलने पर दिखाई पड़ा कि गोपाल बाबू के मन्दिर से प्रचुर प्रसाद आया है। स्वामीजी ने आनन्द से उत्फुल्ल होकर रामकृष्णानन्द से कहा—"ले, श्रीठाकुर का भोग लगा।" भोग निवेदन करके सबने आनन्द से भगवान् की दया की आलोचना करते हुए प्रसाद खाया। केवल एक दिन ही नहीं अनेक दिन ऐसा हुआ। वे ध्यान, जप, भजन, कीर्तन तथा शास्त्रालोचना में तन्मय रहते, भिक्षा में नहीं निकलते थे। किन्तु उन्हें एक दिन भी अभुक्त न रहना पड़ा। किसी दिन देवालय से, किसी दिन अयाचित भाव से किसी भक्त के घर से उनके लिए खाद्य पदार्थ आ जाते थे। इससे उनका विश्वास तथा भगवान् के ऊपर निर्भरता और भी बढ़ गयी। सुरेन्द्रनाथ और बलराम बाबू दिवगत हो गये तो क्या हुआ? यदि श्रीठाकुर की इच्छा से मठ स्थापित हुआ तो वह रहेगा। हुआ भी वैसा ही। श्रीस्वामीजी की दृढ़ता से मठ का

स्थायित्व क्रमशः दृढ़ भित्ति के ऊपर प्रतिष्ठित हुआ। आशा और आनन्द से सबका चित्त भर उठा।"'

दस

हिमालय की पुकार ने स्वामीजी को व्याकुल कर दिया था। अब केवल तीर्थभ्रमण की इच्छा ही नहीं थी। वह अपने को मानव-समाज से विच्छिन्न कर, सांसारिक सभी प्रकार के दायित्वों से मुक्त होकर हिमालय की निर्जनता के भीतर आत्मानन्द में डूबे रहना चाहते थे। उन्हें ऐसा भी अनुभव हुआ कि अन्तर में एक प्रचंड शक्ति सक्रिय हो उठी है। मठ-त्याग के पूर्व उन्होंने संन्यासी भाइयों से कहा था—"स्पर्श मात्र से लोगों के चित्त को बदल डालने की शक्ति बिना प्राप्त किये अब मैं नहीं लौटूँगा।"

श्रीरामकृष्ण की पुण्यस्मृति के द्वारा पवित्र वराहनगर छोड़ कर वह अनिर्दिष्ट काल के लिए निकल पड़े। किन्तु इस दीर्घ यात्रा के पूर्व वह माता श्रीशारदा देवी * का आशीर्वाद लेने गये—बेलुड़ ग्राम के अन्तर्गत घुसुड़ि नामक

* श्रीरामकृष्ण-भक्त-संघ के निकट वह 'श्रीमाँ' या केवल माँ नाम से परिचित हैं। स्वामीजी श्रीमाँ की, श्रीठाकुर की तरह भक्ति और श्रद्धा करते थे। उस श्रद्धा के भीतर और भी अधिक गंभीरता थी। वह केवल गुरुपत्नी ही नहीं थीं। जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण नरदेह में भगवान् थे, उसी प्रकार श्रीमाँ भी नारीदेह में भगवती थीं। स्वामीजी श्रीमाँ के आशीर्वाद को अधिक महत्त्व देते थे। अमेरिका से १८९४ ई० में उन्होंने अपने गुरुभाई स्वामी शिवानन्द को लिखा था—"श्रीश्रीमाता जी क्या वस्तु हैं अभी तक मैं समझ नहीं सका। अभी तक तुमलोग भी नहीं समझ सके। क्रमशः समझ सकोगे। भाई

स्थान में। श्रीमाँ तपस्या और निर्जन वास के लिए वहीं रह रही थीं।

प्रणाम करके स्वामीजी ने कहा—"माँ मैं तीर्थपर्यटन के लिए हिमालय जा रहा हूँ। माँ, जब तक मैं आत्मज्ञान में प्रतिष्ठित न होगा, तब तक मैं नहीं लौटूँगा।"

श्रीमाँ ने कहा—"बेटा, मैं हृदय से आशीर्वाद देती हूँ कि तुम सिद्ध-काम होकर लौट आओ। तुम्हारे भीतर ही तो श्रीठाकुर निवास कर रहे हैं।"

श्रीमाँ का आशीर्वाद सिर पर धारण कर असीम बल से बलवान् होकर श्रीस्वामीजी बराहनगर के मठ से निकल आये। हिमालय और तिब्बत के पथ तथा घाटी के सम्बन्ध में अभिज्ञ गंगाधर (स्वामी अखंडानन्द) उनके पथ प्रदर्शक रूप से साथ ही चल रहे थे। 'स्वामीजी निकल पड़े हैं—अमरजीवन के आस्वादन तथा अन्यत्व को अन्तर में प्रकाशित करने के लिए। सारे भारत का इस तीर्थयात्रा के भीतर ही मानो स्वामी विवेकानन्द को नये जन्म का

साहब, बुरा मत मानना। तुमलोगों में कोई भी अब तक माँ को नहीं समझ सका है। माँ की कृपा मेरे सामने पिता की कृपा से लाख गुनी बड़ी है। भाई साहब, मुझे माफ करना। दो खुली बातें मैंने कह डाली। मैं उस माँ की ओर कुछ अधिक पक्षपाती हूँ। भाई तारक, अमेरिका आने के पहले आशीर्वाद देने के लिए मैंने श्रीमाँ को एक पत्र लिखा था। और उन्होंने आशीर्वाद दिया और झट से मैं समुद्र पार आ गया। यही समझ लो।

"बाबूराम की माँ की बुढ़ौती में बुद्धि की हानि हुई है। वह जीवित दुर्गा को छोड़कर मिट्टी की दुर्गा पूजा करने बैठी है। भैया, विश्वास बड़ा धन है। जीवित दुर्गा की पूजा दिखाऊँगा तो मेरा नाम।" स्वामी प्रेमानन्द की माता ने प्रतिमा में दुर्गापूजा का आयोजन करके श्रीश्रीमाँ को उस पूजा में उपस्थित होने के लिए हुगली जिले के आँटपुर ग्राम में निमंत्रण दिया था—उस घटना का उल्लेख कर स्वामीजी ने उस चिट्ठी में स्वामी शिवानन्द को यह बात लिखी थी।

लाभ हुआ।* भारत के पवित्र धूलिकणों के भीतर से उत्पन्न इस स्वामी विवेकानन्द को ही भारतवासियों ने पाया था और विश्ववासियों ने वरण कर लिया था।

पहले भागलपुर, वैद्यनाथ और काशी गये। वह तरुण भास्कर कहीं भी आत्मगोपन नहीं कर सके। जहाँ जाते वहाँ सर्वत्र ही प्रकट हो पड़ते थे। जिसने क्षण भर के लिए भी उनके साथ बात की है वही उनके भीतर की महाशक्ति का परिचय पाकर मुग्ध हुआ है। वह केवल कौपीन परिहित, मुण्डित-मस्तक श्रमण ही नहीं थे, बल्कि वह थे भस्माच्छादित वह्नि। जो प्रतिभा का अनल उनके नेत्रों में जलता था उसे वह किसी तरह छिपा नहीं सकते थे।...

काशी में प्रमदादास मित्र महाशय ने स्वामीजी को सादर ग्रहण कर लिया। पांडित्य, शास्त्रज्ञान और पदमर्यादा से वह समग्र उत्तर प्रदेश में एक श्रेष्ठ व्यक्ति थे। प्रमदा बाबू के साथ शास्त्रीय आलोचना में स्वामी जी विशेष आनन्दित हुए। अन्तर की शक्ति की उत्तेजना से एकदिन एक कठोर उक्ति स्वामीजी के मुख से निकली थी "मैं जाता हूँ। किन्तु जितने दिनों तक समाज के ऊपर बम की तरह फट न पड़ सकूँ, जितने दिनों तक समाज को अनुगत भृत्य की तरह अनुसरण न करा सकूँ उतने दिनों तक मैं नहीं लौटूँगा।"—यह

* स्वामी विवेकानन्द के प्रति श्रीअरविन्द ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था—"शक्तिमान् पुरुष कहने योग्य यदि कोई है, तो वह स्वामी विवेकानन्द हैं। विवेकानन्द पुरुष-सिंह थे। हमलोग अनुभव करते हैं, स्वामी विवेकानन्द की शक्ति, तथा प्रभाव प्रचण्ड भाव से कार्य कर रहा है।...(उनके जीवन के) जो कुछ महत् सिंह-सदृश वीर्यसम्पन्न अपि च कमनीय स्वतः स्फूर्त अनुभव लब्ध और उज्जीवक थे—वे सब भारत के आत्मा में प्रविष्ट हुए हैं। हम कहते हैं—वह देखो स्वामी विवेकानन्द भारत-माता और उनके सन्तानों के अन्तरात्मा में अभी भी निवास कर रहे हैं।"—(बंगला मासिक) उद्बोधन—१३६५ की चैत संख्या।

स्वामीजी की दार्शनिक उक्ति नहीं थी। उनके भीतर जो अनुभूति का निधान था, उन्हीं की यह परमायतवाणी थी।

अयोध्या होकर गंगाधर के साथ वे हिमालय की ओर चलने लगे—काठगोदाम से नैनीताल और अल्मोड़ा के रास्ते में। साथ एक पैसा भी नहीं था। कहाँ भोजन, कहाँ रात्रियापन, किसी का ठिकाना नहीं था। दोनों असीम के यात्रापथ पर अग्रसर होते जा रहे थे। तीन-चार दिन चलने के बाद क्लान्त होकर स्वामीजी ने एक बड़े वृक्ष के नीचे आश्रय लिया। पास ही वेगवती पर्वतीय नदी बहती जा रही थी। नदी के जल में स्नानकर स्वामीजी उस वृक्ष के नीचे ध्यान में बैठ गये। वह गम्भीर ध्यान में मग्न हो गये। ध्यान भग्न हो जाने पर उन्होंने कहा—"गंगाधर, आज इस वृक्ष के नीचे मेरे जीवन का एक अमूल्य क्षण उपस्थित हुआ है। उससे एक बड़ी समस्या का समाधान हो गया है।"

उन्होंने और कुछ नहीं कहा। किन्तु उनके मुखमण्डल पर अनुपम स्वर्गीय आभा तथा ब्रह्मानन्द की ज्योति झलक रही थी। अखंडानन्द ने बाद में स्वामीजी की नोटबुक खोलकर देखा था, उसमें लिखा है—'मैंने आज क्षुद्र ब्रह्माड और विराट् ब्रह्माड की एकात्मकता का अनुभव किया है। ब्रह्माड में जो कुछ है सभी इस क्षुद्र शरीर के भीतर विद्यमान हैं। मैंने देखा प्रत्येक परमाणु के भीतर विश्व ब्रह्माड विद्यमान है।*

---

* स्वामीजी के नोटबुक में उस अनुभूति के प्रसंग में और भी जो कुछ लिखा था उसका अनुवाद इस प्रकार है—"आदि में शब्द (शब्दब्रह्म या नाद) मात्र था। क्षुद्र ब्रह्मांड (microcosm) और विराट ब्रह्मांड (macrocosm) एक ही नियम से रचित हैं। इस शरीर में जिस प्रकार व्यष्टि जीवात्मा आच्छादित है उसी प्रकार इस दृश्यमान जगत् में जड़ प्रकृति के द्वारा समष्टि आत्मा (हिरण्यगर्भ) आच्छादित है। शिव शिवा को आलिंगन किये हुए हैं, यह केवल कल्पना मात्र ही नहीं है। शब्द और तत्प्रतिपाद्य अर्थ में

स्वामी विवेकानन्द के जीवन में इस ब्रह्मज्ञान का प्रयोजन था। सभी ब्रह्म का प्रकाश ईश्वर का अंश है—इस अनुभूति में प्रतिष्ठित होकर ही वे संसार के अगणित नरनारियों की शिवज्ञान से सेवा कर सके थे और कह सके थे—

"बहुरूपे सम्मुखे तोमार छाड़ि कोथा खुँजिछो ईश्वर
जीवे प्रेम करे जेइ जन, सेइ जन सेविछे ईश्वर ॥"*

प्राणीमात्र की सेवा ही ईश्वर की सेवा है। उनकी ब्रह्मदृष्टि केवल मनुष्य में ही सीमित नहीं थी। उनकी करुणा सभी जीवों के प्रति थी। इसी कारण उन्होंने 'जीव ब्रह्म' का मंत्र सुनाया था।

अलमोड़े के रास्ते में एक स्थान पर वे भूख-प्यास से मूर्छित होकर रास्ते के एक ओर गिर पड़े। स्वामी अखण्डानन्द भयभीत और निरुपाय थे। वे दौड़कर जल की खोज में निकल गये। दैवयोग से एक मुसलमान फकीर उसी रास्ते से जा रहे थे। स्वामीजी की मूर्छा का कारण जानकर पास के कब्रिस्तान के निकट स्थित अपनी झोपड़ी से जल्दी जाकर एक खीरा लाकर उन्हें खाने को दिया। उसी से उस दिन स्वामीजी की जीवन-रक्षा हुई थी। उस घटना का उल्लेख कर उन्होंने एक समय कहा था—"उस आदमी ने सचमुच ही उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। भूख से इतना कातर मैं और कभी नहीं हुआ था।"

अभेद सम्बन्ध है। यही सम्बन्ध जीवात्मा और परमात्मा के भीतर अवस्थित है। तत्वतः एक ही वस्तु में केवल बुद्धि के भेद से पार्थक्य अनुभूत होता है। शब्द के बिना विचार करना असम्भव है। अतः आदि में केवल शब्द मात्र ही था, यह सत्य है। एक ही परमात्मा की इस प्रकार दो भावों में अनुभूति अनादि काल से वर्तमान है। इस कारण हम लोग जो कुछ अनुभव करते हैं वह अनादि साकार और नित्य निराकार का ही मिलित ज्ञान है।"

* अर्थात्—ईश्वर तुम्हारे सामने अनेक रूपों में विराजमान हैं। उन्हें छोड़ कर तुम कहाँ ईश्वर की खोज कर रहे हो? जीवों से जो प्रेम करता है यथार्थ में वही ईश्वर की सेवा कर रहा है।

हिमालयभ्रमण का प्रथम अंश स्वामीजी के लिए अत्यधिक सन्तोषप्रद हुआ था। दीर्घ पथपरिश्रम और अनाहार के भीतर भी चिरतुषार-मण्डित अभ्रभेदी हिमालय का शान्त भावगाम्भीर्य उनके चित्त में अपूर्व आनन्द और शान्ति देता था।

अलमोड़े के पथ घाटी इत्यादि स्वामी अखण्डानन्द को ज्ञात थे। अग्रवाल के उद्यानभवन में साधु सन्तों के लिए उदार प्रबन्ध था। दोनों ही वहाँ जाकर टिक गये। सारदानन्द और कृपानन्द पहले से ही अलमोड़े में थे। समाचार पाकर वे दोनों भी आ पहुँचे।

बद्रीशाहटुल धरिया अलमोड़े में एक विशिष्ट व्यक्ति थे। कई साल पहले स्वामी शिवानन्द से उनका आलाप परिचय हुआ था। वह श्रीरामकृष्ण के प्रति विशेष श्रद्धासम्पन्न थे। स्वामीजी का आगमन समाचार सुनकर उनको वे अपने घर ले जाने के लिए आये। सारदानन्द और कृपानन्द भी उनके मकान में रहकर भजन साधन किया करते थे। स्वामीजी को भी वहाँ जाना पड़ा। चारों गुरुभाई एकसाथ साधन भजन तथा शास्त्रालोचना में कुछ दिन वहाँ आनन्द से बिता रहे थे। इतने में एकायक कलकत्ते से स्वामीजी की छोटी बहिन की आत्महत्या का समाचार तार से आया। वे वाणविद्ध पक्षी की तरह छटपटाने लगे। उसके बाद चिट्ठी से बहिन की शोचनीय मृत्यु का विस्तारित समाचार जानकर स्वामीजी के दुःख की सीमा न रही।

माना उन्हें एकदम उन्माद हो गया। छोटी बहिन की मृत्यु के कारण ही नहीं बल्कि उस प्यारी बहिन का जीवन निष्ठुर हिन्दू समाज की वेदी पर बलि चढ़ाया गया था। बहिन की शोकजनक मृत्यु का विषय सोचकर उनका मन हिन्दू समाज के विरुद्ध विद्रोही हो उठा। हिन्दू स्त्रियों के दुर्भाग्य की बात याद आयी। आह! वे कितनी असहाय हैं। सब प्रकार के अधिकारों से वंचित, निपीड़ित दलित हैं। उनके जीवन में कोई उच्चाकांक्षा नहीं है—केवल सन्तान पोषण के यंत्र मात्र हैं। साथ साथ देश-पर्यटन के समय दरिद्र पददलित तथाकथित निम्नश्रेणी की दुर्दशा के जो चित्र उन्होंने देखे हैं वे दृश्य भी

उनके मन में झाँकने लगे। और भी सैकड़ों प्रकार की समस्यायें उनके चित्त में उदित हुईं। मानो वे एकदम पागल हो गये। निर्लिप्त द्रष्टा की तरह देखना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। वे प्रतिकार का उपाय सोचने लगे।* समाधिस्थ

---

* भारत में नारी जाति की उन्नति जातीय जीवन की उन्नति के साथ ओत-प्रोत भाव से जड़ित है। उस विषय में स्वामीजी ने विभिन्न स्थानों में आलोचना की है। "...क्या तुम अपनी स्त्रीजाति की अवस्था की उन्नति कर सकते हो? तभी तुम्हारे कल्याण की आशा की जा सकती है। जननी लोग उन्नत हों तो उनकी योग्य सन्तानों की महती कीर्ति देश का मुख उज्ज्वल कर सकेगी और तभी देश में संस्कृति, पराक्रम, ज्ञान और भक्ति का पुनरुत्थान होगा। मनु ने कहा है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता.'— नारी जहाँ पूजित होती है, वहाँ देवता लोग प्रसन्न होते हैं। और जहाँ उसका व्यतिक्रम होता है, वहाँ मनुष्य के सब कर्म और चेष्टाएँ निष्फल हो जाती हैं। नारी के प्रति न्याय्य सम्मान देकर ही सब जातियाँ ऊँची हुई हैं। तुम्हारी जाति का इस प्रकार जो अवनति हुई है उसका प्रधान कारण यह है कि तुम लोगों ने शक्ति की इन जीवित मूर्तियों को यथार्थ मर्यादा नहीं दी है। पुरुषों ने अनेक धर्मशास्त्रों को लिखकर स्त्रियों को विधि-निषेधों के कठोर बन्धनों से बाँधकर केवल उन्हें सन्तानप्रसव का यन्त्र रूप बना रखा है। वे नितान्त असहाय और परमुखापेक्षी हैं।

"वैदिक या औपनिषदिक युगों में दिखायी पड़ता है कि मैत्रेयी, गार्गी इत्यादि पुण्यवती स्त्रियों ने ब्रह्मवादिनी होकर ऋषियों का स्थान प्राप्त कर लिया था। प्राचीन समय में स्त्रियों को ज्ञान-लाभ का अधिकार था। वर्तमान युग में वे उस अधिकार से वंचित क्यों होंगी?

"अवनति के युग में जब पुरोहित लोगों ने ब्राह्मणेतर वर्णों को वेदपाठ का अनधिकारी कर दिया उस समय उन्होंने स्त्रियों को भी सब प्रकार के अधिकारों से वंचित किया। अग्निहोत्र की तरह वैदिक अन्यान्य कर्मों में भी गृहस्थ को सहधर्मिणी का प्रयोजन था। परन्तु पौराणिक युग में प्रचलित

होकर रहने की चिन्ता मानो उस समय के लिए दब गयी—उनके मन के एक एकान्त कोने में।

स्त्रीजाति की उन्नति न होने से जाति का अभ्युत्थान असम्भव है। इसी कारण तो शारदादेवी की श्रीरामकृष्ण देव ने पूजा की थी, भैरवी ब्राह्मणी को गुरु रूप से ग्रहण किया था और वर्तमान युग के कल्याण के लिए उनके मातृभाव का प्रचार था।

* * *

अलमोड़े में उनका मन नहीं लगा। त्यागकर घर के लोगों को उनका पता मिल गया था। वह वहाँ से निकल पड़े। गढ़वाल के रास्ते चलने लगे। साथ में तीन गुरुभाई थे। कर्णप्रयाग छोड़कर आगे बढ़ गये। ऐसे समय एक पड़ाव में अखंडानन्द एकाएक अस्वस्थ हो गये—वहाँ तीन दिन रुकना पड़ा। उनके थोड़ा आराम होते ही सब लोग पथ की पुकार से आगे के लिए चल पड़े। उस साल सारे पहाड़ी प्रदेश में अकाल पड़ा था। पहाड़ी लोगों ने पेड़ की जड़, पत्ती खाना आरम्भ कर दिया था। सरकार ने यात्रियों के लिए यात्रापथ बन्द कर दिया। स्वामीजी केदार-बद्री के दर्शन की आशा छोड़कर रुद्रप्रयाग की ओर चल पड़े। चारों ओर अनिर्वचनीय सौन्दर्य

शालीग्राम शिला आदि गृहदेवताओं को स्पर्श करने का अधिकार भी स्त्रियों को नहीं था। आर्य और सेमेटिक् जाति की दृष्टि से नारी का आदर्श सम्पूर्णतया विपरीत है। सेमेटिक् मन में नारी का साहचर्य ईश्वरभक्ति के लिए हानिकारक है। इस कारण किसी प्रकार के धर्मानुष्ठान में नारी का कोई अधिकार नहीं है। आर्य मत में स्त्री को छोड़कर पुरुषों का कोई भी धर्मानुष्ठान पूर्णांग नहीं होता। पक्षी जिस प्रकार एक डैने से उड़ नहीं सकता उसी प्रकार स्त्री को छोड़कर कोई भी जाति उठ नहीं सकती—कोई भी समाज उन्नत नहीं हो सकता। दक्षिण भारत में द्रविड़ लोग सुसभ्य थे। उनमें भी नारी का स्थान उन्नत था।"

सम्भार तथा विशाल स्तब्धता थी। बीच-बीच में गिरि-निर्भरिणी का कल-हास्य मधुर संगीत की तरह बहता आ रहा था। चिरतुषारमंडित गिरिशृंग और हिमालय का अनुपम रूप-वैभव स्वामीजी के बाल्य का स्वप्न, जीवन का मुग्धविलास था। वे विराट के ध्यान में मग्न हो जाते थे।...

रुद्रप्रयाग के बाद ही जाड़ा देकर स्वामीजी को ज्वर आ गया। अखण्डानन्दजी भी बीमार पड़े। अगत्या एक धर्मशाला में सबने आश्रय लिया। दैवक्रम से सरकारी सदर अमीन ने निकट में ही तम्बू डाला था। सारदानन्दजी ने स्वामीजी की अस्वस्थता की बात कहते ही अमीन ने कुछ वैद्यक औषधियाँ दीं। उससे दोनों का ज्वर बन्द हो गया। सदर अमीन स्वामी लोग से वार्तालाप कर विशेष प्रसन्न हुए। उन्होंने डण्डी से उनको अलकानन्दा के तीर पर श्रीनगर में भेज दिया। कुछ स्वस्थ होने पर सब लोग ध्यान-भजन में डूब गये। अवकाश के समय उपनिषदों का पाठ तथा आलोचना चलती थी।

कुछ दिनों के अनन्तर स्वामीजी गुरुभाइयों को लेकर टेहरी की ओर चल दिये। पहाड़ी प्रदेशों में दुर्भिक्ष फैला हुआ था। कहीं भी भिक्षा मिलना कठिन हो गया। अनाहार से मृतप्राय अवस्था में सब लोग धीरे-धीरे गढ़वाल की राजधानी टेहरी पहुँचे। एक अनुकूल कुटिया में सब लोग ठहर गये। थोड़ा बहुत जो कुछ भिक्षान्न मिलता था उसीसे स्वामीजी तृप्त रहकर निःसंगता के आनन्द में दिनरात डूबे रहते थे। कभी तो वह वेदान्त और आर्य ऋषियों के जीवन की आलोचना करते थे। वह कहते थे—"हमें आर्य ऋषि बनना होगा, ऋषित्व की पदवी पर आरूढ़ होना होगा।"

घटनाचक्र से राज्य के दीवान रघुनाथ भट्टाचार्य महाशय के साथ स्वामीजी का परिचय हुआ। वह पंडितप्रवर हरप्रसाद शास्त्री के बड़े भाई थे। परिचय क्रमशः घनिष्ठ मित्रता में परिणत हो गया। उनके गम्भीर पाण्डित्य, शास्त्रानुभूति, त्याग और वैराग्य ने दीवानजी को विशेष रूप से प्रभावित कर दिया। उन्होंने देखा कि यह साधारण साधु की तरह नहीं है।

उन्होंने स्वेच्छा से गङ्गा और मिलांगना के संगमस्थल गरोशप्रयाग में इनके साधनभजन की व्यवस्था कर देना चाहा। साथ का सब प्रबन्ध हो गया। इतने में स्वामी अखण्डानन्द फिर बीमार हो गये। टेहरी के सिविल सर्जन ने रोगी की छाती की परीक्षा करके कह दिया—"ब्राँकाइटिस् हो गया है, पहाड़ में रहना कदापि उचित नहीं है। समतल प्रदेश में चिकित्सा करनी होगी।"

गुरुभ्राता की प्राणरक्षा के लिए स्वामीजी हिमालय की निर्जनता का परित्याग कर मसूरी और राजपुर होकर देहरादून चले आये। राजपुर के मार्ग में एकाएक स्वामी तुरीयानन्द के साथ भेंट हो गयी, वह भी स्वामीजी के साथ हो लिये। रघुनाथ भट्टाचार्य ने देहरादून के सिविल सर्जन के नाम से एक परिचयपत्र लिख दिया। थोड़े वार्तालाप से ही सिविल सर्जन स्वामीजी के मुख से धर्म, दर्शन और बाइबिल की व्याख्या सुनकर विशेष आनन्दित हुए।

सिविल सर्जन की चिकित्सा से अखण्डानन्द जी के कुछ स्वस्थ होने के बाद उन्हें कृपानन्दजी के साथ इलाहाबाद के एक मित्र के मकान में भेजने का प्रबन्ध कर स्वामीजी अन्यान्य गुरुभाइयों के साथ ऋषिकेश आये।

प्राचीनकाल में यह मुनि-ऋषियों की तपस्या का स्थान था। हिमालय की तराई को घेरकर निर्जन वन था तथा पवित्र गङ्गा की कलध्वनि सुनाई देती थी। भिक्षा के ऊपर निर्भर रहकर स्वामीजी के साथ वे सब तपस्या में डूब गये। अवसर के समय ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, गीता आदि शास्त्रों की आलोचना करते थे। रात जितनी गम्भीर होती थी ध्यान की गम्भीरता भी उतनी ही बढ़ जाती थी। स्वामीजी महान् आनन्द में मग्न हो जाते थे। परन्तु विधि की विडम्बना से थोड़े दिनों में स्वामीजी प्रबल ज्वर से आक्रान्त हो गये। कोई उपाय नहीं था। किसी प्रकार की औषधि या पथ्य का प्रबन्ध होना असम्भव था। गुरुभ्राता किंकर्तव्यविमूढ हो पड़े। एकदिन ज्वर के प्रबल प्रकोप से स्वामीजी की चेतना लुप्त हो गयी। शरीर ठण्डा हो गया, नाड़ी

नहीं मिलती थी। अन्तिम समय उपस्थित समझकर गुरुभाई शोक से व्याकुल हो गये। स्वामीजी ही उनके बल तथा भरोसास्थल थे। श्रीठाकुर के अदर्शन के बाद उन्हीं का आश्रय लेकर सब लोग चल रहे थे। अनन्य मन से वे श्रीभगवान् के चरणों में स्वामीजी की प्राणभिक्षा माँगने लगे। ऐसे समय मानो देवप्रेरित होकर कुटिया के द्वार पर एक अज्ञात साधु आ उपस्थित हुए। उन्होंने अपनी झोली में से एक औषधि निकालकर उसे मधु के साथ घोंट लिया और उसे स्वामीजी को खाने के लिए दिया। किसी तरह वह औषधि स्वामीजी के मुख में डाल दी गयी। आश्चर्य है, थोड़े ही क्षणों में उनकी देह में प्रचुर पसीना होकर ज्वर उतर गया। क्रमशः उन्होंने आँखें खोलीं। उसके बाद उन्होंने क्षीण स्वर से कहा कि उस अचेत अवस्था में उन्हें एक अपूर्व अतीन्द्रिय अनुभूति हुई। उन्होंने जान लिया कि अभी उनकी मृत्यु नहीं होगी। उन्हें श्रीभगवान् के विशेष कार्यों का सम्पादन करना होगा। इसी कारण वह मृत्यु के मुख से लौट आये हैं। वह भविष्यवाणी सुनकर गुरुभाइयों को कुछ सान्त्वना मिली। वह भी धीरे-धीरे स्वस्थ हो गये। हृषीकेश की जलवायु उस समय बहुत अस्वास्थ्यकर थी। इस कारण स्वामीजी दुर्बल शरीर में ही हरिद्वार लाये गये। स्वामी ब्रह्मानन्द हरिद्वार के पास कनखल में तपस्या कर रहे थे। समाचार सुनकर वह भी आकर स्वामीजी से मिलित हुए। उस स्थान से स्वामीजी गुरुभाइयों को लेकर सहारनपुर आये—पूर्वपरिचित वकील बंकुबाबू के मकान में।

उस समय भी स्वामीजी का शरीर बहुत दुर्बल था। अखण्डानन्द जी इतने दिनों में मेरठ आकर कुछ स्वस्थ हो गये। उनके विशेष आग्रह से स्वामीजी गुरुभाइयों को मेरठ लाये। स्थानीय डाक्टर त्रैलोक्यनाथ घोष और यज्ञेश्वर मुखोपाध्याय* ने स्वामीजी तथा उनके साथियों का सादर स्वागत किया।

मेरठ में सेठ का बगीचा मानो बराहनगर मठ में परिणत हुआ।

---

* ये बाद में 'भारत धर्म महामण्डल' के प्रतिष्ठाता स्वामी ज्ञानानन्द हुए थे।

ग्यारह

स्वामीजी अपने छः गुरुभाइयों (ब्रह्मानन्द, सारदानन्द, तुरीयानन्द, अखण्डानन्द, अद्वैतानन्द और कृपानन्द) को लेकर सेठ के बगीचे में रह रहे थे। स्थानीय अनेक विशिष्ट व्यक्ति धर्मालोचना सुनने के लिए प्रतिदिन उनके पास आते थे। वे जो निर्जनता और निःसंगता चाहते थे उसका क्रमशः अभाव होने लगा। उस समय उनके भीतर एक विपुल आध्यात्मिक शक्ति का विकास देखकर उनके गुरुभाई विस्मित हुए। मानो वह शक्ति निर्गमन का मार्ग ढूँढ निकालना चाहती थी।

ध्यान भजन के अवकाश में वह गुरुभाइयों के साथ 'मृच्छकटिक' 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' 'कुमार सम्भव' 'मेघदूत' आदि संस्कृत ग्रन्थ की आलोचना करते थे और पुराण का पाठ भी चलता था। स्थानीय वाचनालयाध्यक्ष के साथ अखण्डानन्दजी का परिचय हो गया था। वे उस ग्रंथागार से स्वामीजी के लिए अनेक पुस्तक ला देते थे। उस समय स्वामीजी के हृदय में ज्ञानस्पृहा इतनी बढ़ गयी थी कि खूब पढ़ते थे।

स्वामी अखण्डानन्द के हाथ में प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक सर जान लावक का ग्रन्थ देखकर उन्होंने बहुत प्रसन्न होकर पूछा "यह पुस्तक तुमने कहाँ पायी?"। "लाइब्रेरी से लाया हूँ"। "बहुत अच्छा किया है" कहकर उन्होंने उस पुस्तक को हाथ में ले लिया। दूसरे दिन उस पुस्तक को लौटाकर उन्होंने कहा—"इसे वापस देकर लावक की दूसरी पुस्तक हो तो लेते आना।"

अखण्डानन्दजी रोज एक पुस्तक लाते थे। स्वामीजी उसे पढ़कर दूसरे दिन लौटा देते थे। इस तरह लावक की सभी पुस्तकों को उन्होंने पढ़ डाला। लावक की एक पुस्तक रोज ले जाते और दूसरे दिन लौटा देते, देखकर वाचनालयाध्यक्ष को कौतूहल हुआ। उन्होंने पूछा—"बात क्या है! आप रोज पुस्तक ले जाते और दूसरे दिन लौटा देते हैं। क्यों इतनी पुस्तकें लेते हैं?"

अखण्डानन्दजी ने उत्साह के साथ उत्तर दिया "स्वामीजी के लिए पुस्तक लेता हूँ, वे पढ़ते हैं।"

अध्यक्ष ने कुछ व्यंग करते हुए कहा "क्या यह भी सम्भव है? एकदिन में हो लारव की एक पुस्तक पढ डालना।"

अखण्डानन्द के मुख से वैसी बात सुनकर स्वामीजी स्वयं अध्यक्ष से मिलने गये। दो एक बात हो जाने पर उन्होंने हँसते हुए कहा—"मैंने उन पुस्तकों को अच्छी तरह पढ डाला है। आप चाहें तो पूछकर देख सकते हैं।"

अध्यक्ष को कौतूहल हुआ। वे विभिन्न ग्रन्थों से स्वामीजी से प्रश्न करने लगे। प्रत्येक प्रश्न का यथार्थ उत्तर हो नहीं बल्कि लारव की भाषा तक स्वामीजी को उद्धृत करते देखकर अध्यक्ष महोदय दंग हो गये। उनका चेहरा मलिन पड गया।

स्वामीजी ने कहा, "मैं लडकों की तरह शब्दों या पंक्तियों पर नजर देकर नहीं पढता। एक एक अनुच्छेद एकसाथ पढ लेता हूँ। एक एक पृष्ठ के आरम्भ और अन्तिम पंक्ति देखकर ही लेखक का वक्तव्य समझा जा सकता है।"

तीन महीनो से अधिक समय स्वामीजी गुरुभाइयो के साथ मेरठ मे थे। उस समय के भीतर गुरुभाइयों के आध्यात्मिक जीवन जिस प्रकार समृद्ध हुए थे उसी प्रकार स्थानीय अनेक व्यक्ति भी स्वामीजी के ससर्ग में आकर धर्मा लोक लाभ करके धन्य हुए थे। उनके भीतर धनी निर्धन, पण्डित-मूर्ख—समाज के सभी स्तरों के मनुष्य थे।

स्वामीजी अन्तर में एक महाशक्ति के स्फुरण का अनुभव करने लगे। उन्होंने जीवन के महत्तर कर्तव्य का सन्धान भी पाया। सकल्प में दृढ रहकर उन्होंने एकदिन गुरुभाइयों को बुलाकर कहा, "मेरे जीवन का व्रत स्थिर हो गया है। अब से मुझे नि सङ्ग होकर रहना होगा। तुम लोग मेरा सङ्ग छोड दो। गुरुभाइयों के साथ रहना भी एक प्रकार से माया का बन्धन है। सर्वबन्धन से मुक्त होकर मैं अकेला भ्रमण करना चाहता हूँ। मेरे साथ एकमात्र भगवान् ही रहेंगे।"

गुरुभाइयों का कोई भी अनुरोध उन्होंने न सुना। सन् 1891, जनवरी के अन्तिम भाग में वह अकेले निकल पड़े। भारत के अगणित मानवों के समुद्र में वह मिल गये। गेरुआ संन्यासियों की तरह वह भी गेरुआ वस्त्रधारी एक संन्यासी मात्र।...

दो सालों से अधिक समय तक वे अकेले भ्रमण करते रहे। भारत की धूल में उनके पदचिह्न विलीन हो गये। कभी ग्राम, कभी शहर, कभी धनी के महल, कभी गरीब की कुटिया, कभी पेड़ के नीचे, कभी देवमन्दिर में रहते थे। कभी वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण के सम्मानित अतिथि, फिर अस्पृश्य को धन्य करने के लिए उनके सुख दुःख के भागी बनते थे। राजा महाराजाओं के महलों में माननीय संन्यासी गुरुरूप से उच्चासन पर बैठते और राजा महाराजा उनकी पदसेवा करते। वह उनके भोगविलासी चित्तों में ज्ञान की बत्ती जला देते थे और संसार की अनित्यता का बोध तथा भूमानन्द में प्रतिष्ठित होने की आकांक्षा उत्पन्न कर देते थे। उनके क्षुद्र हृदयों में जनसेवा की चेतना को उद्बुद्ध कर देते थे। फिर हम उन्हें आर्तनिपीड़ितों के मित्र रूप से देखते हैं—और पाते हैं स्वयं वेदना विधुर चित्त होकर उनकी सेवा के व्रती के रूप में। दिन पर दिन महाभारत का यथार्थ रूप उनके अन्तर में उद्भासित होने लगा। उन्होंने देखा, मनुष्य के भीतर जीवात्मा कैसे विक्षुब्ध और क्लिष्ट हो रहे हैं। भारत के जनसाधारण का करुण आर्तनाद उनके हृदय को आलोड़ित करने लगा। हाय! वे कैसे असहाय हैं!

मेरठ छोड़कर स्वामीजी दिल्ली आये। दिल्ली की स्मृति के साथ अनेक उत्थान पतन का इतिहास मिला हुआ है। विविदिषानन्द नाम लेकर वे कुछ दिन घूमकर देखते रहे। प्राचीन ऐतिह्य के भीतर वह डूब गये। कुछ दिन श्यामदास सेठ के बगीचे में रहे। अनेक लोग उनके पास आने लगे, चारों ओर समाचार फैल गया कि महापण्डित अंग्रेजी अभिज्ञ एक साधु आये हैं। जो बातचीत करता, वही मुग्ध हो जाता। उनके अगाध पाण्डित्य और गंभीर ज्ञान से सब लोग स्तम्भित हुए।

स्वामी अखण्डानन्द आदि कुछ गुरुभाई उनके पीछे पीछे दिल्ली आ पहुँचे। स्वामीजी उन्हें देखकर असन्तोष प्रकट करते हुए बोले—"तुमलोग भी यहाँ आ जुटे?" फिर भी एकसाथ कुछ दिन रहे। परन्तु वे अन्तर में एक महाशक्ति का पुकार सुन रहे थे।...निःसंग निरंकुश होकर गेंडे की तरह अकेले विचरण करने की इच्छा उन्हें एक अज्ञात पथ पर ले चली। भविष्य के विवेकानन्द तैयार होने के लिए उसका विशेष प्रयोजन था।

गुरुभाइयों से उन्होंने कहा "तुम लोग ध्यानभजन में डूब जाओ। निरर्थक मेरे साथ मत आओ। मुझे अकेला रहने दो। मेरा अन्तर यही चाह रहा। मैं यथार्थ भारत के साथ परिचित होना चाहता हूँ। नियेक का पुकार मैं सुन रहा हूँ।"

१८९१ ई० के फरवरी के अन्त में वह अकेले निकल पड़े राजपूताना के रास्ते में। इसके अनन्तर दो वर्षों से अधिक भारत भ्रमण चलता रहा। वे अज्ञात सन्यासी के रूप में अकेले थे। उनका न परिचय था और न रहने का कोई ठिकाना। वे केवल एक मनुष्य मात्र थे। और थे केवल भारतवासी। परन्तु वे आत्मगोपन नहीं कर सके। जहाँ जाते—विद्वान् या निःष्कपट मूर्खों में—सब लोग उन्हें असाधारण व्यक्ति के रूप से पहचान लेते थे। ग्राम-नगर, उच्च नीच, धनी दरिद्र, रुग्ण-वंचित और सर्वस्वान्त व्यक्तियों के दुःख वेदना आशा-आकांक्षा, उत्तेजना, सुख दुःखों के साथ वे एक हो गये। सर्वत्र ही अपने अन्तर-देवता का सन्धान मिला। सैकड़ों मन्दिरों में विभिन्न नामों और रूपों में—फिर नामरूपहीन रूप से मानवजाति जो भगवान् की पूजार्चना करती है, उस भगवान् को उन्होंने साधु में, चोर में तथा ब्राह्मण, चण्डाल, धनी, दरिद्र, पूजक, ब्रह्मचारी और मद्यपायी के भीतर पाया। उन्होंने सबकी पूजा की। वे सबके जीवन के साथ मिलकर एक हो गये। सबसे ऊपर वेदनाक्लिष्ट मानवों का करुण आर्तनाद उनके अन्तर में प्रतिध्वनित होने लगा।

ये भ्रमण के दिन उनके लिए महान् शिक्षा के दिन थे। वे केवल शिक्षा ही ग्रहण करते जा रहे थे—ग्रहण उनका प्रचुर था। गोताखोरों की तरह वे

भारत महादेश के रत्नों का आहरण कर रहे थे। धर्मभूमि भारत की चिन्ताधारायें चारों ओर फैली हुई थीं। उन सबका उन्होंने संग्रह किया। उन्होंने धर्मों में पाया एक शाश्वत ऐक्य। विभिन्न धर्मों के मूल उद्गम स्थान का सन्धान भी पा गये। समाज-स्रोत की कर्दमाक्त अवस्था पर भी उन्होंने वेदनायुक्त हृदय से ध्यान दिया। उस रुद्ध स्रोत को गतिशील और निर्मल करने का उपाय भी उनके हृदय में रूपायित हुआ। सबसे ऊपर देशवासियों की दरिद्रता और अज्ञानता ने उनके हृदय को बेचैन कर डाला। श्रीरामकृष्ण देव कहते थे कि 'खालीपेट धर्म नहीं होता'। उस बात की सत्यता का उन्होंने अपने हृदय में अनुभव किया। इसकी प्रतिकार-चिन्ता ने उनके चित्त में आग लगा दी। दिनरात किसी समय भी वे उस चिन्ता से अपने को मुक्त नहीं कर सके। यहाँ तक कि निद्रा के समय भी ये चिन्तायें उनके मन में जाग्रत रहती थी।

* * *

इसके अनन्तर हम स्वामीजी को राजपुताना के मार्गों पर अकेले घूमते हुए पायेंगे। फरवरी के अन्त में वे अलवर पहुँचे। वृक्षछायायुक्त राजपथ से चलते हुए वे सरकारी चिकित्सालय के सामने आये। एक आदमी से उन्होंने पूछा, "महाशय, यहाँ साधु सन्यासियों के रहने का स्थान कहाँ है?" जिससे पूछा वे सरकारी चिकित्सालय के बंगाली डाक्टर थे। वे आग्रह के साथ स्वामीजी को अपने घर ले गये। थोड़ी देर के वार्तालाप से ही वे समझ गये कि यह मामूली साधु नहीं हैं। वह अपने परिचितों को स्वामीजी के पास बुला लाये। जो बात करता वही मुग्ध हो जाता। दो एक दिनों के भीतर ही चारों ओर हलचल मच गयी। दल के दल लोग आने लगे। उनमें शिक्षित-अशिक्षित, सभ्य असभ्य, वृद्ध-युवक, हिन्दू-मुसलमान सभी थे और सभी उनके धर्मोपदेश सुनकर परितृप्त हो गये। कभी व हृदय के आवेग से बंगला, हिन्दी, उर्दू गाना तथा साधकों की पदावली मधुर कण्ठ से गाते थे और कभी गीता, उपनिषद, पुराण, कोरान आदि की व्याख्या करते थे। प्राचीन

आर्यऋषियों के चरित्र का कीर्तन, बुद्ध, शङ्कर, कबीर, सन्त तुलसीदास, नानक, दादू, चैतन्य, रामकृष्ण आदि महाजनों के जीवन की विविध घटनायें शास्त्रालोक से उद्भासित करते हुए वह बहुत ही सहज ढंग से समझा देते थे। सुबह से रात तक विभिन्न श्रेणियों के लोगों का समागम होने से डाक्टर साहब का मकान तीर्थस्थान में परिणत हो गया। बहुत लोग उन्हें अपने घर ले जाकर आलोचना-सभा का आयोजन करते थे।

कुछ दिनों के भीतर ही सर्वशास्त्रज्ञ उस अपूर्व सन्यासी का समाचार दीवान मेजर रामचन्द्रजी के कानों में पहुँचा। वे सम्मान के साथ स्वामीजी को अपने घर ले गये। वे जितना ही वार्तालाप करते उतने ही विस्मित होते। ऐसा पाण्डित्य, भूयोदर्शन और तेजस्विता, परन्तु सर्वत्यागी! इनका सभी अद्भुत है। इस सन्यासी के द्वारा सम्भवतः महाराजा के जीवन में परिवर्तन लाया जा सकता है—ऐसा दीवान जी ने सोचा।

महाराजा मङ्गल सिंह पूरी तरह साहब थे—शिकार लेकर ही मस्त रहते थे। राजकाज कुछ भी नहीं देखते। महाराजा के पास समाचार पहुँचा, एक विख्यात साधु आये हैं। बहुत ही अच्छी अंग्रेजी बोलते हैं। शास्त्रज्ञान उनमें असाधारण है। पाश्चात्य दर्शन कण्ठस्थ है। परन्तु हैं वे महान् त्यागी।

कतूहलवश महाराजा साधु को देखने आये। साथ में कई उच्चपद के राजकर्मचारी थे। दो-चार बातों के बाद ही महाराजा ने पूछा—"सुना है आप बड़े विद्वान् हैं। चाहे तो यथेष्ट धन कमा सकते हैं। ऐसा न करके भिक्षा माँगते हुए घूमते क्यों हैं?"

स्वामीजी ने गभीर भाव से उत्तर दिया, "आप तो देश के राजा हैं। राजकाज की उपेक्षा करके साहबों के साथ शिकार करते हुए घूमते क्यों हैं?"

राजकर्मचारियों के मन में भय हुआ। महाराजा भी स्तब्ध हो रहे। कुछ क्षणों के बाद सिर न उठाकर ही उन्होंने उत्तर दिया "क्यों घूमता हूँ, उसे ठीक बता नहीं सकता। तो हाँ, अच्छा लगता है इसीलिए शिकार खेलता हूँ।"

स्वामीजी ने भी मुस्कराते हुए कहा—"जिस प्रकार आप, अच्छा लगता है

इसलिए शिकार खेलते हैं, उसी प्रकार अच्छा लगने के कारण मैं संन्यासी हुआ हूँ।" पुनश्च महाराजा मौन रहे। थोड़ी देर बाद उन्होंने फिर पूछा, "यहाँ लोग मूर्तिपूजा करते हैं, उसमें मेरा कुछ भी विश्वास नहीं है। तो मेरी दशा क्या होगी?" सम्भवतः थोड़ा परिहास का हँसी भी हँसी। स्वामीजी ने कहा— "सम्भवतः महाराजा परिहास कर रहे हैं।"

महाराज ने कहा, "नहीं स्वामीजी, बिल्कुल नहीं। देखिए सचमुच ही मैं काठ, मिट्टी, पत्थर या धातु की बनी मूर्ति की पूजा नहीं कर सकता। क्या मेरे अगले जन्म में अधोगति होगी?"

स्वामीजी स्तब्ध हो गये। सामने के दीवाल पर महाराजा का चित्र टँगा हुआ था। उसे उतारने की उन्होंने आज्ञा दी। उसके बाद उसे अपने हाथ में लेकर स्वामीजी ने पूछा, "यह किसका चित्र है?" दीवान जी ने उत्तर में बताया, यह महाराजा का चित्र है। अकस्मात् स्वामीजी ने गंभीर स्वर से कहा, "दीवानजी आप इस चित्र पर थूकिये।" सबलोग स्तम्भित हो गये। क्या सन्यासी उन्मादी है?

परन्तु स्वामीजी और भी दृढ़ स्वर से बोले, आपलोगों में से कोई भी इस चित्र पर थूक दीजिये। सबलोग स्तब्ध रह गये। गम्भीर वातावरण उत्पन्न हुआ। मानो कोई आकस्मिक दुर्घटना होने वाली है। सबलोग डर के मारे सिकुड़ रहे थे। ऐसे समय स्वामीजी वज्र गम्भीर स्वर से बोले "यह क्या? यह तो एक कागज मात्र है? इस पर थूकने में आपलोगों को इतना सङ्कोच क्या है?"

दीवान जी ने डरते हुए कहा "स्वामीजी आप यह क्या आज्ञा दे रहे हैं? यह तो हमारे पूज्य महाराज का चित्र है।"

तब स्वामीजी ने महाराज को सम्बोधित करते हुए कहा, "देखिए महाराज! यद्यपि यह चित्र आप स्वयं नहीं हैं, परन्तु इस पर दृष्टि पड़ते ही आपकी स्मृति हृदयपटल पर प्रतिफलित हो जाती है। इसी कारण महाराजा की तरह इस चित्र को सम्मान दिखाया जाता है। इसीलिए भगवान् के भक्त लोग, प्रस्तरादि-

निर्मित मूर्ति को भगवान् समझकर प्रतीकज्ञान से पूजा करते हैं। वह पूजा भगवान् की ही पूजा है, मूर्ति की पूजा नहीं है। यही है प्रतीक उपासना का सार तत्त्व। मूर्ति पूजक कभी नहीं कहता, हे पत्थर, मैं तेरी उपासना करता हूँ।... ब्रह्म चिन्मय और विभु है। वह मूर्ति में भी विद्यमान् है। मूर्ति उस चिन्मय भगवान का स्मरण करा देती है। इसलिए भक्त मूर्ति का अवलम्बन करके श्रीभगवान् की ही पूजा करता है और वह पूजा भगवान् ग्रहण करते हैं।"

महाराजा तन्मय होकर स्वामीजी की बातें सुन रहे थे। उनकी बात समाप्त होते ही हाथ जोड़ कर महाराजा ने कहा, "स्वामीजी आपने जो कुछ कहा वह अक्षरशः सत्य है। मैं अनतक अज्ञान अन्धकार में डूबा था। मैंने कुछ भी समझा नहा था। आपने आज मेरी आँखें खोल दीं। आप मुझ पर कृपा कीजिये।"

स्वामीजी ने कहा, "राजन्, ईश्वर के अतिरिक्त और कोई कृपा नहीं कर सकता। वह अपार कृपासिन्धु है। मैं उन्हीं का शरणागत हूँ। आप भी उनको शरण ग्रहण कीजिये। आपका कल्याण होगा।" इतना कहकर स्वामीजी उठ खड़े हुए।

स्वामीजी के चले जाने के बाद महाराजा ने दीवानजी से कहा "दीवानजी, ऐसे महात्मा पहले हमने कहा नहीं देखे। जिस तरह बने इन्हें और कुछ दिन यहाँ रखिये।" महाराजा का अभिप्राय जानकर दीवानजी ने अपने यहाँ स्वामीजी को और कुछ दिन रहने के लिए कहते ही स्वामीजी ने कहा, "देखिये दीवान जी, मेरे पास अनेक प्रकार के लोग आते हैं। आप लोग बड़े आदमी हैं। यदि धनी निर्धन, पण्डित मूर्ख, ब्राह्मण चाण्डाल सभी के लिए आप द्वार खोल दें तो मेरे यहाँ रहने में कोई आपत्ति नहा है।"

दीवानजी आनन्द से राजी हुए। स्वामीजी भी कुछ दिन वहाँ रहकर सबको धर्मोपदेश देने लगे। राज्य के भीतर संस्कृत पाठ* और शास्त्रादि प्रचार

---

* स्वामीजी संस्कृत भाषा की शिक्षा और उसके बहुल प्रचार को महत्त्व देते थे, क्योंकि संस्कृत शास्त्रों में ही भारत के धर्म और संस्कृति के मूल सत्य तत्त्व निहित हैं। उन्होंने १८९७ ईस्वी में मद्रास में अन्तिम भाषण देते हुए

की व्यवस्था हुई। बहुत दीन दरिद्रों का अभाव दूर हुआ। अर्थाभाव में किसी दरिद्र ग्रामीण बालक का उपनयन संस्कार नहीं हो रहा है, जानकर स्वामीजी उसके लिए अस्थिर हो उठे।...

कहा था—"संस्कृत भाषा बहुत ही कठिन है, इस कारण संस्कृत शास्त्र और उनमें लिखे तत्त्वों को हमें अवश्य ही जनसाधारण को प्रचलित भाषा में शिक्षा देनी होगी। साथ साथ संस्कृत भाषा की शिक्षा भी चलेगी, क्योंकि संस्कृत शिक्षा में संस्कृत शब्दों के उच्चारण मात्र से भारतीय जाति में गौरव और शक्ति का भाव जाग उठेगा।"'हे निम्न श्रेणी के लोग, मैं तुमसे कहता हूँ—तुम्हारी अवस्था की उन्नति साधन का एकमात्र उपाय संस्कृत भाषा की शिक्षा ही है।...तथा उसके साथ उच्च वर्गों की शिक्षासंस्कृति को भी अपनाना है।"

उन्होंने दूसरे स्थान में कहा है, "*स्त्रियों तथा निम्न श्रेणी के लोगों में संस्कृत* शिक्षा का विस्तार सबसे पहले आवश्यक है। प्राचीन ऋषियों के द्वारा प्रचलित शिक्षा का अपने कार्यक्षेत्र में निज आदर्शों को पूर्णरूप से करायत्त करने पर वे स्वयं ही समझ सकेंगे कि समाज के किस स्तर में उनका स्थान निर्दिष्ट होना चाहिये, किस किस काम में उन्हें हस्तक्षेप करना उचित है और किसका स्वीकार या वर्जन करना आवश्यक है।"

धर्म ही हमारे जातीय जीवन का मेरुदण्ड है। हमारी इस पुण्यभूमि भारत में केवल धर्म ही जातीय जीवन की बुनियाद है। भारतवासी के जीवनसंगीत में धर्म ही मूल स्वर है।...धर्म, केवल धर्म ही भारत के प्राण"—स्वामीजी की वाणी। संस्कृत भाषा में ही हमारे मूल धर्मग्रन्थ रचित हैं। संस्कृत भाषा को सीखकर हमें धर्म के मूल तत्त्वों से परिचित होना होगा। इस कारण स्वामीजी ने संस्कृत के बहुल प्रचार के सम्बन्ध में विभिन्न स्थानों में अनेक बातें कहीं हैं।...भारत के जातीय जीवन में एकता संस्थापन एकमात्र संस्कृत शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है।

स्थानीय लोगों के विशेष आग्रह रहते हुए भी मार्च मास के अन्तिम भाग में वे जयपुर की ओर चले। उसके अनन्तर खेतड़ी, अजमेर, आबू पर्वत, अहमदाबाद, जूनागढ़, गिरनार, पोरबन्दर (यहाँ ८, ९ मास), द्वारका (काम्बे उपसागर के तीर पर स्थित मन्दिर-बहुल शहर), पालिताना, बरोदा, खण्डवा, बम्बई, पूना, बेलगाँव (१८९२ अक्टूबर), बंगलोर, मैसूर, कोचिन, त्रिवेन्द्रम, मदुरा आदि स्थानों का दर्शन कर दक्षिण भारत की वाराणसी श्रीरामचन्द्र के द्वारा प्रतिष्ठित रामेश्वर और देवीतीर्थ कन्याकुमारी में उपस्थित हुए—(१८९२ के अन्तिम भाग में)। उसके बाद पाण्डिचेरी, रामनाद, मद्रास, हैदराबाद और खेतड़ी होकर १८९३ ईस्वी ३१ मई बम्बई से जहाज पर अमेरिका यात्रा के दिन तक वे निरन्तर भ्रमण ही करते रहे।

प्रायः ढाई साल के इस भ्रमण का प्रत्येक दिन ही अनेक घटनाओं से पूर्ण है। राजमहल तथा दरिद्र की कुटिया में वे जो शिक्षा देने या लेने के लिए घूमने निकले थे सभी जगह उसे अच्छी तरह सम्पन्न किया। वे युवकों को वेद वेदान्त पुराण आदि श्रेष्ठ धर्मग्रन्थ के अध्ययन में उत्साहित करते थे। उससे भी बढ़कर मनुष्य मात्र की देवताहष्टि से पूजा करने का उपदेश देते थे। जनसाधारण की अवस्था का उन्नयन, दरिद्र प्रजाओं की दरिद्रता मोचन तथा शिक्षा* की व्यवस्था के लिए राजा महाराजाओं को नियुक्त करते थे।।

---

* शिक्षा के सम्बन्ध में स्वामीजी की एक सुचिन्तित परिकल्पना थी—जो उनके वाणी और रचनावली के भीतर अनुस्यूत दिखाई पड़ती है। उनके मत से शिक्षा की भित्ति भारतीय भाषा और संस्कृत ही होनी चाहिये। संस्कृत भाषा के भीतर सारे सत्य निहित हैं। इस कारण उस भाषा के माध्यम से हमारे आनुष्ठानिक धर्म और संस्कृति की शिक्षा देने से फल शुभ होगा।

वर्तमान शिक्षापद्धति के दोषगुणों का विचार कर उन्होंने कहा है—"इस देश में वर्तमान प्रचलित शिक्षापद्धति में कुछ अच्छी बातें अवश्य हैं, किन्तु

दरिद्रों को साहस तथा आशा की वाणी सुनाते थे, अपमानितों को मर्यादा-पूर्ण जीवन में प्रतिष्ठित करते थे और पापी-तापियों के संतप्त हृदय में अमृत का उद्रेक देते थे।

लगभग तीन मास तक स्वामीजी के भारत भ्रमण के दिन अनेक घटनाओं

उसकी अपेक्षा बहुत अधिक भयंकर दोष भी हैं।'''उस शिक्षा से मनुष्य नहीं तैयार होता, क्योंकि वह सम्पूर्ण नेति-मूलक शिक्षा है, जिसका विषमय फल मृत्यु से भी भयानक है। उन्होंने और भी कहा है कि वर्तमान शिक्षापद्धति केवल क्लर्क तैयार करने का यन्त्रमात्र है। केवल यही नहीं, उस शिक्षापद्धति का कुफल सुदूरप्रसारी है। इसके प्रभाव से मनुष्य की श्रद्धा और विश्वास का लोप होता जा रहा है।" शिक्षा के सम्बन्ध में उन्होंने अन्यत्र कहा है, "शिक्षा क्या केवल पुस्तक से होती है? नहीं। क्या वह विविध विषयों का ज्ञान है? नहीं, यह भी नहीं। यथार्थ शिक्षा कहने से बहुत से शब्दों का संग्रह नहीं समझा जा सकता है, समझा जाता है मेधा आदि मानसिक वृत्तियों का विकास।'''मनुष्य के भीतर जो पूर्णता वर्तमान है उसी के विकास का नाम शिक्षा है। जिसके माध्यम से जीवन गठित होता है, मनुष्यत्व का विकास होता है, चरित्र की उन्नति सिद्ध होती है, ऐसे भावों को हमें अवश्य ग्रहण करना चाहिये। यथार्थ में यदि किसी ने ग्रन्थागार की सब पुस्तकें कण्ठस्थ की हों, उससे भी तुम अधिक शिक्षित हो सकते हो, यदि केवल पाँच भावों को हृदय में ग्रहण कर उसी के अनुसार निज जीवन और चरित्र गठित कर सको। 'शिक्षा' शब्द से मैं यथार्थ कार्यकारी ज्ञानार्जन समझता हूं।" केवल पुस्तक की विद्या से काम नहीं चलेगा। हमारा प्रयोजन उसी शिक्षा से है जिसके द्वारा चरित्र-गठन हो, मन का बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो, और मनुष्य स्वावलम्बी हो सके। पाश्चात्य विज्ञान के साथ वेदान्त का समन्वय करना चाहिये—जिसका मूलमन्त्र होगा ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और आत्मविश्वास आदि।"

से पूर्ण थे और प्रत्येक घटना का विशेष तात्पर्य था। स्थानाभाव के कारण उनमें से कुछ घटनाओं का विवरण देकर ही हमें तृप्त रहना होगा।'''

* * *

अलवर से जयपुर। रास्ते में पाण्डुपोल के हनुमानजी का विख्यात मन्दिर और टाइलाय के नीलकण्ठ महादेव के प्राचीन मन्दिर आदि का दर्शन कर वे जयपुर आये। सर्वत्र ही उनके उपदेश सुनने के लिए अनेक लोगों का समावेश होता था। नीलकंठ का मन्दिर और उसके आसपास के स्थान उन्हें बहुत ही अच्छे लगे थे। समुद्रमन्थन का हलाहल पीकर महादेव का नाम नीलकंठ हुआ था। उस पौराणिक घटना के व्याख्याप्रसग में उन्होंने यहाँ कहा था—"समुद्र है माया समुद्र। रूप रस-गन्धादि-विशिष्ट यह विचित्र जगत् माया की रचना है। यहाँ इन्द्रिय-सुखकर अनेक भोग्य वस्तुयें हैं। भोग के परिणाम में उससे हलाहल उत्पन्न होगा ही। वह हलाहल आत्मज्ञान का विरोधी है।'''भूमानन्द में मग्न देवादिदेव शङ्कर ने ससार समुद्र से उत्पन्न हलाहल को स्वय पीकर प्रजाओं को अमृत का दान दिया था।"' •

बारह

अलवर के बाद जयपुर में दो सप्ताह तक रहते समय उन्होंने एक प्रसिद्ध वैयाकरण से पाणिनि अष्टाध्यायी का अध्ययन आरम्भ किया। तीन दिन तक व्याख्या करके भी पडितजी प्रथम सूत्रभाष्य स्वामीजी को समझा नहीं सके। तब हताश होकर उन्होने कहा—"स्वामीजी ऐसा प्रतीत होता मुझसे आपका कोई उपकार नहीं होगा।"

विशेष लज्जित होकर स्वामीजी अपनी चेष्टा से भाष्यार्थों को हृदयगम

पाने का दृढ़ संकल्प लेकर पढ़ने बैठे। और बहुत ही थोड़े समय में भीतर भाष्य का मर्म समझ गये। बाद में वे पंडितजी के पास उपस्थित होकर भाष्य की व्याख्या सुनाने लगे। उनकी सरल और सुनिश्चित व्याख्या सुनकर पंडितजी आश्चर्यचकित रह गये। केवल व्याख्या ही नहीं, नया प्रकाश डाल-कर उन्होंने पंडितजी को मुग्ध कर दिया। उसके अनन्तर वे सूत्र पर सूत्र, अध्याय पर अध्याय, अत्यन्त सुगमता से पढ़ने चले। स्वामीजी ने कहा था—"संकल्प ही सब कुछ है। जीवन में दृढ़ होने से कोई भी काम नहीं रुकता। इस कारण दृढ़ संकल्प आवश्यक है।…"

जयपुर के विभिन्न स्थानों में रहते समय अनेक लोग उनके सम्पर्क में आकर धन्य हुए थे। प्रधान सेनापति हरिसिंह जी स्वामीजी को देखकर ही बहुत आकृष्ट हुए और अपने मकान में उन्हें ले जाकर धर्मालोचना का प्रबन्ध किया। वह मूर्तिपूजा पर विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने स्वामीजी से बहुत तर्क-वितर्क किया। एकदिन दोनों घूमने निकले। राजपथ पर भक्तलोग कीर्तन करते हुए श्रीकृष्ण की मूर्ति लेकर भारी शोभायात्रा में चल रहे थे। दोनों खड़े हो गये। इतने में एकाएक स्वामीजी ने हरिसिंह का स्पर्श करते हुए कहा—"देखिए, यह श्रीभगवान् की जीवित मूर्ति है।"

स्वामीजी के स्पर्श से हरिसिंह का भावान्तर हुआ। आँसू बहाते हुए वे मन्त्र-मुग्ध होकर खड़े-खड़े मूर्ति का दर्शन करने लगे। उसके अनन्तर गद्गद् कण्ठ से उन्होंने कहा—"स्वामीजी अबतक तर्क-युक्तियों के सहारे जो समझ नहीं सके, आज आपकी कृपा से वह सम्भव हुआ। मूर्ति में श्रीभगवान् का दर्शन कर आज मैं धन्य हुआ।"

जयपुर और अन्यत्र जनसाधारण की दारिद्र्य और असहाय अवस्था देख-कर स्वामीजी का हृदय वेदना से भर गया। येही हैं जाति के मेरुदण्ड, जाति के प्राण, भविष्य भारत। दुर्दशाग्रस्त लोगों की शोचनीय अवस्था के प्रति-कार के लिए वे राजा तथा राजकर्मचारियों को उत्तेजित करने लगे। वे जन-जागरण के ऋषि तथा आर्तबन्धु थे। केवल भारत के ही नहीं, बल्कि सभी

देशों की सभी जातियों के गरीबों के लिए उनका चित्त रो रहा था। उनके विशाल हृदय में भौगोलिक सीमा-रेखा नहीं थी। उन्होंने कहा था—"भगवान् को कहाँ खोजते फिरते हो? दरिद्र, दुःखी, दुर्बल, घृणित, अस्पृश्य लोग क्या देवता नहीं हैं। पहले इन्हीं की पूजा क्यों नहीं करते?...वेदान्त की जन्मभूमि भारतवर्ष में जनसाधारण युगों से अवहेलित हैं। उनका स्पर्श तथा सङ्ग अपवित्र है। निराशा के अन्धकार में उनका जन्म है और उसी में उन्हें निरन्तर रहना पड़ता है। याद रखो, दरिद्र की कुटियों में भारतीय जाति का निवास है। परन्तु हाय! उनके लिए अभी तक किसी ने कुछ भी नहीं किया है।' भारत के उपेक्षित किसान, जुलाहे, मोची, झाड़ुवान् आदि निम्न श्रेणी के लोग विदेशियों के पीडन और स्वदेशवासियों की अवज्ञा सहते हुए भी स्मरणातीत काल से चुपचाप काम करते आ रहे हैं और उसके लिए कभी भी उन्होंने उपयुक्त पारिश्रमिक भी नहीं पाया।"

भारत के जनसाधारण की दुर्गति देखकर उनका विशाल हृदय अत्यन्त भाराक्रान्त हो गया था। * इसी कारण वे गणसवित् जाग्रत करने के लिए युवकों को उत्साहित करते थे। दुर्दशाग्रस्त तथा दरिद्रों की असहाय अवस्था के प्रति राजा महाराजाओं की दृष्टि आकर्षित करते थे। चण्डाल से लेकर

* 'वर्तमान भारत' ग्रन्थ में स्वामीजी ने सभी देशों के निपीड़ित मनुष्यों के लिए अपनी गभीर वेदनानुभूति नाना स्थानों में प्रकट की है। उन पर विशेष ध्यान देना चाहिये। एक स्थान में उन्होंने लिखा है, "और जिनके शारीरिक परिश्रम से ब्राह्मण का प्रभुत्व, क्षत्रिय का ऐश्वर्य तथा वैश्य का धनधान्य का सञ्चय है, वे कहाँ हैं? समाज में जो लोग सर्वत्र व्याप्त रहकर सब देशों तथा सब कालों में 'जघन्यप्रभवो हि स.' रूप से अभिहित हैं उनका वृत्तान्त क्या है? जिनके विद्यालाभेच्छा रूप गुरुतर अपराध से भारत में 'जिह्वाच्छेदन शरीरभेदन आदि' भयङ्कर दण्ड प्रचलित थे। भारत के वे 'चलमान श्मशान', भारतेतर देशों के 'भारवाही पशु' हैं उस शूद्र जाति की गति क्या है?"

सब श्रेणियों की उन्नति करने के लिए वे हृदय का शोणित देने लगे। किन्तु ठीक किस उपाय से गणजागरण आयेगा उसे वे समझ नहीं सके। कर्तव्य क्या है उसे जता देने के लिए वे कातर हृदय से श्रीभगवान् के निकट प्रार्थना करने लगे। हम जानते हैं उनकी प्रार्थना निष्फल नहीं हुई। आज सभी देशों में जनजागरण आ गया है—विविध गण-आन्दोलनों के माध्यम से—सोशलिज़म्, एनार्किज़म्, नाइहिलिज़म् या कम्यूनिज़म् के रूप में। उन्होंने कहा था "अब शूद्र-शक्ति का जागरण है।" उनकी भविष्य वाणी अक्षरशः सत्य हुई है। सभी देशों के श्रमिकों और तथाकथित नीच जातियों में संगठन और जागरण की सूचना चारों ओर दिखाई पड़ रही है।

निपीड़ित मानवों के दुःख दारिद्र्य के सम्पर्क में वे जितना ही आने लगे उतना ही उनके अन्तर में जनसेवाव्रत का सङ्कल्प रूप ग्रहण करने लगा। मनुष्यों की दुःखवेदना को केन्द्र करके उनकी सारी शक्ति तथा सभी प्रचेष्टा मनुष्य रूपी नरनारायण की सेवा में एकीभूत हो गयी। उन्होंने कहा था, "मैं ऐसा एक धर्म चाहता हूँ जो हम में आत्मविश्वास उत्पन्न करने, जातीय मर्यादा बोध जगाने, दरिद्र जनसाधारण को अन्न और शिक्षा देने तथा हमारे चारों ओर की सभी दुःख वेदनाओं को दूर करने की शक्ति ला दे सके। * यदि भगवान् को प्राप्त करना चाहते हो तो मनुष्य की सेवा करो।"

जनसेवाव्रत में उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। सारे विश्व के दरिद्रों के हृदय विदारणकारी आर्तनाद की प्रतिध्वनि को वे अपने अन्तर में सुन रहे थे। इसीलिए वे चारों ओर 'नररूपी-नारायण-सेवा' का मन्त्र सुनाने लगे। भारत के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक सभी को वे नरनारायण के सेवाव्रत में अनुप्राणित करने लगे। रवीन्द्रनाथ के चित्त में स्वामीजी की वाणी किस प्रकार स्पन्दित हुई थी? उन्होंने लिखा है—"विवेकानन्द ने कहा था—प्रत्येक मनुष्य के भीतर ब्रह्म की शक्ति है, कहा था—दरिद्र-नारायण के भीतर नारायण हमारी सेवा पाना चाहते हैं। इसी का नाम वाणी है। यह वाणी स्वार्थबोध के बाहर मनुष्य के आत्मबोध को असीम मुक्ति का मार्ग

दिया रही है। यह तो किसी विशेष आचार का उपदेश नहीं है और न व्यावहारिक सङ्कीर्ण अनुशासन ही है। छुआछूत का विरोध इसी में अपने आप आ जाता है। उनके द्वारा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का सुयोग मिल सकता है, इसलिए नहीं, बल्कि उनके द्वारा मनुष्य का अपमान दूर होगा इसलिए। वह अपमान हम सबके लिए आत्मावमानना है।

"स्वामी विवेकानन्द की यह वाणी सम्पूर्ण मानव जाति की उद्बोधक होने के कारण ही धर्म के भीतर से मुक्ति के निश्चित मार्ग में हमारे युवकों को प्रवृत्त कर रही है।" रामकृष्ण मिशन शिक्षण मन्दिर बेलूड़ मठ १६६१ में प्रकाशित 'सन्दीपन' २ सख्या, ३२ पृष्ठ)

स्वामीजी ने स्वयं ही अन्यत्र कहा है कि—भ्रान्ति के वश जिन्हें लोग 'मनुष्य' रूप से अभिहित करते हैं हम लोग उसी नारायण के सेवक हैं। सामाजिक राजनैतिक, आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में यथार्थ मगल साधन का एकमात्र सूत्र विद्यमान है—वह सूत्र है कि 'मनुष्य मात्र ही नारायण है, मैं और मेरा भाई एक है।' सब देशों तथा सब जातियों के लिए यह सत्य समान भाव से लागू हो सकता है। स्वामीजी की यह वाणी व्यवहारिक क्षेत्र में दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने पर ही उसमें सामूहिक एकता और विपुल सम्भावना पूर्ण विश्वभ्रातृत्व का बीज प्रतीत होगा। उस मन्त्र के भीतर से उन्होंने भविष्य भारत का आह्वान किया था।

* * *

जयपुर से स्वामीजी अजमेर आये। यहाँ मुगल सम्राटों के महल, प्रसिद्ध दरगा और फकीर चिस्ति साहब की समाधि का कारुकार्य देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। उसके बाद वे आबू पहाड़ आये। पर्वत की रमणीय शोभा के अतिरिक्त करोड़ों रुपयों से तैयार त्रयोदश शताब्दी के प्रसिद्ध जैन मन्दिर का अनुपम कारुशिल्प उन्हें विशेष रूप से आकृष्ट करने लगा। एक गुफा में आश्रय लेकर उन्होंने कई दिनों तक 'दिलवाड़ा' मन्दिर का अतुलनीय स्थापत्य सूक्ष्म रूप से देखा। स्वामीजी स्थापत्य कला के एक विशेषज्ञ थे।

एक गुफा में रहते समय कुछ दिनों के भीतर ही अनेक व्यक्ति उनसे प्रति विशेष रूप से आकृष्ट हुए। स्थानीय राजा के वकील एक मुसलमान मौलवी स्वामीजी के व्यक्तित्व से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने आदर के साथ स्वामीजी को अपने बँगले में ले जाकर भोजनादि का उचित प्रबन्ध करके कुछ दिन उन्हें रखा था। उस समय मौलवीसाहब अनेक उच्च पद के राजकर्मचारियों को स्वामीजी के पास लाते थे। इतने अधिक लोग आने लगे कि उन्हें भोजन और विश्राम का समय तक नहीं मिलता था। उसी ढंग से मौलवी साहब एकदिन खेतड़ी के राजा के प्राइवेट सेक्रेटरी मुन्शी जगमोहन लाल को स्वामीजी के पास लाये। यह सेक्रेटरी साहब सारे राजपूताना में विशेष सम्मानित ताजिमी सर्दार के वंशज थे। उनके वंश की इतनी अधिक मर्यादा थी कि कोई ताजिमी सर्दार बिना राजा के दर्बार में आने पर राजा स्वयं सिंहासन छोड़ कर खड़े हो जाते और उन्हें सम्मान देते थे। कौपीन 'पहने हुए' स्वामीजी उस समय थोड़ा विश्राम ले रहे थे। जगमोहन लाल समालोचक का मनोभाव लेकर आये थे। स्वामीजी से भेंट होते ही उन्होंने पूछा "आप हिन्दू सन्यासी हैं, मुसलमान के घर में क्यों रह रहे हैं?"

स्वामीजी ने साथ ही साथ उत्तर दिया, "महाशय, मैं सन्यासी हूँ। सामाजिक आचार नियम मेरे लिए नहीं हैं। मैं एक मेहतर के साथ भी भोजन कर सकता हूँ। ब्रह्म सब प्राणियों में सदा विद्यमान हैं। सभी ईश्वर की मूर्तियाँ हैं। ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित होने पर भेदाभेद, उच्च-नीच, स्पृश्यास्पृश्य का भाव नहीं रहता। शास्त्र भी इस बात का समर्थन करते हैं—'निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः'—मुक्तिमार्ग में विचरणशील निगुणातीत पुरुषों के लिए विधि तथा निषेध समान है। आप लोग शास्त्र या भगवान् की परवाह नहीं करते।"

स्वामीजी के इस तीखे उत्तर से भी जगमोहन लाल नहीं रुके। वे नाना प्रकार के तर्क वितर्क करने लगे। परन्तु थोड़ी ही देर में चुप हो गये। वे मुग्ध हो गये—उनका हृदय मथित होने लगा। यह तो केवल बात ही नहीं है। राजा साहब से इनका परिचय कराना होगा। सेक्रेटरी साहब के मुँह से उस

अद्भुद सन्यसी की बात सुनकर राजा साहब उनके दर्शन के लिए तैयार हुए। स्वामीजी को यह बात बताते ही वे राजा साहब से मिलने गये।

राजा बहादुर ने परम श्रद्धा के साथ स्वामीजी को बिठाया और स्वयं खड़े होकर नाना प्रकार के प्रश्न करने लगे : जीवन क्या है? धर्म क्या है? शिक्षा क्या है! नीति का अनुशासन क्या है? प्रत्येक प्रश्न का सदुत्तर पाकर राजा साहब स्वामीजी का गम्भीर शास्त्र ज्ञान, विश्लेषण शक्ति तथा आध्यात्मिक अनुभूति का परिचय पाकर अत्यन्त मुग्ध हो गये। प्रथम परिचय क्रमशः गम्भीर अन्तरङ्ग भाव में परिणत हुआ। दिन पर दिन वे स्वामीजी के प्रति गभीर श्रद्धा सम्पन्न होने लगे। नाना प्रकार की आलोचनाएँ हुआ करती थीं। धर्म, संस्कृति, सभ्यता, राष्ट्र, मानव जीवन के उद्देश्य आदि बहुत से प्रश्न उन लोगों की आलोचना के विषय थे।

अब राजा साहब के खेतड़ी में वापस जाने का समय हुआ। धर्मप्राण राजा अजित सिंह ने एकदिन बहुत ही विनीत भाव से कहा—"स्वामीजी आप मेरे राज्य में चलिये। मैं विशेष यत्न से आपकी सेवा करूँगा।" राजा साहब के विशेष आग्रह से अन्त में स्वामीजी सहमत हुए। कुछ दिनों के बाद राजा साहब स्वामीजी तथा मन्त्रियों के साथ खेतड़ी रवाना हुए। ट्रेन से जयपुर तक आये। उसके बाद ६० मील राजा साहब की गाडी से सबका जाना हुआ।

स्वामीजी खेतडी में कई सप्ताह रहे। राजमहल में भी वे सर्वत्यागी सन्यासी की ही तरह रहे। खेतडी में निवास का समय साधना, स्वाध्याय तथा शिक्षा दान से पूर्ण था। अधिक समय वे ध्यान में बिताते थे। नाना विषयों के उपदेश दान उनका दैनिक कार्य का अंग था। केवल राजा साहब ही नहीं, उच्च राजकर्मचारी तथा अनेक विशिष्ट लोग उपदेशप्रार्थी होकर उनके पास आते थे। खेतडी के राजा साहब उन्नतमना और गुणग्राही थे। उनकी राजसभा में संस्कृत, प्राच्य तथा प्रतीच्य दर्शन के अभिज्ञ अनेक पण्डित थे। राजा के सभापण्डित नारायणदास जी सारे राजपूताना में अद्वितीय वैयाकरण थे। स्वामीजी उन पण्डितजी के पास पतञ्जलि के महाभाष्यका

अध्ययन करने लगे। दो एक दिन के भीतर ही स्वामीजी के असाधारण पाडित्य का परिचय पाकर पंडितजी ने कहा, "स्वामीजी आप-जैसे विद्यार्थी का मिलना दुर्लभ है।" योग्य विद्यार्थी पाकर पंडितजी उत्साह से पढ़ाने लगे। परन्तु स्वामीजी ऐसे ऐसे गूढ़ प्रश्नों की अवतारणा करते थे कि पंडितजी को उनका उत्तर एकाएक नहीं सूझता था।

राजा साहब स्वामीजी के जीवन से इतने अधिक श्रद्धा-सम्पन्न हुए कि अन्त में उन्होंने स्वामीजी को गुरु-पद में वरण कर लिया। स्वामीजी ने भी राजा की भक्ति देख कर उन्हें शिष्य रूप से ग्रहण कर लिया।

खेतड़ी के राजा पुत्रहीन थे। एकदिन उन्होंने स्वामीजी के पास बहुत ही कातर भाव से अपने मन का दुःख जता कर कहा, "मैं पुत्रहीन हूँ। आप आशीर्वाद दीजिये कि मुझे एक पुत्र हो। आप का आशीर्वाद निष्फल नहीं होगा।"

राजा साहब की भक्ति और कातरता देखकर स्वामीजी के मन में करुणा का सचार हुआ। उन्होंने राजा साहब को आशीर्वाद दिया। स्वामीजी का आशीर्वाद निष्फल नहीं हुआ। दो साल के भीतर ही राजा साहब को एक पुत्र प्राप्त हुआ। राजा साहब गुरु जी के प्रति इतने आकृष्ट हुए थे कि क्षण भर भी उन्हें छोड़कर नहीं रह सकते थे। यहाँ तक कि गहरी रात को भी स्वामीजी के पास आकर उनकी चरणसेवा करते थे। एकदिन अपने मित्रों के साथ वे प्रमोदकानन में उपस्थित हुए। गायिकाओं ने वीणा के साथ मधुर गायन प्रारम्भ कर दिया। उस समय राजा साहब को ऐसा लगा, अहा! स्वामीजी यदि यह गान सुनते तो बहुत प्रसन्न होते। उसी समय उन्होंने अपने 'सेक्रेटरी को उन्हें बुलाने के लिए भेज दिया। स्वामीजी आये। राजा की आज्ञा से एक नर्तकी ने गाना शुरू किया, परन्तु स्त्रिया के कठ का सगान सुनते ही स्वामीजी उठ खड़े हुए। राजा ने हाथ जोड़ कर कहा—"स्वामीजी एक गाना तो सुन जाइये।" राजा के अनुरोध से स्वामीजी को पुनः बैठना पड़ा। नर्तकी ने भक्ति भाव से भक्त कवि सूरदास का एक पद गाया—

"प्रभु मेरो अवगुन चित न धरो,
समदरशी है नाम तिहारो, चाहे तो पार करो।
इक लोहा पूजा में रहत है, इक रहत व्याध घर परो।
पारस के मन द्विधा नहि है, दुहूँ एक काचन करो॥
इक माया इक ब्रह्म कहावत सूरदास झगेरो।
अज्ञान से भेद होवे, ज्ञानी काहे भेद करो॥

• • •

ज्ञान की व्यंजना ने स्वामीजी का अन्तर स्पर्श किया। वह स्तब्ध हो रहे। 'सर्व खल्विदं ब्रह्म'—क्या यह केवल बात ही है। संन्यासी तो समदर्शी होते हैं। अनुशोचना के तीक्ष्ण शर से वह विद्ध हुए।" पतिता के गान से उनका अंतर आलोकित हो गया। उन्होंने उसी समय हाथ जोड़कर कहा: "माताजी मुझे क्षमा कीजिये। आपको मैं घृणा करके उठा जा रहा था। आपके गाने से मुझे चैतन्य हुआ।" उन्होंने उस दिन एक बहुत बड़ी शिक्षा पायी। व्यावहारिक क्षेत्र में वे और भी समदर्शी हुए।

स्वामीजी केवल राजमहल के निवासी ही नहीं थे। वे प्रजाओं के सुख दु:ख के भी भागी होते थे। राजपूताना में भ्रमण करते समय गरीबों की शोचनीय अवस्था से वे विशेष रूप से परिचित हुए तथा उसके प्रतिकार की चेष्टा करने लगे। उन्होंने राजा महाराजाओं के हृदय में जनसेवा का भाव उत्पन्न किया था। स्वामीजी के उपदेश से अनुप्राणित होकर खेतड़ी के राजा ने अपने राज्य में प्रजाओं की उन्नति के लिए अनेक प्रकार के प्रबन्ध किये। राजाओं के हाथ में शक्ति थी, धन था। इस कारण वे उनसे मिले थे—उनके मन में परिवर्तन लाने के लिए। अनेकांशों में वे सफल भी हुए थे। जहाँ कहीं भी वे गये सर्वत्र ही धनिकों से दरिद्रों के लिए आवेदन किया करते थे। परन्तु उन्होंने यह भी समझा था कि दो चार राजा महाराजों की उदारता तथा सदिच्छा से भारत के व्यापक दु:ख-दारिद्र्य का बहुत थोड़ा ही लाघव हो सकता है। स्वामीजी के पाश्चात्य देश जाने की परिकल्पना के पीछे भी भारत के दु:ख

मोचन का मुख्य भाव था। उन्होंने कहा था, "मैंने सारे भारत का भ्रमण किया है।...सभी जगह के भयानक दुःख-दारिद्रय अपनी आँखों से देखा है। देखकर मैं व्याकुल हो गया। आँख के आँसू नहीं रुके।...इसी कारण जन-साधारण की मुक्ति के उपाय ढूँढ़ने के लिए ही अब मैं अमेरिका जा रहा हूँ।"

स्वामीजी जिस भिक्षा के झोले को लेकर अपने दारिद्र्य-पीड़ित स्वदेश वासियों के लिए धन और सहायता के प्रार्थी होकर धनकुबेरों के देश में गये थे, वह झोला उसी समय पूर्ण न होने पर भी उनकी प्रार्थना व्यर्थ नहीं हुई। उन्होंने मानव आत्मा के कोमल तन्तु को स्पर्श किया था। उन्होंने मानव जाति के भीतर एकता और विश्वभ्रातृत्व का आवेदन जताया था। उनके मुख से दीन मानव-जाति के प्रति सहानुभूति, प्रार्थना के रूप में निकली थी। वर्तमान में प्राच्य की अनुन्नत जातियों के लिए जो अपरिमित सहायता प्राश्चात्य देशों से आ रही है वह स्वामीजी के आवेदन का ही फल है। इससे दाताओं के मन में राजनैतिक उद्देश्य रह सकता है (एकदम निःस्वार्थ सहायता एक कल्पना मात्र है), किन्तु प्राच्य के अगणित नरनारी उससे उपकृत हो रहे हैं, यह अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। उन्होंने मानव जाति के हृदय में जो विश्वमानवता का बीज बोया था वह श्रीरामकृष्ण देव के जीवन सलिल से सिक्त था। इस कारण वह बीज कभी नष्ट नहीं हो सकता।

स्वामीजी का जीवन-व्रत क्या था उनके एक पत्र से उसका आभास मिलता है।— "एक ओर भारत के तथा विश्व के भावी धर्म सम्बन्धी मेरी परिकल्पना तथा दूसरी ओर जिन उपेक्षित लाखों नरनारियों के दिन दुःख के अन्धकार में क्रमशः डूबते जा रहे हैं, जिन्हें सहायता देने या जिनके विषय में सोचने वाला कोई नहीं है जो दीन हीन और पीड़ित हैं उनके द्वार पर सुखसम्पद, नीति धर्म की शिक्षा वहन करते हुए ले जाना, यही मेरी आकांक्षा और व्रत है। इसका मैं उद्यापन करूँगा। अथवा मृत्यु का वरण करूँगा।" विश्वकल्याण की वेदी तल में उनका हृदय उत्सर्गीकृत था।

खेतड़ी के राजमहल में भी स्वामीजी का हृदय उसी भाव से पूर्ण था। उनकी अनुप्रेरणा से राजा और धनिकों के धन से बहुत से अनाथालय, दातव्य चिकित्सालय, अवैतनिक विद्याभवन, आर्तत्राणकारी और जनहित कर प्रतिष्ठान बन गये।

खेतड़ी के राजा के विशेष अनुरोध रहते हुए भी स्वामीजी निकल पड़े। खेतड़ी से पुन अजमेर होकर अहमदाबाद आये। किसी समय उस स्थान की समृद्धि तथा आभिजात्य इतने अधिक थे कि लन्दन के साथ इसकी तुलना होती थी। उनके मनोरम जैन मन्दिर, मुसलमानो की नामी मस्जिदें तथा कब्रिस्तान की स्थापत्यकला लोगों क श्रेष्ठ कीर्ति-स्तम्भ रूप में विद्यमान हे। स्वामीजी ने उसी मोक से स्थानीय जैन पडितों क निकट जैन धर्म के विषय म ज्ञानार्जन किया।

इसके बाद हम लोग उनको बादवान के पथ म अकिंचन सन्यासी के रूप म पाते हैं। शरीर धारण भिक्षान्न पर चलता था। दिन में पथ भ्रमण और रात में वृक्ष के नाचे या मन्दिर में आश्रय ग्रहण। वे उन दिनो विविदिषानन्द या सच्चिदानन्द क नाम से परिचित थे। भारत क अगणित सन्यासियो में वे भी एक थे। कम्बल, एक परिधानवस्त्र, दड, कमण्डल, गीता तथा ईशानुशरण (Imitation of Christ) उनके पास थे। वे सर्वत्र ही गरीबो से अधिक मिलते थे। क्योंकि उनकी सरलता और धर्मविश्वास उन्हें विशेष रूप से आकर्षित किया करते थे।

लिमडी में स्वामीजी का जीवन विपद्ग्रस्त हुआ। एक भीषण अग्नि परीक्षा के भीतर वे फँस गये थे। कई दिनो तक शहर के भीतर परिव्राजक के रूप में बिताकर उन्होंने शहर के किसी साधुओं के अखाड़े में आश्रय लिया। साधुओं ने आदर के साथ स्वागत करते हुए उनको एक निर्जन गृह में रहने का प्रबन्ध कर दिया। अनुकूल स्थान समझ कर स्वामीजी ने वहाँ आश्रय लिया परन्तु कुछ दिनों के भीतर ही वह समझ गये कि अच्छी जगह उन्होंने आश्रय नहीं लिया। दिखाई पड़ता था कि अनेक प्रकार की स्त्रियाँ आ रही हैं। धर्म

के नाम से बुरे अनुष्ठान होते थे। वे साधु लोग वाम मार्ग सम्प्रदाय भुक्त थे। वे ब्रह्म की उपासना करते थे। मन्त्रोच्चारण का आडम्बर था। वाम्मचिर वे करने में प्रजाओं का वृद्धि। स्वामी जी का सिर ठनक गया। कुछ दिनों के बाद वे भागने की चेष्टा में ज्योंही दरवाजा खोलने के लिए गये, देखा कि दरवाजा बाहर से तालाबन्द। उनके गति विधि पर भी सावधानी दृष्टि रखी जाती थी। वे जान गये कि वे बन्दी हैं।

अखाड़े के अध्यक्ष ने आकर उनसे कहा, "तुम ब्रह्मचर्यवान ब्रह्मचारी और एक बड़े साधु हो। हम लोग एक व्रत का उद्यापन कर रहे हैं, तुम अपनी तपस्या का फल हमें दे दो। तुम्हें अपने ब्रह्मचर्य का भंग करना होगा। स्वामीजी चुप रह कर विशेष उत्कंठा के साथ भगवान् के निकट कातर प्रार्थना करने लगे।

एक बालक स्वामीजी के पास प्राय आता था और उनके प्रति विशेष अनुरक्त हो गया था। दूसरे दिन उसके आते ही स्वामी जी ने अपनी विपत्ति की बात लिखकर बालक के हाथ में देते हुए कहा—"तुम जिस तरह से हो यह चिट्ठी अभी जाकर ठाकुर साहब के हाथ में देना।" लिमडी के राजा के पास सब लोग नि सकोच जा सकते थे। बालक ने उस चिट्ठी को राजा के हाथ में देते ही उन्होंने उनके उद्धार के लिए कुछ देह-रक्षक सैनिकों को भेज दिया। स्वामीजी ने राजमहल में आकर सारी घटना का विवरण सुनाया।

राजा के विशेष अनुरोध से उन्हें कुछ दिन लिमडी में रहना पड़ा। नीच मार्गी सम्प्रदाय की बात स्वामीजी ने पहले ही सुनी थी। किन्तु वे ऐसे घृणित कर्म करते हैं यह उन्हें ज्ञात नहीं था। भारत में धर्म के नाम से इस प्रकार के कितने भ्रष्टाचारी सम्प्रदायों की सृष्टि हुई है उनकी सीमा नहीं है। उन लोगों ने धर्म को कलङ्कित और समाज को कलुषित किया है। धर्म के नाम से भीषण अधर्म का आचरण करके उन लोगों ने निरक्षर अपठित जनसाधारण को विपथगामी किया है। **

स्वामीजी के शुभागमन से ठाकुर साहब अत्यन्त आनन्दित हुए। राज्य

के प्रसिद्ध पंडितों की सभा बुलाई गयी। स्वामीजी ने वेदान्त धर्म की व्याख्या की। उनका व्याख्यान सुन कर सभी ने एकवाक्य से उन्हें सनातन वैदिक धर्म के श्रेष्ठ व्याख्याता मानकर घोषणा कर दी। अब स्वामीजी लिमड़ी छोड़ कर जूनागढ़ की ओर रवाना हुए। उनकी जीवनकथा चारों ओर फैल गयी, सर्वत्र ही अनेक लोग उनका स्वागत करते थे। जूनागढ़ के रास्ते भावनगर और सिहोर आदि स्थान में भी वे गये और सभी जगह राज-अतिथि के रूप में उनका स्वागत हुआ।

तेरह

जूनागढ़ के दीवान हरिदास बिहारीदास बड़ी श्रद्धा के साथ स्वामीजी को अपने मकान में ले आये। स्वामीजी के साथ बातचीत करके दीवान बहादुर उनके व्यक्तित्व के प्रति इतने अधिक श्रद्धासम्पन्न और आकृष्ट हुए कि प्रतिदिन उच्च राजकर्मचारियों, सभापण्डितों और अन्यान्य विशिष्ट लोगों को अपने मकान में बुला कर उन्होंने स्वामीजी की धर्मालोचना का प्रबन्ध कर दिया। उनके मुँह से वैदिक धर्म की मौलिक व्याख्या सुनकर सभी मुग्ध हुए। स्वामीजी भी उस मौके से जनसाधारण की उन्नति पर ही भारत का भविष्य पूर्णतया निर्भर है, इस सम्बन्ध में सबके अन्तर में गहरी छाप डाल देते थे।

उसके अनन्तर स्वामीजी हिन्दू मुसलमान बौद्ध और जैन सम्प्रदायों के महापवित्र तीर्थ गिरनार पर्वत पर पहुँचे। प्राचीन स्थापत्य शिल्प तथा धर्मभाव के अतिरिक्त उस स्थान की प्राकृतिक शोभा और गाम्भीर्य ने उनके मन पर विशेष प्रभाव डाल दिया। वे ऋषि दत्तात्रेय का पदचिह्न देखने के लिए सर्वोच्च शिखर (३३०० फुट) पर चढ़ गये। आनन्द और शान्ति से उनका अन्तर भर गया। भारत के अतीत गौरव की बात का स्मरण कर उनका

अन्तःकरण विशेष रूप से प्रकाशित हुआ।* वे एक निर्जन गुफा में कुछ दिन ध्यानमग्न रहे। किन्तु उस गुफा में भी भारत के दुःख दारिद्र्य के सोचने की चिन्ता उनके अन्तर को मथित कर रही थी। वे ध्यानमग्न होकर अधिक दिन नहीं रह सके।···जूनागढ़ लौट आये और अनेक स्थानों में प्रचार करते हुए पोरबन्दर में उपस्थित हुए।

पोरबन्दर या सुदामापुरी में भी वे राजा के अतिथि हुए। उनके प्रधान मन्त्री ने पहले ही स्वामीजी के सम्बन्ध में विशेष रूप से सुना था।

पोरबन्दर में स्वामीजी कई मास तक रहे।† वहाँ के दीवान शंकर पाण्डुरंग अद्वितीय विद्वान थे। उस समय वे वेद का अनुवाद कर रहे थे। स्वामीजी उन्हें अनुवाद के काम में सहायता देते थे। और उनसे उन्होंने पातंजलि महाभाष्य का अध्ययन समाप्त किया। पंडितजी उत्साह के साथ उन्हें फ्रांसीसी भाषा भी सिखाने लगे। थोड़े ही दिनों में उस भाषा का यथेष्ट अधिकार प्राप्त करते देखकर पण्डित जी बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'स्वामीजी भविष्य में इस भाषा का ज्ञान आप के कार्य में विशेष सहायक होगा।"

---

* उनके अन्तर में भारत के भविष्य के विषय में जो कल्पना थी उसके सम्बन्ध में उन्होंने कहा था—"किन्तु आगामी भारत प्राचीन भारत से भी उन्नत होगा। जिस दिन श्रीरामकृष्ण जन्मे थे उस दिन से ही वर्तमान भारत में सत्ययुग का आविर्भाव हुआ। तुम्हीं लोग उस सत्ययुग का उद्बोधन करोगे—ऐसा विश्वास मन में रखकर कार्य में अवतीर्ण हो जाओ।"

† परिव्राजक जीवन में भी स्वामीजी का प्रधान कार्य था वाणी-प्रचार। उनकी एक चिट्ठी में लिखा था—"मुझे जगत को कुछ बताना है। उसे मैं अपने भाव से बताऊँगा। मैं अपने वक्तव्यों को हिन्दू के साँचे में नहीं ढालूँगा, ईसाई साँचे में भी नहीं या अन्य किसी साँचे में भी नहीं। मैं केवल अपने साँचे में ढालूँगा। मुक्ति ही मेरा धर्म है।"—श्रीरामकृष्ण का जीवन तथा उनकी वाणी ही स्वामीजी की वाणी थी।

वेद के अनुवाद के समय उनकी अपूर्व बुद्धि और प्रतिभा का परिचय पाकर पंडितजी ने कहा था—"स्वामीजी आपकी प्रतिभा और शक्ति को मर्यादा देने योग्य मनुष्य इस देश में विरल है। मुझे ऐसा लगता है कि वर्तमान में भारत आप का योग्य क्षेत्र नहीं है। आप पाश्चात्य देशों में जाइए और उस देश में आग लगा आइए, तब देखिएगा इस देश के लोग आप की हर बात पर उठेंगे और बैठेंगे। आप आँधी की तरह पाश्चात्य देशों पर आक्रमण कीजिये और उन देशों को विजय कर लौट आइए।"

स्वामीजी कुछ क्षणों तक मौन रह कर बोले—"पण्डितजी एकदिन प्रभास के समुद्रतट पर खड़े होकर क्षितिज के ऊपर दृष्टि रखकर मैं तरङ्गमाला का अनुपम खेल देख रहा था। एकायक मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि इस विक्षुब्ध तरङ्गमाला का अतिक्रमण कर मुझे किसी सुदूर देश में जाना होगा; परन्तु वह कैसे सम्भव होगा मैं समझ नहीं सका।" समय पर पंडितजी की भविष्यवाणी वास्तव रूप में परिणत हुई थी।...

उस समय भारत की उन्नति के लिए उनका मन कहाँ तक बेचैन हो रहा था उसे कोई भी राजपुरुष या शिक्षित व्यक्ति उनसे थोड़ी देर वार्तालाप करके ही समझ सकते थे। उनके हृदय के तार में सदा ही एक ही सुर बज रहा था—भारत का कल्याण।

आर्य सभ्यता के पुनरुत्थान की गम्भीर चिन्ता उनके अन्तर को विक्षुब्ध करती थी। पाश्चात्य सभ्यता के मोहपंक से भारत के उद्धार साधन की चिन्ता उन्हें इतनी अधिक व्यथित कर रही थी कि करुणा के आवेग से समय-समय पर वे रो पड़ते थे। वे अन्तर के अन्तस्तल में अनुभव करते थे कि भारत संसार की धर्मजननी है तथा आध्यात्मिक भाव और मानव सभ्यता की आदि जन्मभूमि भी है। भारत को जगत्-सभा के श्रेष्ठ आसन पर बिठाने के लिए उनका हृदय बेचैन था। पाश्चात्य देशों में जाने के बाद भारत के महत्त्व की उन्होंने और भी गम्भीर भाव से उपलब्धि की थी। न्यूयार्क से (जनवरी २४, १८६५) को उन्होंने एक चिट्ठी में लिखा था—"सैकड़ों

अपूर्णताओं के रहते हुए भी भारत भूमि ही एकमात्र स्थान है जहाँ आत्मा मुक्ति का तथा भगवान का संधान पाता है। पाश्चात्यों का बाहरी आडम्बर सर्वथा अन्तःसारशून्य और आत्मा का बन्धनस्वरूप है।" पाश्चात्य देशों के ऐश्वर्यों के भीतर मानो स्वामीजी का निःश्वास बन्द हो जाता था। उन्होंने लिखा है—"यह कौपीन, मुण्डित मस्तक, वृक्ष के नीचे शयन तथा भिक्षान्न भोजन—ये सब ही अब मेरी तीव्र आकांक्षा के विषय हैं।"....

भारत की महिमा ने स्वामीजी के अन्तर को परिपूर्ण कर रखा था। इस कारण भारत भूमि के महत्त्व के सम्बन्ध में उन्होंने अनेक स्थानों में कहा था—"हमारी पवित्र मातृभूमि ही धर्म और दर्शन का देश है, धर्मवीरों का जन्मस्थान तथा त्याग का क्षेत्र है। केवल इसी देश में सुदूर अतीत काल से वर्तमानकाल तक मानव जीवन के महत्तम आदर्श विद्यमान हैं। तत्त्वदृष्टि, भगवत्परायणता और नीति विज्ञान की प्रवृत्ति, यह भारत माधुर्य, कोमलता और मानवप्रीति की खान है। ये सब अभी भी वर्तमान हैं और समस्त संसार के अनुभव के बल पर मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि इन विषयों में भारत अभी भी संसार की सभी उन्नत जातियों का अग्रणी है। ऐसे ही देश के हम सन्तान हैं। जब यूनान का जन्म ही नहीं हुआ था, रोम की बात किसी ने सोची भी नहीं थी तथा वर्तमान यूरोप निवासियों के पूर्व पुरुष विचित्र अंगरागों से रंजित अरण्यवासी मात्र थे। उस सुदूर प्रागैतिहासिक युग में भी भारत अपनी संस्कृति की साधना में समुन्नत था। उससे भी पहले के युगों में, जिसका कुहरा दूर करने में जनश्रुति भी सकुचित होती है, उस समय से वर्तमान काल तक भारत से अनेक ऊँचे भाव और शान्ति तथा शुभेच्छा की वाणियाँ संसार में फैलती आ रही हैं।

संसार के इतिहास की आलोचना करो—कहीं भी किसी सुमहान् आदर्श का पता मिलते ही दिखाई पड़ेगा कि उसका जन्मस्थान भारतवर्ष ही है। यथार्थ में ही हमारी मातृभूमि के निकट जगत् का ऋण असीम है। सहस्रों वर्षों की विपत्तियों तथा विदेशी विधर्मियों के आक्रमणों के होते हुए भी

हिन्दू जाति मर क्यों नहीं गयी ? ऐसी भी धारणा रखनी होगी कि विश्व सभ्यता के भंडार में और भी कुछ देने के लिए ही भारत अभी भी जीवित है।

मनुष्यों को नवीन जीवन से सजीवित करना तथा पशुस्तर के मनुष्यों को देव मानव में परिणत करना—इन दो महान् जीवन व्रतों का उद्यापन करने के लिए हमारी यह देश माता साम्राज्ञी की तरह धीर पदक्षेप से अग्रसर होती चल रही है। स्वर्ग या मर्त्य में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो उनकी गति को रोक सके। "मानव जाति को आध्यात्मिक भाव से प्रबुद्ध करना ही भारत का मूल जीवन व्रत, उनके अस्तित्व की परम प्रतिज्ञा तथा चरम सार्थकता है। यथार्थ में जब तक भारत की आध्यात्मिक दृष्टि भंगी कायम रहेगी और जब तक भारत के निवासी उनके प्राणस्वरूप धर्म को अपनाये रहेंगे तब तक भारतीय जाति का विनाश नहीं होगा।"

उस समय वे अपने हृदय में एक प्रचंड विस्फोटक शक्ति का अनुभव करते थे। श्रीरामकृष्ण देव की भविष्य वाणी का उन्हें स्मरण होता था।*

पोरबन्दर से द्वारका। श्रीकृष्ण का लीलास्थल द्वारका आज समुद्र के भीतर है। शंकराचार्य प्रतिष्ठित शारदा मठ के एक निर्जन कक्ष में आश्रय लेकर स्वामी जी अधिकांश समय ध्यानस्थ रहते थे। एकदिन समुद्र के तीर पर बैठकर ध्यान करते हुए भविष्य भारत का उज्ज्वल चित्र उनके मानस पट पर उदित हुआ। आशा और आनन्द से उनका चित्त भर गया।

इसके बाद माडवी। उन्होंने नारायण सरोवर, आशापुरी तथा कोटेश्वर आदि तीर्थ स्थानों का दर्शन किया। इसके बाद पालिताना में अनेक जैन

* पोरबन्दर में उनके गुरुभाई परम अन्तरंग स्वामी त्रिगुणातीत के साथ एकाएक भेंट होते ही उन्होंने कहा था—"भाई शारदा, श्रीठाकुर मेरे सम्बन्ध में जो बातें कहते थे, इतने दिनों के बाद अब उनकी सत्यता की उपलब्धि हो रही है। ऐसा लगता है, मेरे भीतर जो शक्ति है उससे सारे संसार को उलट पलट दे सकता हूँ।"

मन्दिरों के दर्शन से धर्मभूमि भारत की महिमा में वे विभोर हो उठे। पालिताना में शत्रुंजय पर्वत शिखर के प्राकृतिक सौन्दर्य ने उनको विह्वल कर दिया। इसके बाद बड़ोदा होकर वे आये खाँडोआ में। भ्रमण करते हुए मानो ईश्वर की इच्छा से वकील श्रीहरिदास चट्टोपाध्याय के मकान के सामने उपस्थित हुए। हरिदास बाबू ने कचहरी से लौटकर देखा कि उनके मकान के सामने एक संन्यासी खड़े हैं। मामूली बातचीत से वे समझ गये कि यह साधारण संन्यासी नहीं है। आकृष्ट होकर उन्होंने अपने मकान में रहने के लिए उनसे आग्रह किया।

स्वामीजी खाँडोआ में प्रायः तीन सप्ताह थे। सारे नगर के विशिष्ट व्यक्तियों का समावेश हरिदास बाबू के मकान में होता था। उनके मुख से उद्दीपनामय धर्मप्रसंग, शास्त्र की सरल व्याख्या और मधुर भजन संगीत सुनकर सभी विशेष रूप से आनन्दित होते थे। शिकागो धर्ममहासभा का विषय सुनकर खाँडोआ में ही उनके मन में उस सम्मेलन में योगदान करने की इच्छा उत्पन्न हुई। हरिदास बाबू के प्रश्न पर उन्होंने कहा था कि—"यदि कोई जाने आने का खर्च दे तो मुझे जाने में कोई आपत्ति नहीं है।"

खाँडोआ निवासियों का आदर, आतिथ्य और सहृदयता की उपेक्षा करके वे बम्बई की ओर चल पड़े। वे रामेश्वर के पथ में अग्रसर होते चले। हरिदास बाबू ने अपने भाई के नाम परिचय पत्र देकर बम्बई का एक टिकट खरीद दिया।

* * *

१८९२ ई० के जुलाई मास के अन्तिम भाग में स्वामीजी बम्बई पहुँचे। हरिदास बाबू के भाई की सहायता से प्रसिद्ध बैरिस्टर छबिलदास के मकान में ठहर गये। अप्रत्याशित भाव से एकदिन बम्बई में गुरुभाई स्वामी अभेदानन्द से उनकी भेंट हो गई। अनेक बातों के अनन्तर स्वामीजी ने कहा—"देखो काली, मेरे भीतर इतनी शक्ति उत्पन्न हो गई है कि डर होता है कि मैं फट न जाऊँ।"

अभेदानन्द विस्मित हुए। स्वामीजी के हृदय की उत्कंठा ने उनको भी स्पर्श किया था। उन्होंने बाद में कहा था, "उस समय स्वामीजी के अन्तर में मानो अग्नि जल रही थी।" भारत के प्राचीन आध्यात्मिक भाव की पुनः प्रतिष्ठा की चिन्ता ने उनके समस्त हृदय पर अधिकार कर लिया था। उन्हें देखते ही मालूम होता था मानो वे एक प्रबल झंझावात हैं।"

छबिलदास के मकान में स्वामीजी यथेष्ट वेदान्त-चर्चा करते थे। अनेक गण्यमान्य और शिक्षित लोग उनके मुख से वेदान्त-व्याख्या सुनकर मुग्ध हो जाते थे।* वे कुछ सप्ताहों तक ही बम्बई में रहे। उस अल्प समय में ही उनकी ख्याति चारों ओर फैल गई। इसके अनन्तर स्वामीजी पूना पहुँचे। उस समय उनका शरीर ठीक नहीं था। वे गाड़ी के दूसरे दर्जे में जा रहे थे। उस कमरे में और भी तीन मराठी सज्जन थे। एक घुमक्कड़ सन्यासी को दूसरे दर्जे में जाते देखकर वे चिढ़ गये और आपस में सन्यासी सम्प्रदाय की अंग्रेजी में कटु आलोचना करने लगे। उन तीनों सहयात्रियों में एक थे लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक। यात्रियों का ख्याल था कि सन्यासी अंग्रेजी नहीं जानते। इस कारण वे सन्यासियों की चर्चा करके मन में प्रसन्न हो रहे थे। आत्मसुखाभिलाषी इन बेकार सन्यासियों का दल ही भारतवर्ष के अधःपतन का कारण है। इन्हें इस देश से निकाल दिये बिना देश की मुक्ति नहीं होगी; इस विषय में केवल तिलक जी ने भिन्न मत प्रगट किया था।

---

* स्वामीजी ने प्राच्य और पाश्चात्य देशों में जो वेदान्त का प्रचार किया था उसका संक्षिप्त परिचय उनके एक पत्र से मिलता है। ६ मई सन् १८९५ ई० को आलासिंगा को लिखा है: "सभी धर्म वेदान्त में निहित हैं अर्थात् वेदान्त दर्शन के द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत ये तीनों स्तरों या भूमिका के भीतर हैं तथा एक के बाद दूसरा आता है। ये तीनों मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति की तीन भूमिकायें हैं। इनके हर एक का ही प्रयोजन है। यही धर्म की बात है। भारत की विभिन्न जातियों के आचार, व्यवहार

स्वामीजी शुरुआत सुनते जा रहे थे किन्तु जब समालोचना सीमा तक पहुँच गई, तो वे चुप नहीं रह सके, आलोचना में शामिल हो गये। उन्होंने कहा—"हर एक युग में संन्यासी लोग ही तो समाज की आध्यात्मिक भावधारा को सबल और अक्षुण्ण रखते आये हैं। बुद्ध कौन थे? शंकर कौन थे? उनके आध्यात्मिक अवदान को भारत अस्वीकार नहीं कर सकता।" थोड़ी ही देर में उनके मुख से गम्भीर दार्शनिक तत्त्व, धर्म के क्रम विकास और देश विदेश के इतिहास के सम्बन्ध में अनेक बातें सुनकर सभी लोग स्तम्भित हो गये। स्वामीजी की विशुद्ध अँग्रेजी और अद्भुत प्रतिभा के सामने

और धर्ममतों के भीतर प्रयोग के फलस्वरूप वेदान्त ने जो रूप लिया है वही है यथार्थ हिन्दू-धर्म। (स्वामीजी हिन्दू धर्म शब्द के बदले वेदान्त-धर्म शब्द का व्यवहार करने के लिए कहते थे)। वेदान्त धर्म का प्रथम स्तर अर्थात् द्वैतवाद यूरोप की जातियों के भावों के भीतर ईसाई धर्म के रूप में परिणत हो गया और सेमिटिक जातियों के भावों के भीतर से मुसलमान धर्म के रूप में परिणत हो गया है। अद्वैतवाद योगानुभूति के रूप में बौद्ध धर्म के रूप में बदल गया है इत्यादि। अब धर्म कहने से वेदान्त ही समझा जाता है। विभिन्न जातियों के विभिन्न प्रयोजनों से पारिपार्श्विक तथा अन्यान्य अवस्थाओं के अनुसार उसका प्रयोग विभिन्न रूप में अवश्य ही होगा। तुम लोग देखोगे कि मूल दार्शनिक तत्त्व यद्यपि एक है, तथापि शाक्त शैव आदि साम्प्रदायिकों ने अपने अपने विशेष धर्ममत तथा अनुष्ठानपद्धति के भीतर उसे रूप दिया है।" अब तक संसार में जितने धर्मों का अभ्युदय हुआ है सभी वेदान्त धर्म मूलक या वेदान्त धर्म की विभिन्न शाखायें हैं। उन शाखा धर्मों का समष्टिरूप ही वेदान्त धर्म है। भविष्य में भी कितने ही धर्मों का अभ्युदय क्यों न हो, सभी वेदान्त धर्ममूलक होंगे। द्वैत, विशिष्टाद्वैत, अद्वैत इन तीन मतों का अतिक्रमण कर कोई भी धर्ममत उत्पन्न नहीं हो सकता। श्रीरामकृष्ण उसी वेदान्तधर्म की मूर्ति हैं। वे सर्वभावमय तथा सर्वधर्म स्वरूप हैं।

श्रोताओं के सिर अपने आप झुक गये। लोकमान्य तिलक स्वामीजी के गम्भीर पाण्डित्य से विशेष मुग्ध हो गये। पूना स्टेशन में उतरते समय उन्होंने स्वामी जी को अपने मकान में चलने के लिए आमन्त्रण दिया। इस समय स्वामी जी तिलक महोदय के साथ पूना में कुछ दिन रहे। उनके पाण्डित्य, गम्भीर बुद्धिशक्ति, स्वदेश प्रेम गरीब दुखियों के प्रति समवेदना ने तिलक के मन में गहरा प्रभाव डाल दिया। देश माता के मुक्ति-साधन का नया मन्त्र उन्होंने स्वामीजी के मुख से सुना।

उस समय लिमडी के राजा महाबलेश्वर में हैं जानकर स्वामीजी उनसे मिलने गये। अप्रत्याशित रूप से गुरुदेव को पाकर राजा विशेष आनन्दित हुए। स्वामीजी को अपने राज्य में ले जाने के लिए इच्छा प्रकट करते ही स्वामीजी ने उनसे कहा—'एक महाशक्ति मुझे परिचालित कर रही है मेरे गुरुदेव ने मेरे ऊपर जिस महान् कार्य का भार सौंपा है उसकी परिसमाप्ति न होने तक मुझे विश्राम लेने का अवकाश नहीं है। जीवन में यदि कभी विश्राम या अवकाश मिले तो उस समय आप के साथ निवास करूँगा।" स्वामीजी ने अपने जीवन में वैसा विश्राम कभी नहीं पाया। जीवन के अन्तिम दिन तक उन्हें अक्लान्त कर्म करते रहना पड़ा था।

* * *

स्वामीजी क्रमशः कोल्हापुर मारमागोवा और बेलगाँव होकर मैसोर राज्य के अन्तर्गत बंगलोर पहुँचे। गुप्त रूप से कुछ दिन वहाँ रहे किन्तु थोड़े ही दिनों के भीतर वे अनेक व्यक्तियों की दृष्टि में पड़ गये। मैसोर के दीवान सर के० शेषाद्री आयर स्वामीजी के साथ वार्तालाप करके आश्चर्य चकित हुए। कौन है यह सौम्य? सारे शास्त्र इनकी जिह्वा पर, प्रतिभामंडित मुख मण्डल, ज्योतिर्मय विशाल लोचन मानो कोई देवलोक-निवासी भूमण्डल पर अवतरित हुए हैं। उन्होंने स्वामीजी को अपने महल में आदर के साथ रखा। उस समय के भीतर मैसोर के अनेक शिक्षित और उच्चपदस्थ व्यक्ति उस सुन्दर यति को ईश्वरीय शक्ति के प्रति आकृष्ट हुए। क्रमशः उनकी बात महाराजा

श्रीचामराजेन्द्र वाडियार के कानों में पहुँची। उन्होंने स्वामीजी के साथ परिचित होने के लिए विशेष आग्रह प्रकट किया।

शेषाद्री आयर उन्हें लेकर राजदरबार में उपस्थित हुए। स्वामीजी को देखते ही महाराजा विशेष रूप से मोहित हो गये। परिचय घनिष्ट होने पर उन्होंने स्वामीजी को राज्य अतिथि रूप से अपने महल में रखने की इच्छा प्रकट की और उनके रहने के लिए महल का एक अंश छोड़ दिया। स्वामीजी ने पूछा—"इतने कमरों से क्या होगा? नूमिशय्या बिछाने योग्य थोड़ा सा स्थान ही पर्याप्त है।"

कुछ दिनों के भीतर ही घनिष्टता बढ़ गयी। महाराजा ने ऐसे त्याग, पवित्रता, प्रेम और ज्ञान का अपूर्व समावेश और कहीं नहीं देखा था।

एकदिन राजमहल में पण्डित-मण्डली की एक बड़ी सभा बुलायी गयी। प्रधान मन्त्री सभापति रहे। पण्डितों ने एक एक करके धर्म और दर्शन के सम्बन्ध में व्याख्यान दिये। स्वामीजी भी अनुरोध करने पर कुछ कहने के लिए उठ खड़े हुए। उनका तेज पुञ्ज चेहरा देखकर सभी लोग स्तम्भित हो गये। उन्होंने वेदान्त की जटिलता की ओर न जाकर अन्यान्य दार्शनिक मतों के साथ वेदान्त का समन्वय तथा व्यक्तिगत जीवन में वेदान्त की उपयोगिता और प्रयोग अत्यन्त सरलता के साथ सबको समझा दिया। उनके विचार की मौलिकता, दृष्टि की प्रखरता तथा प्रकाशन-शक्ति सबके निकट उच्च प्रशंसा का विषय हुई।

स्वामीजी का अद्भुत अपरिग्रह देखकर लोग अभिभूत हो गये। एकदिन दीवान साहब ने अपने सिक्रेटरी से कहा—"स्वामीजी को लेकर बाजार जाओ। जो-जो चीजें वे पसन्द करें, कितना ही दाम क्यों न लगे, उन्हें खरीद दो।" स्वामीजी बाजार गये। बालक की तरह घूम घूम कर सब कुछ देखते रहे, परन्तु कोई भी चीज उन्होंने नहीं ली। सेक्रेटरी के कुछ लेने के आग्रह प्रकट करने पर उन्होंने कहा "अच्छा यदि आप नहीं छोड़ते तो एक सिगरेट खरीद दीजिये।"

महाराजा दिन प्रति दिन स्वामीजी के प्रति बहुत श्रद्धासम्पन्न हो गये। एकदिन उन्होंने दीवान साहब के साथ स्वामीजी को अपने कमरे में बुलाकर आदर के साथ बिठाया और कहा—"यतिवर, मैं आप की सेवा करना चाहता हूँ। यह अधिकार देकर मुझे धन्य कीजिये।"

स्वामीजी अपना उद्देश्य प्रकट करके बोले—"देश का काम ही मेरा काम है। दरिद्रों की सेवा ही मेरी सेवा है। आप देश की सेवा कीजिए। देश को उन्नत और समृद्ध कीजिये। उसी से मैं खुश हूँगा। आप राजा हैं साधारण जनों की उन्नति करने की शक्ति आप में है। प्रजा की दरिद्रता और अज्ञानता मिटा दीजिये। सम्पत्ति और शिक्षा दीक्षा में देशवासियों को उन्नत कीजिये...।" उसके अनन्तर पुनः स्वामीजी बोले—"मैं समझता हूँ कि हमारा आध्यात्मिक भाव—वेदान्त धर्म पाश्चात्यों को सिखाना होगा और उसके बदले उनसे कृषि, शिल्प, विज्ञान तथा इहलौकिक उन्नति के लिए जो कुछ आवश्यक है सब सीखना होगा। इस तरह प्राच्य और पाश्चात्य सभ्यता के सम्मेलन से नयी सभ्यता का उद्भव होगा। उसी से संसार का कल्याण होगा। श्री श्रीकृष्ण के जीवनादर्श से प्राच्य और प्रतीच्य सभ्यता की मिलनभूमि तैयार करने के लिए मैंने अपना जीवन सौंप दिया है।"

स्वामीजी के हृदय के आवेग से प्राच्य और प्रतीच्य सभ्यताओं और भावों के आदान प्रदान करने के लिए पाश्चात्य देशों में वेदान्त का वाणी वहन कर ले जाने की इच्छा प्रकट करते ही ॐ महाराजा ने आनन्द से सारा खर्च देने का प्रस्ताव किया। किन्तु स्वामीजी ने कहा—"अभी समय नहीं आया है। श्रीभगवान के आदेश के लिए मुझे प्रतीक्षा करनी होगी।"

ॐ १८६२ ई० के सितम्बर २० तारीख के एक पत्र में स्वामीजी के उस समय के विचार का कुछ आभास मिलता है। "...अब आप समझ रहते हैं कि हमें विदेश जाना ही पड़ेगा। हमें देखना होगा कि दूसरे देशों का समाज-यन्त्र कैसे परिचालित होता है और यदि हमें फिर से एक जाति के

मैसोर छोड़ने का समय समीप आ गया। स्वामीजी ने रामेश्वर दर्शन में जाने की इच्छा प्रकट की। राजा साहब बहुत दुःखी होकर बोले—"नहीं स्वामीजी, आप को इस समय किसी तरह मैं नहीं छोड़ूँगा। आप और कुछ दिन रहिये।"

किन्तु स्वामीजी का सकल्प दृढ़ देखकर राजा साहब ने विनय से प्रार्थना की—"आप का कुछ स्मारक चिह्न रखना चाहता हूँ आप आज्ञा दें तो आप का कण्ठस्वर रेकार्ड कर रखूँ, जिससे आप का मनोन्मादी स्वर हमारे कानों में गूँजता रहे।"

स्वामीजी राजी हो गये। रेकार्ड ले लिया गया। यह रेकार्ड मैसोर राजमहल में दीर्घ काल तक रखा था।

राजा साहब स्वामीजी को गुरु के समान श्रद्धा करते थे। एकदिन उन्होंने कहा—"स्वामीजी आप के चरणकमलों की मैं पूजा करूँगा।" किन्तु स्वामीजी किसी तरह भी राजी नहीं हुए। अनेक मूल्यवान् उपहार देना चाहा, परन्तु उन्होंने कुछ भी नहीं लिया। स्वामीजी ने कहा—"मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि परिव्राजक की अवस्था में धन का स्पर्श नहीं करूँगा। कुछ भी सचय नहीं रखूँगा। मैं साधारण सन्यासी हूँ। उपहार लेकर क्या करूँगा, कहाँ रखूँगा!"

परन्तु राजा साहब ने नहीं छोड़ा तब स्वामीजी ने महाराजा के सन्तोष के लिए कहा—"अच्छा तो धातु-सम्पर्क-रहित एक मामूली हुक्का दीजिये।" महाराजा साहब ने रोज उड का बना एक हुक्का मँगवा कर उपहार में उन्हें दिया।

रूप में परिणत होना हो तो दूसरा जातियों के विचार के साथ हमें अबाध सम्पर्क रखना पड़ेगा। सबसे ऊपर हमें दरिद्रों के प्रति अत्याचार बन्द करना पड़ेगा। हे प्रभु! कब एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को भाई के समान देखेगा?"

जाने के पहले प्रधान मन्त्री ने स्वामीजी के हाथ में नोट का एक बंडल खोस दिया। परन्तु स्वामीजी ने स्वीकार नहीं किया। अन्त में उन्होंने कहा—"कोचीन का एक टिकट खरीद दीजिये। दो चार दिन वहाँ रह सकता हूँ।"

एक दूसरी श्रेणी का टिकट और कोचीन के तात्कालिक दीवान श्रीशंकरय्यर के नाम से एक परिचयपत्र प्रधान मन्त्री ने उन्हें दिया।

चौदह

१८९२ ई० के दिसम्बर मास में कोचीन होकर स्वामीजी त्रिवाकुर राज्य की राजधानी 'त्रिवेन्द्रम्' आये। उस स्थान के अपूर्व प्राकृतिक सौन्दर्य ने उन्हें विशेष रूप से आकृष्ट किया। यहाँ भी महाराजा तथा दीवान आदि अनेक विशिष्ट व्यक्ति उनके प्रति अत्यन्त अनुरक्त हुए थे। भारत की जातीय समस्या ही उनकी आलोचना का प्रधान विषय था। थोड़े ही दिनों में यहाँ के शिक्षित तथा विचारशील व्यक्तियों के ऊपर उनकी बातों का विशेष प्रभाव पड़ा।

इस प्रसंग में त्रिवाकुर के एस० के० नायर ने लिखा है "स्वामीजी के साथ जो लोग घनिष्ठ भाव से मिले हैं वे उनकी अलौकिक शक्ति से आकृष्ट न होकर नहीं रह सके। एकसाथ अनेक व्यक्तियों के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने की उनमें विशेष शक्ति थी। स्पेन्सर, सेक्सपियर, कालिदास, डारविन का विकासवाद, यहूदी जाति का इतिहास, आर्य सभ्यता की उत्पत्ति और क्रमविकास या वेद वेदान्त, मुसलमान या ईसाई धर्मशास्त्र किसी भी विषय में उन्हें पीछे हटते नहीं देखा गया। कोई भी प्रश्न क्यों न हो उसका ठीक उत्तर मानों उनके मुख में लगा रहता था। उनके चेहरे पर सरलता और

महत्ता स्पष्ट लिखी हुई थी। निर्मल हृदय, तपस्यापूत जीवन, उदार बुद्धि, उन्मुक्त चित्त, धर्मकीर्ण दृष्टि तथा सब प्राणियों के प्रति सहानुभूति आदि उनके चरित्र की विशेषताएँ था।"

स्वामीजी केवल नौ दिन त्रिवाकुर में रहे। उसके अनन्तर वे रामेश्वर की ओर चल पड़े। रास्ते में मदुरा नगर में रामनादराज भास्कर सेतुपति से भेंट हुई। थोड़े ही दिनों में यह उच्च शिक्षित राजा स्वामीजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धासम्पन्न होकर उनके शिष्य हो गये। स्वामीजी राजसम्मान प्राप्त करने के लिए वहाँ नहीं गये थे। उन्होंने वर्तमान भारत की समस्याओं तथा उनके समाधान की ओर राजा का दृष्टि आकृष्ट की। जनसाधारण की उन्नति का भार उन्होंने राजा पर सौंपा। रामनाद के राजा ने स्वामीजी की शक्ति के विषय में इतना अधिक विश्वास कर लिया कि उन्हें शिकागो धर्ममहासभा में योगदान करने के लिए प्रार्थना करके धन की सहायता देने का भी वचन दिया।

यह सब भविष्य के गर्भ में सचित रह गया। वे रामेश्वर की ओर अग्रसर होते चले। रामायण में लिखित श्रीरामचन्द्र की पुण्य-स्मृति मिश्रित रामेश्वर तीर्थ का दर्शन कर वह विशेष आनन्दित हुए। विशाल मन्दिर, यात्रियों का कोलाहल, घण्टा घड़ियाल से आडम्बर से पूजा अर्चना, सभी उन्होंने देखा किन्तु उनकी चिन्ता में कमी न आयी। भारत की उन्नति, भारतवासियों की सेवा उनके जीवन का ध्येय था। अराति का भार ढोते हुए वे भारत के अन्तिम प्रान्त कन्याकुमारी के मन्दिर की ओर चले। निष्किञ्चन परिव्राजक के रूप में वे कन्याकुमारी में उपस्थित हुए। देवीदर्शन से उनका अन्तर पुलकित हो उठा, मानो माँ प्रसन्न हुई हैं, उन्होंने भूमि पर माथा टेककर देवी के चरणों में प्रणाम किया। एक अनिर्वचनीय आनन्द से उनका चित्त भर गया। मानो माँ ने उनके अन्तर के सारे भार को हल्का कर दिया।

तुषारकिरीटी हिमालय से वे भारत की मिट्टी का स्पर्श करते हुए सबसे दक्षिण प्रान्त में उतर आये। अखण्ड भारत में सनातन वैदिक धर्म की जो विचारधारा चारों ओर लुप्तप्राय हो गयी थी उन्होंने उसे समझ लिया।

अनेक देवदेवियों तथा मन्दिरों का दर्शन किया, अनेक साधुमहात्माओं से परिचय हुआ, राजमहल और पर्णकुटीर में भी रहे और अनेक स्तुति, निन्दा, तिरस्कार सहे, भूख प्यास से जर्जरित होकर वृक्ष के नीचे पड़े रहे—इन सभी को उन्होंने निर्विकार भाव से अपना लिया था। सर्वत्र ही उन्होंने अखण्ड भारत के प्राणस्पन्दन का अनुभव किया और सर्वत्र ही आर्य ऋषियों की शाश्वत वाणी सुनी। सबसे ऊपर कोटि कोटि दरिद्र, पददलित, जाति के मेरु-दण्ड रूप साधारण जनता की भीषण, असहाय अवस्था का प्रत्यक्ष कर उनका हृदय दया से द्रवित हो गया। मानो किसी ऋषि ने उनसे कहा—'समाज जीवन में सभी का समान अधिकार है। गुणानुसार वर्णविभाग के स्थान में कृत्रिम जन्मगत जातिभेद उत्पन्न हो गया है, जिससे इस जाति का पतन होगा। धर्म के उच्च तत्व की सहायता से उसे दूर करना होगा।'

अन्तर में सैकड़ों चिन्ताओं को लेकर स्वामीजी देवीमन्दिर के चबूतरे के एक प्रस्तरखण्ड के ऊपर बैठकर गम्भीर ध्यान में मग्न हो गये *। उनके ध्यानावगाही चित्त में अतीत भारत के उत्थान पतन तथा भविष्य भारत के सात आठ सौ वर्ष के उज्ज्वल चित्र उद्भासित हुए। उन्होंने नया प्रकाश देखा, पथ का सन्धान पाया, अन्तर में श्रीरामकृष्ण का कण्ठस्वर सुना।

* मतान्तर में—देवीदर्शन के बाद वे मन्दिर से निकल कर समुद्र में थोड़ी दूर पर उठे हुए एक पत्थर की चट्टान देखकर तैरते हुए वहाँ पहुँचे और भारत के अन्तिम प्रस्तर खण्ड के ऊपर बैठकर ध्यानमग्न हो गये। बाद में पाश्चात्य देश से उन्होंने गुरुभाइयों को लिखा था 'कुमारिका अन्तरीप में माता कुमारी के मन्दिर में भारत के अन्तिम प्रस्तर खण्ड के ऊपर बैठकर मैं सोचने लगा था—हम इतने सन्यासी भारत में घूम रहे हैं तथा लोगों को दर्शन (Metaphysics) की शिक्षा दे रहे हैं—यह पागलपन है। खालीपेट धर्म नहीं होता—गुरुदेव कहते न थे? यह जो गरीब लोग पशु की तरह जीवन बिता रहे हैं, उसका कारण मूर्खता ही है " इत्यादि।

लाखों दरिद्र भारतवासियों के प्रतिनिधि रूप में उन्होंने पाश्चात्य देशों में जाने का संकल्प किया। वहाँ जाकर विश्वमानवता तथा विश्वभ्रातृत्व की वाणी का प्रचार करेंगे। निद्रित मानवात्मा को सम्बुद्ध करेंगे।

भारतमाता के सेवक रूप से शान्तिस्नात स्वामीजी ध्यान से उठे। "मेरा भारतवर्ष—मेरे प्रिय भारतवासी" कहते-कहते उनके नयनों से आँसुओं की धारायें बह निकलीं। अव्यक्त आनन्द से उनका अन्तर नाच उठा। ईश्वरत्व से वह बलवान् हो गये।

• • •

कन्याकुमारी छोड़कर रामनाद के भीतर से स्वामीजी फ्रांसीसी उपनिवेश पाण्डिचेरी में आ पहुँचे। थोड़े समय में ही कुछ शिक्षित युवक उनके प्रति विशेष रूप से अनुरक्त हो गये। लोगों के आग्रह से वहाँ वे कुछ दिन विश्राम ले सके। पाण्डिचेरी में एक कट्टर ब्राह्मण के साथ समुद्रयात्रा और सारे संसार में वैदिक धर्म के प्रचार के सम्बन्ध में बहुत ही कौतुकप्रद आलोचना हुई थी। उन्होंने जब कहा कि समुद्रयात्रा में शास्त्र का तो कोई निषेध नहीं है। तब ब्राह्मण ने क्रोध से आगबबूला होकर कहा—'कदापि न कदापि न।' कभी नहीं हो सकता। म्लेच्छ * लोग धर्म क्या समझेंगे ? बल्कि उनके सम्पर्क में आने पर हमारी जाति का ही नाश हो जायगा।

भारत के दुर्दशाग्रस्त के उद्धार की सैकड़ों चिन्तायें उनके अन्तर में उदित हुईं। अन्नाभाव से शीर्ण—'फटे वस्त्र, युगों के निराशा-व्यञ्जित नरनारी तथा बालकबालिकाओं' के पीले चेहरे स्वामीजी के मानसपट पर जीवित रूप से दिखाई पड़ने लगे। आँसू बहाते हुए स्वामी विवेकानन्दजी ने देश मातृका के चरणों में प्रणाम करते हुए संकल्प किया—"जननि, मैं मुक्ति नहीं चाहता। तुम्हारी सेवा ही मेरे जीवन का एकमात्र व्रत है।"

* स्वामीजी ने कहा है—"जिस दिन म्लेच्छ शब्द का आविष्कार हुआ तथा विभिन्न जातियों के साथ सम्बन्ध टूट गया, उसी दिन से भारत का भाग्यविपर्यय शुरू हुआ है।

ब्राह्मण की अनुदारता से स्वामीजी को कुछ आनन्द ही मिला। उन्होंने—साथी युवकों से कहा—"तुम लोगों ने देख लिया न? हिन्दू धर्म कहाँ जा पड़ा है, सनातन वैदिक धर्म को अब व्यक्ति और सम्प्रदाय के संकीर्ण आँगन से मुक्त करके विश्व के खुले प्रांगण में स्थापित करना होगा। हर एक शिक्षित युवक के ऊपर इस गुरुदायित्व का भार सौंपा गया है।"

पाण्डिचेरी से मद्रास जाने के मार्ग में मद्रास सरकार के डेपुटी एकाउन्टेन्ट जनरल श्रीयुत मन्मथनाथ भट्टाचार्य से भेंट हुई। पहले से ही दोनों में घनिष्ठ परिचय था। मन्मथ बाबू के विशेष आग्रह से स्वामीजी उनके अतिथि रूप से उन्हीं के साथ मद्रास आये। थोड़े ही दिनों में मद्रास नगर के भीतर विशेष हलचल मच गई। विश्वविद्यालय के अध्यापक तथा छात्र दल के दल आने लगे। सभी उनके ज्ञान की गम्भीरता देखकर स्तम्भित हो गये। वेद, वेदान्त के सिद्धान्त वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित हो सकते हैं, यह उनको पहले पहल अनुभव हुआ। चार वेद से आरम्भ करके वेदान्त दर्शन या उच्चतम दार्शनिक विचार तथा आधुनिक कॉट, हेगेल, शिल्पकला, काव्य, संगीत विद्या, नीतिशास्त्र, योगशास्त्र, विज्ञान के नये आविष्कार, राजनीति, समाजनीति सब विषयों में वे नया प्रकाश डालते थे।

मद्रास निवासियों के ऊपर स्वामीजी के विपुल प्रभाव के सम्बन्ध में एक प्रत्यक्षदर्शी ने लिखा है—"कलकत्ता विश्वविद्यालय के एक ग्रेजुएट, मुण्डितमस्तक, मनोहररूपसम्पन्न गैरिकवसनधारी सन्यासी, अँग्रेजी और संस्कृत अविराम बोलने में अभ्यस्त, प्रत्येक प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर देने की अद्भुत शक्ति, संगीतविद्या में ऐसे अभ्यस्त को कण्ठ से अत्यन्त सहज-भाव में ऐसा मधुर स्वर निकलता है मानो समस्त ब्रह्माण्ड के अन्तरात्मा के साथ उन्हें मिला दिया है। परन्तु हैं वे सर्वत्यागी निष्किञ्चन परिव्राजक मात्र। बलिष्ठ, साहसी, उच्चाङ्ग के परिहास-कुशल पुरुष तथा-कथित महात्माओं के पदानुसरण में प्रतिष्ठित अलौकिक क्रियानुष्ठानकारी सम्प्रदायों के ऊपर विजातीय घृणासम्पन्न—उस सन्यासी ने अनेक व्यक्तियों के हृदय में अविनाशी विश्वास का अनल जला दिया था। ..."

मन्मथ बाबू के मकान में रोज सभा बैठती थी। वहाँ बालक-युवक-वृद्ध, पण्डित मूर्ख, धनी निर्धन, उच्चपदस्थ व्यक्ति, हिन्दू, ईसाई, नास्तिक सभी प्रकार के मनुष्य आते थे। उनके मुख से वेदान्त की नई वाणी सुनकर सब लोग स्तम्भित हो जाते थे। एकदिन स्वामीजी ने आलोचना-प्रसंग में पाश्चात्य देशों में जाने की इच्छा प्रकट की—"अब वैदिक धर्म का सारे संसार में प्रचार करने का समय आ गया है। ऋषियों के इस धर्म को अब संकीर्ण घेरे के अन्दर बाँध रखने से काम न चलेगा। उसका पुनःसंस्कार करके संसार के सामने निकालना होगा और पूर्ण उद्यम से इस धर्म की महिमा चारों ओर फैलानी होगी।" स्वामीजी ने वैसा ही किया। वेदान्त धर्म की रत्न-मंजूषा को उन्मुक्त करके उदारता के साथ उसके रत्नों का वितरण किया। उन्होंने पृथ्वी के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक वेदान्त की महिमा विघोषित की।

मद्रास के भक्त लोग स्वामीजी के पाश्चात्य देशों में जाने की इच्छा जानकर धन संग्रह में लग गये। थोड़े समय में ५००) रुपये संग्रहीत हुए। स्वामीजी उन रुपयों को देखकर उत्फुल्ल नहीं हुए। उन्होंने कहा—"मेरे प्यारे बच्चों, मैं अन्धकार में उछल पड़ने के पूर्व भगवान् की इच्छा जानना चाहता हूँ। यदि मेरा पाश्चात्य गमन उनको अभिप्रेत होगा तो धन अपने आप आ जायगा। यह धन तुम गरीबों में बाँट दो।"

उनका आदेश पालन करना ही पड़ा। वे रुपये दरिद्रों में बाँट दिये गये उन्होंने जगज्जननी के चरणों में प्रार्थना की। लोकशिक्षा और धर्मप्रचार का विराम नहीं था। मद्रास शहर के शिक्षित और प्रतिष्ठित लोग लगातार आने लगे। उनका यश चारों ओर फैल गया। हैदराबाद और सिकन्दराबाद के निवासियों ने स्वामीजी के स्वागत के लिए एक समिति बनाकर स्वामीजी को हैदराबाद जाने के लिए आमन्त्रण भेजा। वे सहमत हो गये और १० फरवरी (१८६३ ई०) को कमण्डलु हाथ में लिये हैदराबाद स्टेशन पर उतरे। वहाँ पाँच सौ से भी अधिक व्यक्ति उनके स्वागत के लिए एकत्रित

हुए थे। महासम्भ्रान्त अमीर उमराह, उच्चपदस्थ राजकर्मचारी, राजपरिषद के वकील अध्यापक शिक्षक धनी व्यापारी सभी आये। राजसम्मान से सबने परिव्राजकाचार्य का स्वागत किया।

स्वामीजी के निवास स्थान पर अगणित मनुष्यों की भीड रहती थी। सभी स्वामीजी के दर्शन और उपदेश पाने के लिए लालायित थे। ११ फरवरी के प्रात काल नगर के एक सौ प्रतिष्ठित नागरिकों ने दूध फल मिठाई आदि लेकर स्वामीजी का स्वागत करते हुए एक भाषण देने के लिए अनुरोध किया। सबके आग्रह से उन्हें राजी होना पडा। १३ ता० को महबूब कालेज में हजारों मनुष्य समवेत हुए। अनेक अंग्रेज भी उपस्थित थे। पण्डित रतनलाल सभापति हुए। स्वामीजी को देखकर ही सभी के मन में अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हुई। भाषण का विषय था—"My mission in the West"—मेरा पाश्चात्य देश जाने का उद्देश्य। उनका भाषण सुनकर विशुद्ध अंग्रजी, गंभीर पाण्डित्य तथा वक्तृत्व शक्ति से सभी श्रोता स्तम्भित हो गये। उन्होंने हिन्दूधर्म के महत्त्व के सम्बन्ध में कहा—हिन्दू सभ्यता के उत्कर्ष के दिन भारत की शिक्षा और साधना कहाँ तक उन्नत थी उसे भी दिखाया। वैदिक तथा उसके आगे के युगों में उन्नति अवनति का इतिहास बताकर वर्तमान अध पतन * का चित्र उपस्थापित किया। सबसे अन्त में उन्होंने पाश्चात्य देश म जाने का उद्देश्य प्रकट करते हुए कहा—'सनातन वैदिक धर्म के विलुप्त गौरव के उद्धार का सकल्प लेकर वह धर्मप्रचारक के रूप में पाश्चात्य देशों में जाना चाहते हैं।'

---

* भारत के जातीय जीवन में वर्तमान अध पतन के कारण के सम्बन्ध में स्वामीजी की अनेक उक्तियाँ मिलती हैं। समाज के नेतृवृन्दों तथा राष्ट्रपरिचालकों की दृष्टि उस ओर आकृष्ट हो तो जातीय जीवन व्याधिमुक्त होकर स्वस्थ, और सबल हो सकता है। इस अध पतन के लिए पूर्णतया हमलोग ही दायी हैं। हमने अपने गौरवोज्ज्वल अतीत की उपेक्षा की है। स्वामीजी ने कहा है—"आजकल अनेक व्यक्ति ऐसा समझते हैं कि अतीत की ओर देखनेवाले लोग

सभा के अन्त में लोगों ने उन्हें रुपया देना चाहा, परन्तु उन्होंने उसे नहीं लिया। भगवान के आदेश के लिए वे प्रतीक्षा करने लगे। व्याख्यान के बाद भी तीन चार दिन तक अमीर नवाब उमराव और मध्य श्रेणी के लोगों में धर्म की शाश्वत वाणी का प्रचार किया। सर्वत्र ही विशेष उत्सुकता उत्पन्न हुई। वे थे सत्य के पथिक, क्योंकि वे साधक तथा अमृत के अधिकारी। अपने जीवन दीपक से मनुष्यों हृदयों में उन्होंने धर्म की आलोक शिखा प्रज्वलित की थी। उनके धर्मानुराग, त्याग तथा ज्वालामयी वक्तृता ने हैदराबाद निवासियों के अन्तर में गंभीर प्रभाव डाल दिया था।"

यही भूल करते हैं।..."परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी ठीक विपरीत धारणा ही सत्य है। हिंदू जाति जितने दिनों तक अपनी अतीत कीर्ति भूल बैठी थी उतने दिनों तक मानो उसकी तन्द्राच्छन्न अवस्था थी और वर्तमान में ज्योंहि उसकी दृष्टि प्राचीन समय की ओर प्रसारित हो रही है त्योंहि चारों ओर नवजीवन की उद्दीपना दिखाई पड़ रही है। "भारत की इस अवनति का दूसरा कारण है हमारी संकीर्ण दृष्टि तथा कर्मक्षेत्र का संकोच।" मुझे दृढ़ विश्वास है कि कोई व्यक्ति व जाति दूसरे से सम्पर्क न रखकर टिक नहीं सकती। समाज के चारों ओर लोकाचार की जो दुर्लंघ्य दीवाल बनायी गयी थी, वह भारत की वर्तमान अवनति का अन्यतम मूल कारण है, ऐसा मैं समझता हूँ। प्राचीनकाल में चारों ओर के बौद्धों के संस्पर्श से हिंदूजाति को बचाने के लिए वैसा करना पड़ा था।" उनके मन में गणदेवता का अनादर तथा नारी जाति की अमर्यादा भी इस अध पतन का कारण है। उन्होंने कहा है—" जब तक भारत का अनभिजात जनसमाज समादृत नहीं होता, जब तक उनके उपयोगी खाद्य, शिक्षा आदि का प्रबन्ध नहीं होता तब तक हमारे सारे राजनैतिक कार्य-कलाप निष्फल होंगे तथा इस देश की उन्नति सम्भव नहीं होगी। प्राचीन स्मृतिशास्त्रप्रणेता महर्षि मनु ने कहा है—'नारी के सम्मान से देवता तृप्त होते हैं" परन्तु हमारी विचारधारा इतनी मलिन है कि हम स्त्रीजाति को "घृणित कीट", "नरक का द्वार" इत्यादि कहते हैं।..."

१७ फरवरी को स्वामीजी मद्रास लौट आये।* उनके प्रज्वलित भारत-प्रेम ने मद्रास निवासियों के अन्तर में आकुल प्रतिध्वनि जगा दी। उनका विपुल स्वागत हुआ। स्वामीजी को केन्द्रित करके मद्रासवासियों ने एक बड़े दल का संघटन किया। वे लोग स्वामीजी के जीवन के अन्तिम दिन तक उनके प्रति सम्पूर्ण रूप से अनुरक्त थे।

वेदांत की घोषणा है—'सभी जीवों में एक ही चेतन आत्मा विराजमान है। तो भी इस देश में पुरुष और नारी में इतना अन्तर क्यों किया जाता है समझना कठिन है। स्त्रीजाति की समालोचना करना तुम्हारा बद्धमूल अभ्यास है किंतु मैं पूछता हूँ कि उनकी उन्नति के लिए तुमलोगों ने क्या किया है? '' किन्तु ऐसा न सोचो कि जगज्जननी आद्या शक्ति की साक्षात् प्रतिमूर्ति नारियों की अवस्था की उन्नति किये बिना तुम्हारी अग्रगति का कोई दूसरा उपाय है। शारीरिक दुर्बलता, आत्मविश्वास का अभाव, तामसिकता, कर्मविमुखता, स्वावलम्बन, अध्यवसायशीलता, मानव-प्रीति और संगठन-शक्ति के नितांत अभाव की ओर भी स्वामीजी ने देशवासियों की दृष्टि आकृष्ट की थी। उन्होंने बड़े खेद के साथ कहा था ''''वस्तुतः हमलोग आलसी, कर्मविमुख, संहति के साधन में असमर्थ, भ्रातृप्रेमवर्जित तथा स्वार्थान्ध मनुष्य हैं। हमलोग आपस में घृणा या हिंसा न करके कम से कम तीन व्यक्ति भी मिलित नहीं हो सकते।'''संगठन शक्ति हमारी प्रकृति में एकदम नहीं है। किंतु उसे हमारे जातीय जीवन में अनुप्रविष्ट कराना ही होगा। ''''

* उद्बोधन आफिस से प्रकाशित स्वामीजी की पत्रावली—भाग १ संख्या ६० पत्र में दिखाई पड़ता है कि उन्होंने २१ फरवरी (१८९३ ई०) को हैदराबाद से सच्चिदानन्द नामक अपने मद्रासी शिष्य आलासिंगा को लिखा—"कुछ दिनों के भीतर ही दो-एक दिनों के लिए मद्रास जाकर मैं तुमलोगों से मिलूँगा, फिर उधर से बंगलोर चला जाऊँगा।" इससे प्रतीत होता है कि वे २१ फरवरी के बाद मद्रास गये थे।

बड़े उत्साह के साथ मद्रास के भक्त चन्दा एकत्रित करने लगे। उन्होंने कहा था—"मेरा जाना यदि भगवान् का अभिप्रेत हो तो मैं जनसाधारण तथा दीन दु:खियों की ओर से ही जाऊँगा। तुमलोग बड़े आदमियों से धन मत लो।"

मार्च मास इसी तरह बीत गया। प्रतिदिन नये नये मनुष्य उनकी वाणी सुनने के लिए आते थे। इधर उनका अन्तर श्रीभगवान् के आदेश के लिए विशेष व्याकुल हुआ। उन्होंने श्रीश्रीमाताजी को चिट्ठी लिखकर उनके आशीर्वाद की प्रार्थना करने का सकल्प किया। इसी समय एक अचिन्तनीय उपाय से उन्हें श्रीरामकृष्णदेव का आदेश ज्ञात हो गया। एक रात को अर्द्धनिद्रित अवस्था में उन्होंने स्वप्न में देखा, श्रीठाकुर ज्योतिर्मय शरीर धारण कर समुद्र की तरंगमाला पर अग्रसर होते जा रहे हैं और स्वामीजी को पीछे आने के लिए इशारा कर रहे हैं। उस दर्शन के बाद एक अनिर्वचनीय आनन्द से स्वामीजी का अन्तर भर गया। साथ-साथ उन्हें दैव वाणी सुनाई पड़ी, "जाओ"। श्रीरामकृष्ण देव की इच्छा जानकर उन्होंने पाश्चात्य देश जाने का दृढ़ सकल्प किया।

परिव्राजक के रूप में निकलते समय उन्होंने श्रीश्रीमाँ का आशीर्वाद लेकर यात्रारम्भ किया था। समुद्रयात्रा के पहले भी उन्होंने श्रीश्रीमाताजी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए एक प्रार्थनापत्र भेज दिया। उस पत्र में उन्होंने श्रीठाकुर के आदेश की बात नहीं लिखा और अपने पाश्चात्य देश की बात भी गुप्त रखने के लिए ही माँ से अनुरोध किया था।

दीर्घ समय के अनन्तर प्राणप्रिय नरेन्द्र की चिट्ठी पाकर श्रीमाँ बहुत आनन्दित हुईं। किन्तु सन्तान की विरह-व्यथा ने उनके अन्तर को क्षुब्ध कर दिया। एक रात को श्रीमाँ ने वैसा ही स्वप्न देखा—श्रीठाकुर समुद्र की उत्ताल तरंगों के ऊपर से चले जा रहे हैं और नरेन्द्र को पीछे आने के लिए इशारा कर रहे हैं। श्रीठाकुर की इच्छा जानकर श्रीमाँ ने हृदय का आशीर्वाद जताकर उत्तर लिखा—"जाओ बेटा, तुम्हारे मुख पर सरस्वती विराजमान हो, तुम सर्वत्र विजयी होकर लौट आओ।"

श्रीमाँ की चिट्ठी पाकर स्वामीजी ने आनन्द से अघोर होकर शिष्यों से कहा—"आह ! अब सब ठीक हो गया । श्रीश्रीमाँ का आदेश मिल गया ।" बिजली के वेग से यह समाचार सारे मद्रास प्रान्त में फैल गया और कुछ दिनों के भीतर ही समुद्री यात्रा की सारी व्यवस्था ठीक हो गयी । यात्रा का दिन ३१ मई, बम्बई से चल देने का निश्चित हो गया ।

दो साल पहले खेतड़ी के राजा को स्वामीजी ने पुत्रलाभ के लिए आशीर्वाद दिया था । राजा को एक पुत्र रत्न का लाभ हुआ । समस्त खेतड़ी राज्य में उत्सव मनाया जाने लगा । राजपुत्र को आशीर्वाद देने के लिए स्वामीजी को बुलाने राजा ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी जगमोहन लाल को मद्रास भेजा । जगमोहन लाल का प्रस्ताव सुनकर स्वामीजी ने कहा—"देखो जगमोहन, ३१ मई अमेरिका जाने का दिन स्थिर हो गया है । इस समय कैसे जाऊँ तुम्हा बताओ ।" स्वामीजी की कोई भी आपत्ति न मानकर सेक्रेटरी ने कहा—"कम से कम एक दिन के लिए आप चलिए । आपके न जाने से राजाजी के मन में बड़ा कष्ट होगा । शायद वे खुद ही यहाँ आकर हाजिर हो जायँ । अमेरिका जाने का सब प्रबन्ध हम लोग ही कर देंगे ।" स्वामीजी को लाचार होकर जाना ही पड़ा ।

मद्रास के शिष्यों को आशीर्वाद देकर और उनसे विदा लेकर स्वामीजी खेतड़ी रवाना हुए । रास्ते में बम्बई और जयपुर में उतरे अप्रत्याशित भाव से आबू रोड स्टेशन पर स्वामी ब्रह्मानन्द और स्वामी तुरीयानन्द के साथ उनकी भेंट हो गयी । स्वामीजी ने अपने पाश्चात्य देशों में जाने का सकल्प बताकर बात बात में तुरीयानन्द को सम्बोधित करते हुए कहा—"हरि भाई ! मेरा हृदय बहुत विस्तृत हो गया है । मैं अन्तर में लोगों के दु:ख-कष्टों का अत्यन्त अनुभव कर रहा हूँ ।" कहते-कहते अपने कंपित हाथों को छाती पर रखकर वे आँसू बहाने लगे ।

दोनों गुरुभाई उनके विशाल हृदय का परिचय पाकर अभिभूत हो गए ।

स्वामीजी का अश्रु विसर्जन व्यर्थ नहीं हुआ। संसार के गरीबों के लिए उन्होंने जो आँसू बहाये थे, उनका प्रत्येक बिन्दु सार्थक होगा। अगणित हृदयों को यह उद्दीप्त करेगा और सैकड़ों चित्तों को करुणा-द्रवित कर देगा, उनकी दरिद्रता का विमोचन होगा।...

वे खेतड़ी आये। राजा के हृदय में आनन्द की लहर उमड़ने लगी। राज्य भर में आनन्द का साम्राज्य छा गया। स्वामीजी ने नव-जातक को आशीर्वाद दिया तथा अन्यान्य सभी को आशीर्वाद प्रदान किया। खेतड़ी में कई दिन बिताकर तथा सबको आनन्द देकर वे विदेश यात्रा के लिए बम्बई की ओर चल पड़े।* राजा के सेक्रेटरी जगमोहनलाल साथ आये। उन्होंने बम्बई पहुँचकर स्वामीजी को कीमती गेरुये वस्त्रों से भूषित किया और जाने का सब प्रबन्ध करके कुछ धन भी उनके हाथ में दिया। स्वामीजी की कोई आपत्ति उनके सामने नहीं टिकी।

मद्रास से स्वामीजी के प्रिय शिष्य आलासिंगा पेरुमल भी आ पहुँचे। पी० एन्ड ओ० कम्पनी के पेनिनसुलर नामक जहाज के प्रथम श्रेणी का टिकट खरीदा गया था। १८९३ ई० के ३१ मई को जहाज छूटा।† जगमोहन

*स्वामीजी की पत्रावली में ऐसा लिखा है—२७ अप्रैल १८९३ ई० को उन्होंने खेतड़ी से नञ्जुण्ड राव को चिट्ठी लिखी। उससे प्रतीत होता है कि वे उस तारीख से पहले खेतड़ी पहुंचे थे और फिर १८९३ ई० के २२ मई को बम्बई से दिवान जी साहेब का पत्र लिखा अर्थात् उससे पहले ही वे बम्बई पहुंच गये थे। ३१ मई को वे समुद्री जहाज पर सवार हुए थे।

†स्वामी विवेकानन्दजी की समुद्र यात्रा एक विशेष गुरुत्वपूर्ण घटना है। उस सम्बन्ध में १९०६ ईसवीय के 'कर्मयोगिन' पत्रिका में श्रीअरविंद ने लिखा था— विवेकानद की विदेश यात्रा से सर्व प्रथम यही सुस्पष्ट रूप से सूचित होता है कि भारत केवल जीवित रहने के लिए जगा नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक भावधारा के द्वारा संसार की विजय करने के लिए भारत को प्रशस्नीय भूमिका ग्रहण करनी होगी।"

चिकागो धममहासभा में विवेकनन्द

लाल और आलासिंगा उन्हें जहाज पर सवार कराने के लिए आये थे। दोनों रोने लगे। स्वामीजी की आँखें भी सूखी ही था। मातृभूमि के आकर्षण ने उनके कोमल चित्त को व्याकुल कर दिया। डेक पर खड़े होकर दोनों हाथ छाती पर रखकर वे हृदय के आवेग को दबाने की चेष्टा कर रहे थे—उनके मुख से निकला "हाय! मेरा भारतवर्ष।"

पन्द्रह

डेक पर खड़े होकर स्वामीजी भारत की तटभूमि की ओर एकटक देखते ही रह गये। उनका महिमामय भारतवर्ष! हाय, पराधीन, परपददलित भारतवर्ष! भारत की सैकड़ों चिन्ताओं ने उनके अन्तर पर अधिकार जमा लिया। वे अधीर हो गये। वराहनगर मठ तथा गुरुभाइयों की चिंता भी उनके मन को व्याकुल करने लगी।

जहाज बम्बई से सिलोन, पिनांग, सिंगापूर तथा हांग-कांग के रास्ते से अग्रसर होता चला। उसके अनन्तर कैण्टन, नागासाकी, ओसाका, क्योटो और टोकियो होकर वे स्थलपथ से 'योकोहामा' पहुँचे। सुदूर प्राच्य देशों के ऊपर प्राचीन आर्य सभ्यता का प्रभाव कहाँ तक पड़ा था, इसे वे विशेष रूप से लक्ष्य करते आये थे। एशिया के आध्यात्मिक ऐक्य के सम्बन्ध में भी वे एक स्थिर सिद्धांत पर पहुँचे थे। जापान के वर्तमान युगोपयोगी सर्वतोन्मुखी उन्नति ने उनकी दृष्टि को विशेष रूप से आकर्षित किया था। कुछ वर्षों के भीतर स्वाधीन जापान ने पाश्चात्य जातियों के साथ होड़ में अत्यन्त अधिक उन्नति कर ली है। उन दिनों थोड़े से जापानी ४० करोड़ चीनियों के विरुद्ध लड़कर विजयी हुए थे। उससे उनके आत्मविश्वास और ऐक्य शक्ति के

फलस्वरूप ही उनकी विजय घोषित हुई। * उन दिनों चीन देश में एकता का अत्यन्त अभाव था, वहाँ अन्तर्विरोध चल रहा था।'''

साथ-साथ मातृभूमि की व्याधियों के विषय में सोचकर उनका हृदय विशेष रूप से भाराक्रान्त हो गया था। योकोहामा से मद्रास। शिष्यों को उन्होंने लिखा था—"जापानियों के सम्बन्ध में मेरे मन में कितनी बातों का उदय हो रहा है उसे एक छोटे पत्र में प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। केवल इतना कह सकता हूँ कि हमारे देश के युवक दल के दल प्रतिवर्ष चीन और जापान में जायें। जापान में जाना विशेष आवश्यक है। जापानियों के लिए भारत इस समय सब प्रकार के उच्च और महान् आदर्शों का स्वप्न-राज्य है। किन्तु तुम लोग क्या कर रहे हो। जीवन भर वृथा बक बक करते रहते हो। आओ, इन्हें देख जाओ, उसके बाद लज्जा से जाकर मुँह छिपाओ। भारत की मानो जराजीर्ण अवस्था हो गयी है। देश छोड़कर बाहर जाने से तुम्हारी जाति नष्ट होती है ऐसे ही तुम मूर्ख हो।

"आओ, मनुष्य बनो, अपने सकीर्ण गर्त से बाहर निकल आकर देखो—अन्य जातियां किस प्रकार उन्नति के पथ पर अग्रसर होती जा रही हैं। क्या तुम लोग मनुष्य जाति को प्यार करते हो? देश को चाहते हो तो आओ, उन्नति के लिए, शक्ति बढ़ाने के लिए जी जान से प्रयत्न करो।''

"भारत माता कम से कम हजारों युवकों की बलि चाहती हैं। याद रखो—मनुष्य चाहिए, पशु नहीं। प्रभु ने तुम्हारी इस प्राण-स्पन्दन हीन सभ्यता को तोड़ने के लिए अंग्रेज राजशक्ति को इस देश में भेजा है और मद्रास के

---

* स्वामीजी ने कहा था कि सामयिक भाव से जापान के हाथ चीनियों की पराजय होने पर भी समय आ रहा है कि चीन भी एक विशाल विश्व-शक्ति बन जायगा। रूस भी प्रचण्ड शक्तिशाली होगा। चीन और रूस के भविष्य के बारे में स्वामीजी की भविष्य-वाणी अक्षरशः सत्य हो रही है और पाश्चात्य की यान्त्रिक सभ्यता सारे विश्व को ध्वंस के पथ पर ले जायगी, इसे भी उन्होंने स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया था।

लोगों ने ही सबसे पहले अंग्रेजों को इस देश में आश्रय दिया था। अब मैं पूछता हू, समाज की इस नयी अवस्था लाने के लिए अपने हृदय से प्राणपण प्रयत्न कर सके ऐसे कुछ निःस्वार्थ युवकों को देने के लिए क्या मद्रास तैयार है?—जो लोग दरिद्रों के प्रति सहानुभूति-सम्पन्न होंगे और उनके भूखे मुखों में अन्नदान कर सकेंगे, सर्व साधारण जनता के भीतर शिक्षा का विस्तार करेंगे और तुम्हारे पूर्व पुरुषों के अत्याचार से जो लोग पशु के समान बन गये हैं उन्हें मनुष्य बनाने के लिए मृत्यु पर्यन्त चेष्टा करते रहेंगे?" ..

इस चिट्ठी में स्वामी विवेकानन्द * की चिन्ता का परिचय मिलता है। भारतवर्ष का कल्याण ही उनकी चिन्ता का एकमात्र विषय था। भारत के अगणित दरिद्र स्त्री पुरुषों की चिन्ता ने उनके हृदय में घर कर लिया था। वे ही उनके ध्यान के विषय बन गये थे।

---

* स्वामी विवेकानन्द नाम की उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रकार से गवेषणा हुई है। काशीपुर उद्यान में संभवतः १८८६ ई० के फरवरी के किसी समय श्रीरामकृष्णदेव ने नरेन्द्रनाथ आदि ११ युवक शिष्यों को गेरुआ वस्त्र और जपमाला देकर उनमें शक्ति का संचार करके संन्यास दीक्षा दी थी, किन्तु उस समय उन्हें कोई आश्रमिक नाम नहीं दिया था।

श्रीठाकुर के देहत्याग के बाद बराहनगर मठ में १८८७ ई० के प्रारम्भ में नरेन्द्रनाथ आदि श्रीरामकृष्णदेव के कुछ शिष्यों ने विरजा होम करके आनुष्ठानिक भाव से संन्यास तथा संन्यासी का नाम ग्रहण किया था। उस समय रामकृष्णानंद नाम ग्रहण करने के लिए नरेन्द्रनाथ की बड़ी इच्छा थी किंतु उनके अन्यतम गुरुभाई शशी की एकनिष्ठ आदर्श गुरुसेवा की बात स्मरण कर उन्होंने शशी को ही वह नाम दिया था। फलस्वरूप शशी स्वामी रामकृष्णानंद नाम से परिचित हुए। नरेन्द्रनाथ ने उस समय कोई नाम ग्रहण किया था या नहीं इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। किसी के मत से उस समय उन्होंने विविदिषानंद नाम ग्रहण किया था।

परिव्राजक जीवन में अपना परिचय गुप्त रखने के लिए वे विवि-

'योकोहामा' से स्वामीजी जहाज के द्वारा प्रशान्त महासागर की नीलाम्बु-राशि का अतिक्रमण कर चल रहे थे। प्राच्य भूखण्ड पीछे छोड़कर वे प्रतीच्य की ओर अग्रसर होने लगे। किन्तु वे प्राच्य की चिन्ताओं को छोड़ न सके, इधर प्रशान्त महासागर पार करते समय वे जहाज में फिर से बहुत ही कातर हो गये। जगमोहनलाल ने उनके साथ प्रचुर वस्त्र दिये थे सही किंतु एक भी गरम कपड़ा नहीं था। व्यवस्थापक लोग शीत की बात सोच ही नहीं सके थे।...

विविदिषानंद, सच्चिदानन्द आदि नामों से अपना परिचय देते थे। उनके उस समय के अपने हाथ से लिखे पत्रों में उन दो नामों के हस्ताक्षर मिलते हैं। अमेरिका जाने के पूर्व जब वे परिचय-पत्र के लिए थियोसोफिकल सोसाइटी के सभापति कर्नल अल्काट साहब के पास गये थे, तब सच्चिदानन्द नाम से ही उन्होंने अपना परिचय दिया था। १८६२ ई० के २७ अप्रैल को बेलगाँव से डा० नञ्जुण्डराव के नाम लिखित पत्र में भी 'यही सच्चिदानन्द की निरंतर प्रार्थना' ऐसा लिखा है। अमेरिका जाने के पूर्व बम्बई पहुँचकर २४ मई (१८६३ ई०) को उन्होंने श्रीमती इन्दुमती मित्र को जो चिट्ठी लिखी थी—उसमें भी सच्चिदानन्द नाम ही लिखा था। यद्यपि सोलहवीं शताब्दी से 'पासपोर्ट' प्रथा का प्रवर्तन हुआ था, तो भी अमेरिका तथा इंग्लैंड जाने के लिए पासपोर्ट और वीसा बाध्यतामूलक नहीं थे। प्रथम युरोपीय महायुद्ध के समय से पासपोर्ट तथा वीसा बाध्यता मूलक रूप से चालू हुए, इससे हमें प्रतीत होता है कि स्वामीजी ने भी पासपोर्ट नहीं लिया था और उन्हें वीसा की भी आवश्यकता न थी। अमेरिका में उतरने के समय उन्होंने किस नाम का व्यवहार किया था इस बात को जानने का भी कोई उपाय नहीं है। परन्तु शिकागो धर्ममहासभा में वक्ता रूप में 'स्वामी विवेकानन्द' नाम सर्व प्रथम मिलता है। वे भारतवर्ष से किसी खास धर्म के प्रतिनिधि रूप में शिकागो धर्ममहासभा में नहीं प्रविष्ट हुए थे। 'अध्यापक राइट' ने शिकागो धर्मसम्मेलन की प्रतिनिधि निर्वाचन सभा के सभापति

जहाज कनाडा के अन्तर्गत वंकूवार पहुँचा। वहाँ से ट्रेन द्वारा कनाडा के भीतर से जुलाई मास के बीच में स्वामीजी शिकागो में उतरे। परिचित व्यक्ति या परिचयपत्र उनके पास नहीं था। लाचार होकर वे एक होटल में आश्रय लेकर १२ दिन तक विस्मय-विह्वलचित्त से घूम-घूमकर शिकागो की विश्व-प्रदर्शिनी देखने लगे। वह एक विशाल प्रदर्शिनी थी। विदेशों से आये हुए लाखों मनुष्यों की हलचल! सब कुछ ही नये प्रतीत हुए। पाश्चात्यों के धन, ऐश्वर्य और उद्भावनी शक्ति के सम्बन्ध में उनकी धारणा बहुत अल्प थी। विज्ञान के कितने ही अभिनव आविष्कार, कितने ही विचित्र यन्त्र, कितने ही पण्य संभार, धन कुबेरों के देशों में शिल्पकला की इतनी उन्नति, पाश्चात्यों की अपूर्व गरिमा देखकर वे विस्मय से अभिभूत हो गये। साथ-साथ भारत की

को जब स्वामीजी को प्रतिनिधि रूप में ग्रहण करने के लिए अनुरोध पत्र लिखा था उस समय स्वामीजी को किसी नाम से परिचित करने की अवश्य ही आवश्यकता हुई थी और उसी समय उनका नाम 'स्वामी विवेकानंद' लिखा गया था।

अब प्रश्न यह है कि यह नाम उन्होंने स्वयं लिया था अथवा किसी ने उन्हें दिया था। अनेकों के मत से खेतड़ी के महाराजा ने भारतवर्ष छोड़ने के पूर्व उन्हें यह नाम दिया था। खेतड़ी में सम्भवतः वे सच्चिदानंद नाम से परिचित थे। किन्तु खेतड़ी के राजा ने अपने गुरु का वैसा नया नाम क्यों रखा उसका कोई संतोष-जनक कारण नहीं मिलता। शिष्य के लिए श्रद्धेय गुरु का नाम-परिवर्तन प्रायः अस्वाभाविक है और उसका कोई प्रयोजन भी नहीं था। सच्चिदानंद नाम भी तो अच्छा ही था। उसे स्वामीजी ने स्वयं ही पसंद कर लिया था।

स्वामीजी भिन्न-भिन्न समय पर अपना नाम बदलते थे। यही बहुत स्वाभाविक प्रतीत होता है कि उन्होंने स्वयं ही विवेकानंद नाम ग्रहण कर लिया था—चाहे अमेरिका में उतर कर हो या उससे पहले।

दीनता की बात याद आने ही उनका हृदय दुःख-वेदना में आप्लावित हो जाता था।

पोशाक के कारण स्वामीजी को बहुत कष्ट उठाना पड़ा था। लड़के उनके पीछे लगकर उन्हें बहुत सताया करते थे। कोई पोशाक खींचता तो कोई ताना देता। परंतु कोई चारा नहीं था, उन्हें सब सहना पड़ा। शिकागो पहुँचने के अनंतर प्रदर्शनी के पूछताछ आफिस में जाने पर वे एकदम हताश हो पड़े। सारी प्रचेष्टा नष्ट होने वाली थी। उन्हें ज्ञात हुआ कि सितम्बर के प्रथम सप्ताह के पहले धर्मसम्मेलन आरम्भ नहीं होगा और उत्तम परिचय-पत्र के बिना कोई उस सम्मेलन का प्रतिनिधि निर्वाचित नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त प्रतिनिधि निर्वाचन की अन्तिम तिथि भी बीत गई थी। ··

भारतवर्ष में इस धर्म महासम्मेलन के सम्बन्ध में कोई भी कुछ खबर नहीं जानता था। स्वामीजी के पास कोई विशेष परिचयपत्र नहीं था और वे किसी अनुमोदित धर्म के प्रतिनिधि रूप से भी नहीं आये थे। इधर सम्मेलन तक रहने के लिए पर्याप्त पैसे भी उनके पास नहीं थे।···ये सभी बातें निराशा जनक थीं। हम स्वामीजी के उस समय के मन की अवस्था समझ सकते हैं। वे एकदम उदास हो गये। कुछ उपाय न देखकर उन्होंने अपने मद्रासी शिष्यों के पास सहायता के लिए केबुल भेजा और सारी अवस्था बताकर पत्र लिख दिया। चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा था। कहीं थोड़ा भी प्रकाश नहीं दिखाई पड़ा। तथापि उन्होंने आशा नहीं छोड़ी। उन्होंने निश्चय कर लिया कि जिस किसी उपाय से हो अन्त तक प्रयत्न करते रहेंगे। उन्हें भगवान् की आज्ञा मिली थी। अनेक निराशाओं के भीतर भी वह विश्वास उन्हें साहस और अनुप्रेरणा दे रहा था।···

शिकागो होटेल में बहुत खर्च लगता था। उन्हें खबर मिली कि बोस्टन में खर्च कुछ कम है। वह बोस्टन रवाना हो गये। उद्यमशील व्यक्ति को श्रीभगवान् निरन्तर सहायता देते हैं। स्वामी विवेकानन्द जहाँ कहीं भी जाते थे अनेकों की दृष्टि उनपर पड़ जाती थी। बोस्टन के रास्ते में ट्रेन के भीतर

उनके चेहरे और बातचीत ने एक सहयात्री को मुग्ध कर लिया। वह ब्रिजीमेडोज की एक कुलीन घर की महिला थीं। वह स्वामीजी को आदर के साथ अपने घर ले गयीं। इससे कई बातों में उन्हें सुविधा मिल गयी। ब्रिजीमेडोज से (१८९३ ई० के २० अगस्त को) आलासिंगा को उन्होंने लिखा—"यहाँ रहने से मुझे बहुत सुविधा हो गयी। रोज जो एक पाउंड खर्च होता था। वह बच गया और उस महिला को यह लाभ हुआ कि वह अपने मित्रों को बुलाकर भारत से आये हुए एक अद्भुत जीव को दिखाने लगीं! ऐसी झंझटें सहनी ही पड़ती हैं। मुझे अब अनाहार, शीत तथा अनोखी पोशाक के कारण रास्ते के लोगों के परिहास आदि से संग्राम करना पड़ता है। प्यारे बच्चे! यह जान लेना कि कोई भी बड़ा काम गुरुतर परिश्रम या कष्टस्वीकार किये बिना सम्पन्न नहीं होता। एक चीज दिखाई पड़ी कि ये लोग हिन्दू धर्म सम्बन्धी मेरा उदार मत और नाजारथ के अवतार के प्रति मेरा आदरभाव देखकर आकृष्ट हो रहे हैं। "

उस भद्रमहिला के परामर्श से उस देश के पादरियों की तरह उन्होंने एक पोशाक बनवा ली। एक बड़ी महिला-सभा में भाषण देने के लिए उन्हें निमन्त्रण मिला। क्रमशः अनेक विशिष्ट व्यक्तियों के साथ भी स्वामीजी का परिचय हुआ।*

* इस प्रकार की अनिश्चित अवस्था में विपन्न होने पर भी स्वामीजी अपने देश की बात नहीं भूले थे। बल्कि दरिद्रों की चिंता ने उनके मन को व्याकुल कर डाला था। आलासिंगा को लिखित उस पूर्व पत्र में ही एक स्थान में है—

"दुखियों की वेदना का अनुभव करो, और भगवान् के निकट सहायता की प्रार्थना करो—सहायता अवश्य मिलेगी। मैं बारह वर्षों तक इस बोझ को ढोकर तथा मन में यह चिंता लेकर घूम रहा हूँ।" हृदय का शोणित बहाते हुए मैं आधी पृथ्वी की परिक्रमा करके इस देश में आया हूँ—सहायता का प्रार्थी होकर। "किंतु भगवान् अनन्त शक्तिमान हैं। मैं जानता हूँ कि वे

उस भद्र महिला ने हार्वर्ड विश्वविद्यालय के ग्रीक भाषा के प्रसिद्ध अध्यापक जे० एच० राइट के साथ स्वामीजी का परिचय करा दिया। प्रथम दिन के चार घंटे के वार्तालाप से ही अध्यापक राइट भारतीय तरुण सन्यासी की प्रतिभा से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे स्वतः स्वामीजी को हर विषय में सहायता देने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने धर्ममहासम्मेलन में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि रूप से सम्मिलित होने के लिए स्वामीजी को अनुरोध किया, परन्तु स्वामीजी ने जब कहा कि उनके पास कोई परिचयपत्र नहीं है तब मिस्टर

सहायता मुझे अवश्य देंगे। मैं इस देश में अनाहार और शीत से मर सकता हूँ, किंतु हे मद्रासवासी युवको! मैं तुम लोगों के हाथ में इन गरीब, अज्ञानी तथा अत्याचार पीड़ित जनों के लिए सहानुभूति और प्राणपण चेष्टा दायस्वरूप अर्पण करता हूँ। इसी क्षण उस पार्थसारथि के मंदिर में चले जाओ, जो गोकुल के दीन दरिद्र गोपों के सखा थे, जिन्होंने गुहक चाण्डाल को आलिङ्गन देने में संकोच नहीं किया, बुद्धावतार में जिन्होंने बड़े-बड़े राजपुरुषों के निमन्त्रण की उपेक्षा कर एक वारांगना का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया था। जाओ, उनके पास जाकर साष्टांग प्रणाम करो और उनके सामने एक महाबलि दो। बलि—जीवनबलि—उन्हीं लोगों के लिए—जिनके लिए भगवान् प्रति युग में अवतीर्ण हुआ करते हैं, जिन्हें वे सबसे अधिक प्यार करते हैं, उन दीन दरिद्र पतित और उत्पीड़ित व्यक्तियों के लिए। तुम लोग जीवन भर के लिए इन तीस करोड़ भारतवासियों के उद्धार का व्रत ग्रहण करो, जो लोग दिन पर दिन डूबते जा रहे हैं।

यह एक दिन का काम नहीं है। पथ भयंकर कंटकपूर्ण है किंतु पार्थसारथि हमारे सारथि होने के लिए भी तैयार हैं, यह हम जानते हैं। उनके नाम से उनके ऊपर अनन्त विश्वास रखकर भारत के सदियों युगों के संचित पर्वततुल्य अनन्त दुःखराशि में आग लगा दो, वह अवश्य ही भस्मीभूत हो जायगी। "

राइट ने हँसकर कहा—"आपसे योग्यता का निदर्शन माँगना और सूर्य से प्रकाश देने का अधिकार है या नहीं पूछना एक ही बात है।"

उन्होंने प्रतिनिधिनिर्वाचन समिति के प्रेसिडेन्ट को लिखा—"यह ऐसे एक विद्वान हैं कि हमारे देश के समस्त अध्यापकों की विद्वता एकत्रित करने पर भी इनके समान नहीं होगी।" केवल यही नहीं उन्होंने शिकागो तक का एक टिकट खरीद कर स्वामीजी को दिया और धर्ममहासम्मेलन की प्रतिनिधि-व्यवस्थापक-कमेटी के नाम से भी एक पत्र लिखकर उन्हें दिया। मानो यह पहले से ही ईश्वर निर्धारित व्यवस्था थी। ''

नयी आशा लेकर स्वामीजी शिकागो रवाना हुए। ट्रेन रात को पहुँची। कहां जायँ। क्या करें। कमेटी के आफिस का पता भी खो गया था। वे श्वेताग नहीं थे, इस कारण किसी से कुछ भी सहायता नहीं मिली। अनेक श्वेतांगों की दृष्टि में काला आदमी हब्शियों से भी अधिक घृणायोग्य है। '' लाचार होकर उन्होंने स्टेशन के एक कोने पर एक खाली बक्स के भीतर आश्रय लेकर दुर्दान्त शीत के हाथ से किसी प्रकार अपने को बचाया। सुबह होते ही वे मार्ग की खोज में निकल पड़े। सभी जगह उन्हें तिरस्कार और अपमान ही मिला। कुछ स्थानों से वे विताड़ित हुए, किसी मकान में नौकरों से उन्हें अपमानित किया गया, कहीं उनके मुँह पर शब्द के साथ किवाड़ बन्द कर दिये गये, निग्रो समझ कर लोगों ने उनका बहुत ही अपमान किया।&

& स्वामी विवेकानन्द का दुस्साहसिक पाश्चात्य अभियान शुरू से अंत तक बहुत ही विपद्पूर्ण था। उन्हें पग पग पर दीर्घ चार वर्षों तक प्रतिदिन अनेक बाधा विघ्न तथा विरोध का अतिक्रमण कर अग्रसर होना पड़ा था। आज लगभग सत्तर वर्ष के बाद सर्वत्र स्वामीजी का विजय संगीत सुनाई पड़ता है। किंतु उस विजय के मूल्य स्वरूप उन्हें अनेक आघात लाछना आदि सहने पड़े थे। वे रो पड़े थे, पत विक्षत होकर मृत प्राय हो गये थे, किंतु उनके आँसू ने पाश्चात्य भूखंड को उर्वर बनाया है। वे युद्ध में आहत हुए, परंतु मरे नहीं। अन्त तक विजयी हुए थे, देवता का विशेष आशीर्वाद जो उन पर था।

इस ढंग से बहुत देर तक घूमने फिरने के बाद स्वामीजी क्लान्त होकर रास्ते की एक ओर बैठ गये। ठीक उसी समय स्वर्गीय दूत की तरह रास्ते के उस ओर के मकान से एक भद्र महिला ने निकल कर मीठे स्वर से उनसे पूछा—"महाशय, क्या आप धर्ममहासभा के प्रतिनिधि हैं?" स्वामीजी ने उत्तर दिया—"जी हाँ, परन्तु पता खो जाने से मैं बड़ी विपत्ति में पड़ गया हूँ।"

उन्हें आदर के साथ भीतर बुलाया गया। सेवायत्न और हार्दिकता की सीमा न रही। इसी रूप से नियति ने उन्हें एक ऐसे व्यक्ति से परिचित कराया जो उनके अत्यन्त विश्वस्त भक्तों में अन्यतम हैं। उस भक्त परिवार ने स्वामीजी की बाद में अनेक प्रकार से सहायता की। यह 'हेल' परिवार ही अमेरिका में उनका जैसा अपना घर था। स्वामीजी उस महिला को माँ कहकर पुकारते थे।

आहार और विश्राम के अनन्तर वह महिला स्वामीजी को महासभा के कार्यालय में ले गयीं। वहाँ वह प्रतिनिधि के रूप से गृहीत हुए और प्राच्य प्रतिनिधियों के साथ उनके रहने का प्रबन्ध हुआ।

सोलह

१८९३ ई० के ११ सितम्बर, सोमवार संसार के धार्मिक इतिहास में एक स्मरणीय दिन, प्राच्य और प्रतीच्य के मिलन का दिन तथा समस्त संसार में विश्व-भ्रातृत्व प्रतिष्ठा के आरम्भ का दिन था। स्वामी विवेकानन्द को यन्त्र रूप बनाकर विश्व के धर्ममहासम्मेलन में प्राचीन भारत का वेदान्त धर्म सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित हुआ। संसार में शान्ति और मैत्री का पथ बन गया।

पूर्वाह्न में यथारीति स्वस्तिवाचन और संगीत आदि द्वारा धर्मसम्मेलन

का उद्‌बोधन किया गया।* मंच के मध्यस्थल में सभापति कार्डिनल गिब्न्स बैठे थे। उन्हें केन्द्र में रखकर दाहिने और बायें प्राच्य और प्रतीच्य प्रतिनिधि लोग उपविष्ट थे। ब्राह्मसमाज के प्रताप चन्द्र मजुमदार और जैन सम्प्रदाय के प्रतिनिधि बम्बई के नागरकर और वीरचाँद गाँधी थे। एनीबेसेन्ट तथा ज्ञानचक्रवर्ती थियोसोफिस्टों के प्रतिनिधि थे। सीलोन से बौद्धों के प्रतिनिधि रूप से आये थे धर्मपाल महोदय। स्वामी विवेकानन्द किसी विशेष धर्म के प्रतिनिधि नहीं थे—वे थे समग्र भारत के सनातन वैदिक धर्म के प्रतिनिधि।...

प्रतिनिधियों ने अपने-अपने धर्म का परिचय देकर संक्षेप में भाषण दिये। स्वामीजी ने खड़े होकर—"मेरे अमेरिका-वासी बहनो और भाइयो!" कहकर सभा का सम्बोधन किया। इन शब्दों में विपुल शक्ति थी, जिससे सभी के चित्त आकृष्ट हुए। साथ-साथ सैकड़ों श्रोता आसन छोड़ कर उठ खड़े हुए। चारों ओर से कुछ मिनटों तक तुमुल करतलध्वनि होने लगी। यह उद्दीपना तथा करतलध्वनि रुकना नहीं चाहती थी।

अन्य वक्ताओं ने प्रचलित प्रथा के अनुसार श्रोताओं को सम्बोधित किया था। केवल स्वामी विवेकानन्द ही ने मानव जाति का सम्बोधन 'बहिन और

* स्वामी विवेकानन्द ने एक मद्रासी शिष्य को लिखा था—"महासभा आरम्भ होने के दिन सुबह हम सब शिल्पमहल में समवेत हुए।...वहाँ सब जातियों के लोग एकत्रित थे।...कल्पना कर देखो—नीचे एक हाल, उसके अनन्तर बहुत बड़ी गैलरी, उसमें अमेरिका के चुने हुए ६–७ हजार सुशिक्षित स्त्री-पुरुष और मंच पर पृथ्वी भर के सब जातियों के विद्वानों का समावेश!...सभा का कार्यारम्भ हुआ। उस समय एक एक प्रतिनिधि का सभा के सामने परिचय करा दिया गया। वे लोग भी अग्रसर होकर कुछ कुछ बोले।...सभी भाषण तैयार कर लाये थे। निर्बोध मैं कुछ भी तैयार कर नहीं ले गया था। मैं देवी सरस्वती को प्रणाम कर अग्रसर हुआ। बैरोज महोदय ने मेरा परिचय दिया। मेरे गेरुए वस्त्र से श्रोताओं का चित्त कुछ आकृष्ट हुआ था।..."

भाई' कह कर लिया था। सभा के हृदय के भ्रातृभाव का स्पन्दन सभी के हृदयों में झंकृत हुआ। क्षण भर के लिए समस्त मानव जाति का एकत्व अनुभूत हुआ•—समागत हजारों नर-नारियों के अन्तर के अन्तस्तल में।

स्वामीजी प्रथम कुछ मिनटों तक चेष्टा करके भी श्रोताओं के उत्साह और आनन्द को घटा नहीं सके; अभिभूत की तरह खड़े रह गये। जब सभा शान्त हुई तो उन्होंने एक छोटा भाषण दिया। संक्षिप्त होने पर भी उनका व्याख्यान उदार विश्वजनीन भावपूर्ण था। उन्होंने पृथ्वी के प्राचीनतम सन्यासी सम्प्रदाय के नाम से सभी धर्मों के प्रसूस्वरूप जो सनातन वैदिक धर्म है, उसके प्रतिनिधि रूप से, पृथ्वी के सभी हिन्दू जाति के तथा सभी हिन्दू सम्प्रदायों के करोड़ों हिन्दू स्त्री पुरुषों के मुखपात्र रूप से, तथा आर्य ऋषियों के नाम पर सभा को अभिनन्दन जताया। उन्होंने सनातन हिन्दू धर्म को संसार के सभी धर्मों के जननीरूप से उपस्थापित किया। और भी कहा, "जो धर्म जगत् को अनादि काल से समदर्शन और सब प्रकार के मतों का ग्रहण करने की शिक्षा देता आया है मैं उसी धर्म के अन्तर्गत हूँ। मैं इससे अपने को गौरवान्वित समझता हूँ। हम केवल अन्य धर्मावलम्बियों को सम दृष्टि से देखते हैं इतना ही नहीं, सभी धर्ममतों को हम सत्य समझते हैं। जो जाति सभी धर्मों तथा जातियों के सारे भयभीत अत्याचार-पीड़ित तथा

• स्वामीजी के उस सम्बोधन में विश्वभ्रातृत्व का बीज, विश्वमानवता की झंकार, वैदिक ऋषियों की वाणी तथा सौभ्रात्र का स्पर्श था। दो हजार वर्ष पूर्व ईसा ने भी कहा था—"यदि भगवान मनुष्य जाति के पिता होते हैं तो हम सब उन्हीं की सन्तानें हैं।" ईसाइयों के देश में ईसाइयों के निकट स्वामीजी के मुख से उस भ्रातृत्व और मानव-कल्याण की वाणी ही ध्वनित हुई थी। सभी उस परम पिता की सन्तान—मनुष्य मनुष्य के भाई हैं। मानव जाति एक अखण्ड है। रोमाँ रोलाँ ने कहा था—"यही श्रीरामकृष्ण की निःश्वास सारे बाधा विघ्नों का अतिक्रमण कर उनके महान् शिष्य के मुख से निकला।"

आश्रयप्रार्थी जनों को बराबर आदर के साथ आश्रय देती रही है मैं उसी जाति के अन्तर्गत होने के कारण अपने को गौरवान्वित समझता हूँ। जिस साल रोमवासियों के भयंकर उत्पीडन से यहूदी जाति का पवित्र देवालय ध्वस्त हो गया था उसी साल उस जाति के कुछ लोगों को दक्षिण भारत में आश्रय प्राप्ति के लिए आने पर हमारी जाति ने ही सादर हृदय में धारण कर लिया था। इस कारण भी मैं अपने को गौरवान्वित समझता हू। जोरोथुस्तर के अनुगामी वृहत् पारसी जाति के अवशिष्टांश को जिस धर्म ने आश्रय दिया था और आज तक जो धर्म उनका पालन पोषण कर रहा है मैं उसी धर्म का एक व्यक्ति हूँ।"

इसके अनन्तर स्वामीजी ने विभिन्न धर्मों का गन्तव्य स्थान एक है उसे गीता के उस प्रसिद्ध श्लोक को उद्धृत कर प्रतिपादित किया कि "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः। अर्थात् कोई किसी भी धर्ममत का आश्रय लेकर मेरे पास आवे मैं उसी भाव से उस पर कृपा करता हूँ। हे अर्जुन, मनुष्य सब प्रकार से मेरे द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का ही अनुसरण करते हैं। इसके बाद स्वामीजी ने शिवमहिम्न स्तोत्र का एकांश उद्धृत कर उसी बात को पुष्ट किया कि "रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको *गम्यस्त्वमसि पयसाम् अर्णव इव।* अर्थात् हे प्रभु! जिस प्रकार अनेक मार्गों से प्रवाहित नदियाँ समुद्र में जा गिरती हैं उसी प्रकार लोगों की रुचि भिन्न भिन्न होने के कारण सरल और कुटिल नाना प्रकार के मार्गों से चलने वाले मनुष्यों के तुम्हीं एकमात्र गम्य स्थान हो।

श्रीरामकृष्ण के चरणों के पास बैठ कर स्वामीजी ने 'जितने मत उतने पथ' रूप जो समन्वय वाणी सुनी थी उसी को उदात्त कण्ठ से अमेरिका में विघोषित किया। विभिन्न धर्मों में विरोध और संग्राम के विषमय फल का चित्र उपस्थापित कर उन्होंने कहा—"साम्प्रदायिकता, संकीर्णता और उनके फलस्वरूप धर्मान्धता ने *इस सुन्दर पृथिवी को बहुत दिनों तक* अपने अधीन

कर रखा है। इस धर्मोन्मत्तता ने संसार में अनेक उपद्रव मचाये हैं। अनेक बार इसने धरती को नर-शोणित से सींचा है, सभ्यता का संहार किया है तथा मनुष्य जाति को समय समय पर निराशा के समुद्र में डुबा दिया है। यह भीषण पिशाच अगर न होता तो मानव समाज आज पहले से बहुत अधिक उन्नत होता, किन्तु अब इसका मृत्युकाल उपस्थित हुआ है और मैं पूर्ण रूप से आशा करता हूँ कि अभी इस धर्मसमिति के सम्मानार्थ जो घण्टाध्वनि की गई है वह घण्टानिनाद ही धर्मोन्मत्तता तथा तलवार या कुतर्क आदि द्वारा उत्पन्न अनेक प्रकार के उपद्रवों और एक ही चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले व्यक्तियों में सब प्रकार के विरोधों का समूल नाश का समाचार घोषित करेगा।*

पंचम दिन के अधिवेशन में स्वामीजी ने विभिन्न धर्मावलम्बियों में मतभेद और विरोध का कारण समझाने के लिए कुँए और समुद्र में रहने वाले दो मेढकों की कहानी बता कर कहा था "भाइयो! ऐसा ही संकीर्ण भाव हमारे मत भेदों का कारण है। मैं एक हिन्दू हूँ, मैं अपने कुँए में बैठा हुआ हूँ और इसी को समस्त जगत् मान रहा हूँ। एक ईसाई अपने छोटे से कुँए में बैठ कर उसी को समस्त संसार समझ रहा है। मुसलमान भी अपने छोटे कुँए में रहकर उसी को सारा ब्रह्माण्ड मान रहा है। हे अमेरिका वासियो, आप लोग हमारे इन छोटे-छोटे संसारों की सीमा तोड़ने के लिए प्रयत्नशील हो रहे हैं, इसलिए मैं आप लोगों को धन्यवाद देता हूँ। हमें आशा है कि ईश्वर भविष्य में आप लोगों के इस महान् उद्देश्य की पूर्ति में सहायता देंगे।"

हर एक वक्ता ने अपने अपने सम्प्रदाय व भगवान की महिमा का बात ही बताया था। केवल स्वामी विवेकानन्द ने ही सभी धर्मों व भगवान—उस

---

* स्वामीजी उस धर्ममहासम्मेलन में विभिन्न दिनों में जो भाषण दिये थे उन मूल्यवान भाषणों में से एक भी इस ग्रन्थ में स्थानाभाव के कारण पूर्ण रूप से सन्निवेशित करना सम्भव न हुआ। ये भाषण नागपुर के श्रीरामकृष्ण मिशन से स्वामी विवेकानन्द की "शिकागो वक्तृता" नाम से प्रकाशित हुए हैं।

विराट पुरुष की बात कही थी। उस विराट पुरुष को आश्रय करके जो सार्वभौम विश्वधर्म गठित होगा उस सम्बन्ध में उन्होंने कहा था—"जो धर्म अनन्त भगवान को बात बतायेगा वह स्वयं ही अनन्त होगा। वह धर्मसूर्य कृष्ण-भक्त या ख्रिष्ट-भक्त साधु या असाधु सभी के ऊपर समान रूप से किरण फैलायेगा। वह केवल ब्राह्मण्य धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म ही नहीं होगा, बल्कि सभी की समष्टि रूप होगा और उसमें सभी की उन्नति का अनन्त पथ मुक्त हो जायगा। वह धर्म इतना व्यापक होगा कि अपने अगणित प्रसारित हाथों से संसार के समस्त स्त्रीपुरुषों को सादर आलिंगन करेगा ''और अपनी समस्त शक्ति को, मनुष्य जाति के प्रत्येक व्यक्ति को, अपने-अपने देव-स्वभाव का उपलब्धि करने में सहायता देने के लिए सदा नियुक्त रखेगा।''''प्रत्येक धर्म में ईश्वर हैं"—*सारे जगत् में इस सत्य की घोषणा करने का भार अमेरिका* के ऊपर ही था।

उन्होंने किसी धर्म की निन्दा या समालोचना नहीं की, किसी भी धर्म को छोटा नहीं बताया। उन्होंने कहा था—"ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं होना होगा अथवा हिन्दू या बौद्ध को ईसाई नहीं बनना पड़ेगा, बल्कि प्रत्येक धर्म को *ही अपनी स्वतन्त्रता और विशिष्टता कायम रखकर दूसरे का भाव* समझना होगा तथा क्रमशः उन्नत होना होगा। उन्नति या विकास का यही एकमात्र नियम है।

धर्ममहासम्मेलन ने तरुण सन्यासी को अभिनन्दित किया। एकही दिन में उनका यश समस्त अमेरिका में फैल गया। अमेरिकन समाचार पत्रों ने *स्वामी विवेकानन्द को धर्मसम्मेलन में समागत व्यक्तियों में निस्सन्देह श्रेष्ठ* कहकर घोषणा कर दी। और भी बताया "उनका भाषण सुनने के बाद भारत की तरह ज्ञानवृद्ध देश में धर्मप्रचारक भेजना कितनी मूर्खता की बात है उसे आज हमने विशेष रूप से अनुभव किया।*

* यद्यपि धर्मप्रचारक प्रेरण बंद नहीं हुआ तथापि हिंदू धर्म का श्रेष्ठत्व

'दि प्रेस आफ अमेरिका' पत्र ने लिखा—"हिन्दू दर्शन और विज्ञान में सुशिक्षित, प्रियदर्शन और तरुण आचार्य विवेकानन्द ने धर्ममहासभा में जो भाषण दिये उनसे समस्त पण्डितमंडली स्तम्भित और मुग्ध हुई है। यहाँ अनेक विषय और ईसाइयों के सभी सम्प्रदायों के धर्मोपदेष्टा उपस्थित थे। वे सभी विवेकानन्द के प्रभाव से विस्मयाभिभूत हो गये हैं। इस महात्मा की वाग्मिता उनके ज्ञानदीप्त, सौम्य मुखमंडल तथा उनके चिरसम्मानित धर्म के माधुर्य वर्णन के लिए उन्होंने जो सुललित अंग्रेजी में भाषण दिये वे सब मिलकर श्रोताओं के अन्तर में गंभीर दिव्यभाव का संचार कर रहे हैं।"

"दि इन्टीरियर शिकागो' पत्र ने लिखा—"वह बड़ी व्यक्ति हैं जिनकी प्रशंसाध्वनि से महासभा में सबसे अधिक कोलाहल उपस्थित हुआ था। और श्रोताओं के आग्रह से जिन्हें बार-बार सभा में लौट आना पड़ा था।"

'दि न्यूयार्क क्रिटिक' में प्रकाशित हुआ था—"संक्षिप्त व्याख्यान बहुत ही वाग्मितापूर्ण हुए सही किन्तु हिन्दू सन्यासी ने धर्ममहासभा की मूल नीति और उसकी सीमाबद्धता जिस प्रकार सुन्दर ढंग से व्यक्त की कोई दूसरा वक्ता वैसा नहीं कर सका है। उनके भाषण का समूचा अंश मैं यहां उद्धृत करता हूँ और उनके श्रोताओं के ऊपर हुई प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में केवल इतना ही कह सकता हूँ कि वह दैवशक्तिसम्पन्न वक्ता हैं। अपनी अस्पष्ट उक्तियों को जिस मधुर भाषा में उन्होंने प्रगट किया है वह उनके गेरुए वस्त्र तथा बुद्धिदीप्त दृढ़ मुखमण्डल की अपेक्षा अल्प आकर्षणीय नहीं था।..."

उनकी शिक्षा, वाग्मिता तथा अपूर्व व्यक्तित्व ने हमारे सामने हिन्दू सभ्यता का एक नया अध्याय खोल दिया है। उनका प्रतिभामण्डित मुखमण्डल, गम्भीर और सुललित कण्ठस्वर स्वतः ही मनुष्य को उनकी ओर आकर्षित करते हैं। उस ईश्वरदत्त सम्पद् की सहायता से इस देश के अनेक क्लबों और गिरिजों में

जिस ढंग से स्वामीजी ने विश्व के दरबार में प्रतिपादित किया था वह कभी मलिन नहीं होगा।

प्रचार के कारण हम उनके मतवाद से परिचित हुए हैं। किसी प्रकार के नोट लिखकर उसकी सहायता से वे व्याख्यान नहीं देते। अपने वक्तव्य विषयों का धारावाहिक भाव से प्रगट करके अपूर्व कौशल और हार्दिकता के साथ वह मीमांसा मे पहुँचते है और हृदय की गंभीर प्रेरणा उनकी वाग्मिता को अपूर्व भाव से सम्पदशाली कर देती है।" (यह उद्धृत अंश, स्वामीजी ने शिकागो से १८९४ ई० के १५ नवम्बर को श्रीहरिदास विहारीदास, देसाई को जो पत्र लिखा था उसीसे लिया गया है)।

उस धर्ममहासम्मेलन में स्वामीजी ने विभिन्न दिनो में बारह भाषण दिये थे। भाषण देने के लिए दूसरे वक्ताओ की अपेक्षा उन्हें अधिक समय दिया जाता था। वे ऐसे लोकप्रिय वक्ता थे कि यदि एक बार मंच के इधर से उधर चले जाते तो उसी से श्रोतृवृन्द करतलध्वनि के द्वारा उनका अभिनन्दन करते थे। नीरस भाषण या निबन्ध श्रवण से श्रोताओ की धैर्य च्युति होने पर सभापति महोदय खड़े होकर कहते—"सभा समाप्त होने के पूर्व स्वामी विवेकानन्द एक छोटा भाषण देंगे।" स्वामीजी के मुख से दो बातें सुनने के लिए श्रोता लोग फिर शान्त होकर दो घण्टे प्रतीक्षा करते।

इस ढंग से सत्रह दिनो के अधिवेशन में—जहाँ सहस्राधिक निबन्धपाठ तथा अनेक भाषण हुए—स्वामी विवेकानन्द को अनेक भाषण देने पड़े थे। उन भाषणों का सारांश मात्र ही जाना गया है। उन्होंने मानवात्मा की महिमा घोषित करते हुए कहा था—सभी "अमृत के पुत्र" "ज्योति के तनय है।"

उन्होंने नवम दिन के अधिवेशन मे हिन्दू धर्म के विषय में जो भाषण दिया था उसमें कहा था—'अमृत के अधिकारी' यह वाक्य कैसा मधुर और आनन्दवर्धक है। भाइयो, इस मधुर नाम से मैं आप लोगों का सम्बोधन करना चाहता हूँ। आप लोग अमृत के अधिकारी हैं। हिन्दू आप लोगों को पापी नहीं कहते, क्योंकि आप लोग ईश्वर के वंशज हैं—अमृत के अधिकारी, पवित्र और पूर्ण हैं। आपही लोग इस भूमण्डल के देवता हैं। आप लोग पापी हैं ऐसी बात असम्भव है। मनुष्य को पापी कहना ही महापाप है। "

दशम दिन के अधिवेशन में उन्होंने "धर्म की भारत में यथार्थ आवश्यकता नहीं"—इस नाम से एक छोटा सा भाषण देते हुए कहा था—भारत में धर्म की कमी बिलकुल नहीं है; यथार्थ आवश्यकता है अन्न वस्त्र की। उन्होंने और भी कहा था—"···दरिद्र मूर्तिपूजकों के उद्धार के लिए आप लोग लाखों रुपये खर्च करके वहाँ मिशनरी भेजते हैं किन्तु उनकी देहरक्षा के लिए क्या आप लोग मुट्ठी भर अन्न का प्रबन्ध कर सकते हैं।···भारतवर्ष में भयानक दुर्भिक्ष के समय हजारों निरन्न भूख से तड़प तड़प कर मर जाते हैं, परन्तु हे ईसाइयो आप लोग उस विषय में एकदम उदासीन हैं। आप लोग भारतवर्ष भर में ईसाई धर्ममन्दिर बनाने के लिए व्यग्र हैं किन्तु भारतवासियों के पास धर्म बहुत है। वे शुष्क कण्ठ से केवल मुट्ठी भर अन्न की प्रार्थना करते हैं। वे चाहते हैं अन्न। परन्तु पाते हैं प्रस्तरखंड।···मैं अपने *अन्नवस्त्रहीन स्वदेशवासियों के लिए आप लोगों के पास भिक्षा माँगने* आया हूँ। किन्तु ईसाइयों के निकट मूर्तिपूजकों के लिए सहायता प्राप्त करना कितनी कठिन बात है उसे मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ।···"

उन्होंने एकदिन व्याख्यान के प्रसंग में विश्वशान्ति के उद्देश्य से शक्ति लाभ के लिए सभी धर्मों के भगवान् के निकट प्रार्थना की थी—"जो हिन्दुओं के ब्रह्म, जो जरथुस्त्र पन्थियों के अहुर मज़दा, जो बौद्धों के बुद्ध, मुसलमानों के अल्लाह, यहूदियों के जिहोवा, जो ईसाइयों के स्वर्गस्थ पिता हैं वह आप लोगों को इस महान उद्देश्य को कार्य में परिणत करने की शक्ति प्रदान करें।"

धर्ममहासभा के अन्तिम दिन २७ सितम्बर को उन्होंने मानो सर्वोच्च स्तर पर आरूढ होकर सभा को सुनाया—"'धर्ममहासभा ने यदि संसार को कुछ दिखाया है तो वह यह कि पवित्रता, चित्तशुद्धि, दयादाक्षिण्य, महानुभावता—किसी धर्मसम्प्रदायविशेष की निजी सम्पत्ति नहीं है, और प्रत्येक धर्म में उन्नतचरित्र स्त्रीपुरुषों का आविर्भाव हुआ है। ऐसा प्रमाणित होने पर भी यदि कोई स्वप्न में भी ऐसा सोचे कि अन्य सभी धर्म विलुप्त होकर

केवल उन्हीं का धर्म जीवित रह जाय तो मैं उन्हें कृपा का पात्र समझूँगा और उनके लिए मैं बहुत ही दुःखी हूँ। और मैं यह भी बता देता हूँ कि वह शीघ्र ही देखेंगे कि उनके विरोध करने पर भी सभी धर्मों के झण्डों पर लिखा रहेगा—"सग्राम नहीं, सहायता—विनाश नहीं, ग्रहण—द्वन्द्व नहीं, मिलन और शान्ति!"

स्वामी विवेकानन्द के इन महान् वाक्यों का फल विपुल हुआ था। उन्होंने वेदान्त की सार्वभौम वाणी का प्रचार किया था। वह केवल प्रार्थना के रूप में नहीं, उच्चतर सत्य के रूप में। इस कारण उसका सभी प्रतिनिधियों तथा श्रोताओं के ऊपर अमोघ प्रभाव पडा था। फलस्वरूप आर्य धर्म, आर्य जाति और आर्य भूमि ससार की दृष्टि में पूज्य रूप से प्रतिष्ठित हुई थी। हिन्दू जाति पददलित होने पर भी अमूल्य पारमार्थिक सम्पदा की अधिकारिणी तथा धर्मजगत में ससार के गुरुपद पर अधिष्ठित होने के योग्य है। शत शत शताब्दियों के बाद स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू जाति के आत्ममर्यादाबोध को जगा दिया। घृणा और अपमान के पङ्क राशि से उद्धार करके उन्होंने हिन्दूधर्म को जगत् सभा के सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया। शिकागो के धर्मसम्मेलन में स्वामीजी ने जिस महान सत्य का प्रचार किया था—जिस आशा की वाणी सुनायी थी, भविष्य में भी वह ससार के अध्यात्मज्ञान के श्रेष्ठ अवलम्बन रूप से गृहीत होगी।

स्वामी विवेकानन्द की विजय से भारतवर्ष उल्लसित और उज्ज्वल हो उठा। दीनता और लाञ्छना से अवनत भारत में स्वर्गीय आनन्द मन्दाकिनी उतर आयी। अतीत के भस्म स्तूप को श्यामल करने के लिए सुरनदी उतर आ प्रवाहित हुई। स्वामीजी की उस विजय का प्रभाव भारत के जातीय जीवन के प्रत्येक कर्म और प्रत्येक प्रचेष्टा के ऊपर पडा था। केवल धर्म या आध्यात्मिक क्षेत्रों में ही नहीं, राष्ट्रीय अर्थनीतिक, सामाजिक तथा जाति के सामूहिक जीवन में वह वर्षाधारा के समान कार्यकर हुआ था।

रोमाँ रोलाँ ने उस जागरण के सम्बन्ध में लिखा था—'यहा भारत को

अभागी सबसे पहले आरम्भ हुई, इसी दिन से अतिकाय कुम्भकर्ण की निद्रा भंग होने लगा।'''विवेकानन्द की मृत्यु के ३ साल बाद उनके वशानगण यदि बंगाल में विद्रोह और तिलक तथा गांधी के आन्दोलन की सूचना प्रत्यक्ष करते हैं, यदि भारत आज जन साधारण के मत-बद्ध कर्मों के भीतर अपना सुनिर्दिष्ट अंश ग्रहण करता है तो वह विवेकानन्द के शक्तिपूर्ण आह्वान का ही फल है।" स्वामी विवेकानन्द भारत के गणजागरण के ऋत्विक् तथा स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रदूत थे।

स्वामी विवेकानंद के भाषण के प्रभाव के सम्बन्ध में धर्ममहासभा के अंगीभूत विज्ञानसभा के सभापति मि: स्नेल ने लिखा था—"'''धर्म महासभा में अन्य कोई भी धर्म हिन्दू धर्म की तरह प्रभाव विस्तार नहीं कर सका और इस धर्म के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं स्वामी विवेकानंद। महासभा में इनका प्रभाव तथा आदर सबसे अधिक हुआ था, इस विषय में किन्चु मात्र भी सन्देह नहीं है। उनको बार-बार भाषण देना पड़ता था—खास महासभा में तो निश्चय ही, उसकी वैज्ञानिक शाखा के अधिवेशनों में भी (जिसका मुझे सभापति होने का सम्मान प्राप्त हुआ था)। प्रत्येक बार से ही ईसाई तथा अन्य धर्मों के वक्ताओं की अपेक्षा लोगों ने विशेष सम्मान के साथ उन्हीं का स्वागत किया था। वह जिधर जाते थे उधर ही लोगों की भीड़ लग जाती थी और उनके मुख की बात सुनने के लिए लोग उत्कण्ठित रहते थे। ईसाइयों में जो लोग बहुत ही कट्टर थे उन्होंने भी कहा—'यथार्थ में ही वे मानव समाज के अलंकार स्वरूप हैं।'

"इस देश में हिंदुत्व की कार्यकरी शक्ति को स्वामी विवेकानन्द के परिश्रम से विशेष प्रेरणा मिली है। हिंदू धर्म के इस प्रकार कोई भी यथार्थ प्रतिनिधि इससे पहले अमेरिका के तत्वानुसन्धित्सुओं के सम्मुख उपस्थित नहीं हुए थे। तात्कालिक उत्तेजना से कहा—यथार्थ में ही अमेरिका निवासी स्वामीजी के चले जाने पर उनके पुनरागमन के लिए आग्रह के साथ प्रतीक्षा करेंगे। प्रोटेस्टेन्ट ईसाई सम्प्रदाय में जो लोग अत्यन्त कट्टर हैं उनमें बहुत

ही थोड़े व्यक्तियों ने स्वामीजी की सफलता की ईर्ष्या से उनके विरुद्ध मन्तव्य प्रगट किया है। किन्तु ऐसा मतव्य अप्रसिद्ध धर्ममतावलम्बियों के पास से ही आया है। भारतभूमि के गेरुए वस्त्रधारी सन्यासी की सार्वजनीन महानुभावता, ज्ञानगौरव तथा व्यक्तिगत चरित्र के माधुर्य के कारण यहाँ का सम्प्रदायिक विद्वेष लुप्त हो रहा है। स्वामीजी को भेजने के कारण अमेरिका भारत को धन्यवाद दे रहा है।"

अख्यात, अज्ञात, स्वामी विवेकानन्द विश्ववरेण्य हो गये। उनके सैकड़ों पूर्णाकार चित्र शिकागो शहर के विभिन्न स्थानों में शोभायमान हुए। उन चित्रों के नीचे लिखा था—'भारत के हिंदू सन्यासी स्वामी विवेकानन्द'। रास्ता चलने वाले दर्शक खड़े होकर श्रद्धा के साथ टोपी उतारकर उस पूजनीय के प्रति सम्मान निवेदन करने लगे। अमेरिका और यूरोप के समाचार पत्र दिन पर दिन उनकी प्रशंसा से पूर्ण रहते थे। उस समय के उन देशों के समाचार पत्रों के उद्धरण से एक बड़ा ग्रंथ तैयार हो सकता है। 'दि बोस्टन इवनिंग ट्रान्सक्रिप्ट' पत्र ने लिखा—"इन (स्वामी विवेकानन्द) के प्रचारित भावों के महत्त्व के कारण तथा उनके चेहरे के प्रभाव से वह धर्मसभा में विशेष प्रियपात्र थे। यदि वे केवल मंच के ऊपर से चले जाते तो करतलध्वनि होने लगती। परन्तु सहस्रों विद्वान् व्यक्तियों के इस समादर और सम्मान को इन्होंने ठीक बालक की तरह—सरल भाव से ग्रहण किया, उनमें आत्माभिमान का लेश मात्र भी न था।"

धर्ममहासम्मेलन के अनन्तर स्वामीजी ने अपने मद्रासी शिष्यों को लिखा था—"' 'यहाँ की धर्ममहासभा का उद्देश्य सब धर्मों की अपेक्षा ईसाई धर्म की श्रेष्ठता प्रमाणित करना था। किंतु उसके आयोजन करने वालों के दुर्भाग्य से उसका फल उल्टा हो गया।' " हमें ऐसा लगता है—श्रीरामकृष्ण की वाणी उनके प्रधान शिष्य के मुख से समस्त विश्व में प्रचारित होने के लिए ही उस धर्ममहासम्मेलन का आयोजन हुआ था, और दैवप्रेरित होकर ही स्वामी विवेकानन्द समुद्र पार कर अमेरिका पहुंचे थे।

महासभा के जेनरल कमेटी के सभापति रेवरेंड बैरोज महोदय ने भी कहा था—"स्वामी विवेकानन्द ने अपने श्रोताओं के ऊपर आश्चर्य प्रभाव डाल दिया था।"

समाचार पत्रों के इस प्रकार के सैकड़ों उद्धरण दिये जा सकते हैं किन्तु इस विजय को स्वामीजी ने किस भाव से ग्रहण किया था?

उस बहुसम्मानित भारतीय संन्यासी को अमेरिका के एक सम्पन्न व्यक्ति आदर के साथ अपने घर ले गये। सेवा, आदर तथा ऐश्वर्य के प्राचुर्य से स्वामीजी का चित्त व्यथित होने लगा। इन्द्रपुरी तुल्य महल में दुग्धफेन तुल्य शय्या पर लेट कर वे रोने लगे। आँसुओं से तकिया भीग गया। वे मनोवेदना से अधीर होकर घर के फर्श पर पड़ पड़ तड़पने लगे—"हाय! मेरी दुखिनी भारतभूमि, तुम्हारी कैसी दुर्दशा और मेरे लिए ऐसा सुखभोग। मैं इस भोगैश्वर्य और नामयश को लेकर क्या करूँगा!" उन्होंने सारी रात रोते हुए बिता दी। स्वामी विवेकानन्द अपने नामयश के लिए विदेश भ्रमण में नहीं गये थे।

धर्ममहासभा के समाप्त होते ही स्वामीजी अनेक स्थानों में भाषण देने के लिए निमंत्रित हुए। अनेक विशिष्ट व्यक्तियों ने उन्हें अपने अपने घर ले जाकर विविध आलोचना-सभाओं का प्रबन्ध किया। उस समय एक व्याख्यान कम्पनी ने उस जनप्रिय वक्ता को संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न स्थानों में भाषण देने के लिए बुलाया। अमेरिका की जनता से परिचित होने का मौका समझकर स्वामीजी राजी हो गये। और उस कम्पनी के प्रबंध के अनुसार संयुक्त राष्ट्र के एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक भाषण देने लगे। सर्वत्र ही वे विशेष रूप से अभिनंदित तथा सम्मानित हुए। और उनके भाषण का फल भी विस्मय जनक हुआ।

वे केवल वेदान्त या धर्म के विषय में ही व्याख्यान नहीं देते थे, आर्य सभ्यता, भारतीय संस्कृति, समाज व्यवस्था, मूर्ति पूजा, सामाजिक रीतिनीति, आचार व्यवहार, नारी जाति का आदर्श आदि विभिन्न विषयों पर भी भाषण देते थे। उससे मिशनरी लोग जो भारतवासियों को

'नंगे, मनुष्यभक्षी, असभ्य, बर्बर विधर्मी, धर्मविश्वासरहित, मूर्तिपूजक' आदि कहकर प्रचार करते थे वह धारणा साधारण मनुष्यों के मन से मिट गयी। "जिस जाति में स्वामी विवेकानन्द की तरह व्यक्ति जन्मग्रहण कर सकते हैं।" उस जाति के सम्बन्ध में वैसी उटपटांग धारणा के लिए अवकाश ही नहीं रह गया। इस तरह उस व्याख्यान-कम्पनी के प्रबन्ध से उन्होंने शिकागो, आइवा सिटी, डेसमयेनिस, सेन्ट लुई, इन्डियना पोलिस, मिनियापोलिस, डेट्रएट, हार्टफोर्ड, बाफेलो, बोस्टन, केम्ब्रिज, बाल्टिमोर, वाशिंगटन, ब्रुकलीन और न्यूयार्क आदि स्थानों में भ्रमण करके बहुत से व्याख्यान दिये थे। परन्तु कुछ दिनों के बाद कई कारणवश उन्होंने रुपये के बदले व्याख्यान देना बन्द कर दिया।[*] किन्तु उस प्रकार व्यापक भ्रमण से अमेरिकावासियों के सम्बन्ध में उन्हें बहुत कुछ जानने का अवसर भी मिला था।

१८९४ ई० २३ जून, शिकागो से स्वामीजी ने मैसूर के महाराजा को उनदिनों के अमेरिकनों में धर्मभाव के अभाव के सम्बन्ध में लिखा था— "(ईसाई) मिशनरी लोग भारतवर्ष में अपने देश के लोगों की धर्मप्रवणता के विषय में कितनी ही बकवाद क्यों न करें यथार्थ में यहाँ के छः करोड़ तीस लाख आदमियों के भीतर बहुत हुआ तो एक करोड़ नब्बे लाख मनुष्य थोड़ा बहुत धर्म किया करते हैं। बाकी लोगों के दिमाग में पान, भोजन और रुपये कमाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं आता। पाश्चात्य लोग हमारे

[*] स्वामीजी ने उस समय एक मद्रासी शिष्य को लिखा था—"......डेट्रएट के भाषण में मैंने ९०० डालर अर्थात् २७०० रु० पाये थे। दूसरे भाषणों में से एक में एक घंटे में २५०० डालर अर्थात् ७५०० रु० कमाये थे। परन्तु उस कम्पनी ने मुझे केवल २०० डालर ही दिये थे।... एक धोखेबाज कम्पनी ने मुझे इसी तरह छकाया। मैंने उनका सम्पर्क छोड़ दिया है।" भाषण देकर स्वामीजी ने जो रुपये पाये थे उनका उन्होंने गुप्त भाव से भारत के अनेक जनहितकर शिक्षा सम्बन्धी तथा महिला प्रतिष्ठान आदि में दान कर दिया था। अनेक दुःखी व्यक्तियों की उससे सहायता हुई थी।

जातिभेद के सम्बन्ध में कितनी ही क्यों न तीव्र समालोचना किया करें उनमें हमारी अपेक्षा अति जघन्य जातिभेदप्रथा है अर्थनैतिक जातिभेद। अमेरिका निवासी कहते हैं—'सर्वशक्तिमान डालर' यहाँ सब कुछ कर सकता है, परन्तु यहाँ गरीबों के पास रुपये नहीं हैं। दक्षिण भाग के रहने वाले हब्शियों के ऊपर इनके व्यवहार के बारे में वक्तव्य है कि वह पैशाचिक है। मामूली अपराध से निर्विचार जीवित अवस्था में उनके शरीर का चमड़ा छीलकर मार डालते हैं। इस देश में जितने कानून हैं उतने और किसी देश में नहीं हैं। फिर इस देश के लोग कानून का जितनी कम मर्यादा रखकर चलते हैं उतने किसी अन्य देश में नहीं हैं।

साधारणतया हमारे देश के दरिद्र हिन्दू इस पाश्चात्य देशवासियों की अपेक्षा बहुत अधिक नीतिपरायण हैं। इनका धर्म या तो पाखंड या कट्टरपन है। ये लोग नये प्रकाश के लिए भारत की ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं। महाराज! आप बिना देखे नहीं समझ सकेंगे। ये लोग पवित्र वेद का गम्भीर चिन्ताओं के मामूली अंश का भी अत्यन्त आदर के साथ ग्रहण करते हैं। क्योंकि विज्ञान, धर्म के ऊपर बार बार जिस प्रकार का तीव्र आक्रमण कर रहा है केवल वेद ही उसे रोक सकता है और धर्म के साथ विज्ञान का सामञ्जस्य विधान कर सकता है। इनके प्रचारित मत—शून्य से संसार की सृष्टि, आत्मा सृष्ट पदार्थ, स्वर्ग नामक स्थान में सिंहासन पर एक महान निर्दयी और अत्याचारी ईश्वर है—अनन्त नरक, इत्यादि मतों से सभी शिक्षित व्यक्ति चिढ़े हुए हैं। और सृष्टि के अनादित्व, आत्मा और आत्मा में अवस्थित परमात्मा के सम्बन्ध में वेद के गम्भीर उपदेश किसी न किसी रूप में ये लोग बहुत शीघ्र ग्रहण करते हैं। पचास वर्षों के भीतर संसार के सभी शिक्षित व्यक्ति हमारे पवित्र वेद की शिक्षा के अनुसार आत्मा और सृष्टि दोनों के ही अनादित्व के ऊपर विश्वास करेंगे और ईश्वर को आत्मा की ही सर्वोच्च पूर्ण अवस्था समझेंगे। अभी से इनके सभी विद्वान् पुरोहित इसी ढंग से बाइबिल की व्याख्या करने लग गये हैं। भारतवर्ष में जिन मिशनरियों को

आप देखते हैं वे किसी तरह ईसाई धर्म के प्रतिनिधि नहा है। मेरा सिद्धान्त यही है कि पाश्चात्या को और भी अधिक धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता है, और हमें और भी अधिक ऐहिक उन्नति का प्रयोजन है। ..."

सत्रह

सम्मेलन के बाद ही अमेरिका म स्वामीजी ने ठीक प्रकार से कार्य आरम्भ किया। प्रथम भूमिकर्षण, उसके बाद बीजवपन।

किन्तु स्वामी विवेकानन्द के इस विराट् सम्मान और साफल्य से उनके देशवासी प्रतिनिधि लोग बहुत अधिक ईर्ष्यान्वित हुए। उन्होने ने स्वामीजी के यश को हीन करने के लिए किसी प्रकार की चेष्टा को अयोग्य नहा समझा। वे मिशनरियों से मिलकर मिथ्या प्रचार करने लगे। परन्तु स्वामीजी ने उसकी परवाह न की। वे अपने मार्ग पर अग्रसर होते चले। उस समय उन्होंने अपने एक गुरुभाई को लिखा था " भय किसका ? किन लोगों को भय होता है ? भाई ! यहाँ मिशनरी लोग चिल्ला चिल्लाकर चुप हो गये हैं—इसी तरह सारा ससार भी होगा।" ईसा के खून ने धरती को उपजाऊ बनाया था। बाधा और अत्याचार का स्वामीजी ने स्वागत किया था।

स्वामी विवेकानन्द का जिन लोगों ने विरोध किया था वे केवल करुणा के पात्र ही नहा बल्कि धन्यवाद के भी पात्र हैं। उसी से ससार जान गया था कि स्वामी विवेकानन्द 'भगवान के प्रेरित दूत' हैं।* वे जानते थे कि

---

* स्वामीजी का एक चिट्ठी में दिखाई पड़ता है —"यह है चरित्र का प्रभाव, पवित्रता का प्रभाव, सत्य का प्रभाव और व्यक्तित्व का प्रभाव जब

"पूर्ण योग्यता ही योग्य प्रतिदान है"। "Cyclonic Hindu" (झंझावेगशाली हिन्दू) सब कुछ उड़ा देते हुए अग्रसर होते चले। 'उपेक्षा उपेक्षा उपेक्षा' —यही था उनकी सफलता का मूल मन्त्र। उन्होंने और भी कहा था "न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति—गीता (अर्थात् कल्याणकारी की कभी दुर्गति प्राप्त नहीं होती)। एक चिट्ठी में उन्होंने इस श्लोक को भी उद्धृत किया था—

"निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्। अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः" (भर्तृहरि)—नीति निपुणगण निन्दा करें अथवा स्तुति करें, लक्ष्मी आवें या चली जायँ, आज ही मृत्यु हो या सौ वर्षों के बाद, धीर व्यक्ति कभी न्यायपथ से विचलित नहीं होते।

स्वामी विवेकानन्द ने उस व्याख्यान कम्पनी का सम्पर्क छोड़ दिया। किन्तु अमेरिका के निवासी उन्हें और भी अधिक घनिष्ठ भाव से पाने और जानने के लिए आग्रहान्वित हुए। अनेक प्रतिष्ठान, सभा-समिति, गिरजा, महिला संसद, चरित्रशोधनागार, शिक्षा संस्था, विश्वविद्यालय तथा विशिष्ट व्यक्तियों के घर उनको निमन्त्रण होने लगा। वे भारतीय प्रथा के अनुसार प्रतिदान की आशा न रख कर धर्मदान करने लगे। उस समय उन्हें किसी किसी सप्ताह में १२, १४ या उससे भी अधिक भाषण देने पड़ते थे, जिनके प्रभाव से समस्त पाश्चात्य जगत् का धर्मचिन्ता में युगान्तर उपस्थित हुआ। वेद वेदान्त और हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में उनकी मौलिक चिन्ता और नवतम व्याख्या के द्वारा सनातन हिन्दू धर्म का नूतन रूप बन गया। उन्होंने सर्वत्र ही अनेक व्यक्तियों के अन्तर में यथार्थ धर्म लाभ की स्पृहा जगा दी। स्वामीजी

तक वे मेरे पास रहेंगे तब तक कोई मेरे सिर का एक केश भी छू न सकेगा। प्रभु मेरे साथ सदा रह रहे हैं। निश्चित रूप से जान रखो कि प्रभु मुझे हाथ पकड़ कर लिये चल रहे हैं।"

के चरणों के नीचे बैठकर धर्मशिक्षा प्राप्त करने की इच्छा भी अनेक मनुष्यों के हृदय में उत्पन्न हुई।*

* * *

इधर धर्ममहासभा तथा संयुक्त राष्ट्र में स्वामी विवेकानन्द की सफलता के समाचार ने भारतवासियों के हृदयों को आलोडित कर दिया। हिमालय से कन्या कुमारी तक सर्वत्र पल्ली, ग्राम, नगर, स्कूल कालेज, पथ और हाटबाट में स्वामी विवेकानन्द ही आलोचना के विषय बन गये। इस वीर संन्यासी की विजय से भारतवासी प्रायः सभी स्त्री पुरुषों का अन्तःकरण गर्वस्फीत हो गया।

रामनाद और खेतड़ी के राजाओं ने विशेष दरबार के भीतर आडम्बर के साथ प्रजाओं के निकट भारत का मुखोज्वल करने वाले स्वामी विवेकानन्द की विजयवार्त्ता की घोषणा कर दी। दक्षिण भारत के विभिन्न स्थानों में तथा मद्रास शहर में प्रसिद्ध व्यक्तियों के द्वारा विराट् सभाओं में स्वामीजी की विजय और प्रचार को अभिनन्दित करके प्रस्ताव गृहीत हुए। बंगाल में भी यथेष्ट जागरण की सृष्टि हुई थी। कलकत्ते के शिक्षित विशिष्ट नागरिकों में भी विशेष उत्साह उत्पन्न हुआ। समाचार पत्रों, भाषणों तथा आलोचनाओं में स्वामीजी की उच्च प्रशंसा घोषित होने लगी। कलकत्ते के टाउनहाल में राजा प्यारीमोहन मुकर्जी सी० एस० आई० बहादुर के सभापतित्व में एक विशाल जन सभा ने हिन्दू जाति की ओर से स्वामी विवेकानन्द और अमेरिका

* इस समय स्वामीजी की एक चिट्ठी में लिखा था—"इस देश में मैंने एक बीज रोपा है—उसमें अभी अंकुर उत्पन्न हो गया है।...मुझे कई सौ अनुरागी शिष्य मिले हैं।...हर एक कार्य में ही तीन अवस्थाओं के भीतर से चलना होता है—उपहास, विरोध और अन्त में ग्रहण।...आगामी वर्ष में उन्हें इस ढंग से संघबद्ध करूँगा जिससे वे कर्मक्षम हो सकें। उस समय काम ठीक से चलने लगेगा।

निवासियों के अभिनन्दन तथा धन्यवाद का प्रस्ताव पारित किया। सभापति महोदय ने शिकागो धर्ममहासभा के सभापति तथा स्वामीजी को धन्यवाद देकर पत्र लिखे।

उस पत्र के उत्तर में डाक्टर बैरोज महोदय ने राजा प्यारीमोहन मुकर्जी को लिखा—"प्रिय महाशय, कलकत्ते के टाउनहाल की विराट सभा के विवरण सहित जो पत्र आपने मुझे लिखा वह मुझे अभी मिला। उस समाचार से मैं बहुत ही आनन्दित हुआ हूँ। शिकागो की धर्ममहामण्डली में आपके मित्र स्वामी विवेकानन्द सम्मान के साथ गृहीत हुए थे। उन्होंने वाग्मिता शक्ति के बल चुम्बक के आकर्षण की तरह सभी को आकृष्ट कर लिया था और अपने व्यक्तिगत प्रभाव को सम्यक्रूप से विस्तार करने में समर्थ हुए थे। उनके प्रयत्न से यहाँ के लोगों की चिंता और धर्मानुशीलन का आग्रह विशेष रूप से उद्बुद्ध हुआ है। प्रधान प्रधान विश्वविद्यालयों में उनके भाषण और आलोचना का प्रबन्ध हो रहा है। अमेरिका के जनसाधारण भारतवर्ष के सम्बन्ध में गभीर प्रीति और कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं। हमें विश्वास है आपके सुप्राचीन पवित्र धर्मग्रन्थों से हमें अनेक विषय ग्रहण करने होंगे।"

जो लोग सभा में उपस्थित नहीं हो सके है—ऐसे दूर ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों तक ने भारतमाता के श्रेष्ठ सन्तान के प्रति आन्तरिक श्रद्धा विज्ञापित की। मानो जादूगर का शक्ति से भारतवर्ष के तीस करोड़ स्त्री-पुरुष आनन्द कोलाहल करते हुए जग उठे। भारत का आकाश तथा वायुमंडल स्वामी विवेकानन्द के गौरवमय जयगान से पूर्ण हो गया।

स्वामी विवेकानन्द ने उस समय पाश्चात्य भूखण्ड में जो बीज बोया था उसी के अंकुर उद्गम के परिवेश की रचना भी की थी। उन्होंने १८९५ ई० के फरवरी से न्यूयार्क नगर में धारावाहिक भाषण देना आरम्भ किया और उनका बाकी समय कुछ सत्यनिष्ठ धर्मानुरागी उत्साही स्त्री पुरुषों को धर्मशिक्षा देने के काम में व्ययित होने लगा। ज्ञानयोग और राजयोग के भाषणों का फल

इतना सुन्दर हुआ कि थोड़े ही दिनों के अन्दर अनेक मनुष्य योगसाधना की शिक्षा ग्रहण करने के लिए समवेत होने लगे। वे योग-शास्त्र के नियमानुसार ब्रह्मचर्य व्रत पालन करके पद्मासन लगाये योगसाधना में व्रती हुए। स्वामीजी के राजयोग के भाषण ग्रंथरूप में प्रकाशित होने पर अमेरिका के शिक्षित और विचारशील व्यक्तियों में इतना अधिक आग्रह उत्पन्न हुआ था कि कुछ सप्ताहों के भीतर उस ग्रंथ के तीन संस्करणों के प्रकाशन की आवश्यकता हुई थी।

इतने में अमेरिका के अनेक प्रसिद्ध व्यक्ति उनके अनुरागी, पृष्ठपोषक तथा शिष्य हो गये थे। उनमें मैडम मेरी लुई, मिसेज उलि बुल, डा० एलान डे, मिस वाल्डो, प्रो० वाइन मैन, प्रो० राईट, डा० स्ट्रीट, मैडम काल्वे, मिस्टर और मिसेज लेगेट, मिस मैकलाउड आदि के नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं। इनमें से कुछ लोगों ने स्वामीजी के शिष्य बनकर परवर्ता जीवन में वेदान्त प्रचार के लिए आत्मनियोग किया था। *

* * *

किन्तु पाश्चात्य विजय से मत्त होकर स्वामीजी अपने देश भारत को नहीं भूले थे। प्रतीच्य में वे थे "Hindu monk of India" और उनकी वाणी थी धर्म की वाणी, वेदान्त की वाणी। और भारत में वे थे 'Patriot Saint of India' देशप्रेमिक और स्वाधीनता के ऋत्विक्—स्वामी विवेकानन्द। प्राच्य के लिए धर्म और वेदान्त की वाणी के अतिरिक्त भी उनकी स्वतन्त्रता की वाणी, उद्बोधन, कर्म और संगठन की वाणी थी, दुःस्थों, पददलितों, प्रपीड़ितों, रुग्णों तथा मूर्खों को उद्धार करके मनुष्यत्व में प्रतिष्ठित करने की वाणी थी। इसी कारण उन्होंने पाश्चात्य देशों से ही सारे भारत में विभिन्न

* स्वामीजी ने १८९६ ई० के मार्च महीने में अमेरिका से आलासिंगा को लिखा था—"इतने में मेरे दो सन्यासी शिष्य और कई सौ गृहस्थ शिष्य हुए हैं, परन्तु बेटा, कुछ को छोड़कर बाकी सभी गरीब हैं। कुछ लोग बहुत ही सम्पन्न हैं। इस समाचार को अभी प्रगट न करना।..."

केन्द्र और शाखाकेन्द्र स्थापित कर जनसाधारण के भीतर जातीयतावोध जगाने के लिए अपने शिष्यों तथा गुरुभाइयों का आह्वान किया और ग्रामों में जा जाकर जन हितकर कार्य तथा गरीबों और तथाकथित निम्न श्रेणी के लोगों के घर घर शिक्षा विस्तार के लिए आत्मोत्सर्ग करने का उपदेश भेजा। उन्होंने लिखा—"...मैं कहता हूँ—'दरिद्रदेवो भव। मूर्खदेवो भव'— दरिद्र मूर्ख अज्ञानी कातर—ये ही तुम्हारे देवता हों, इनकी सेवा ही परम धर्म जानना।"

स्वामीजी के मन के एक गभीर स्तर में भारत का चिन्ता व्याप्त किये हुए थी। अमेरिका से उन्होंने मद्रासी तरुण शिष्यों को जो उद्दीपनापूर्ण पत्र लिखे थे उनमें 'भारत की जनता को जाग्रत करने' का सुर ही विशेष रूप से झंकृत होता था और उनमें देशसेवा तथा जातीयताबोध को उद्बुद्ध करने की स्फूर्ति थी।

१८९३ ई० के २० अगस्त को अमेरिका से आलासिंगा को लिखित पत्र से स्वामीजी का हृदयवेदना की गंभीरता हमारे हृदयों को स्पर्श करती है। उन्होंने लिखा था—" कल स्त्री-कैदखाने की अध्यक्षा मिसेज जानसन् यहाँ आयी था। (यहाँ कैदखाना या जेलखाना नहीं कहा जाता, उसका नाम है चरित्र-शोधनागार)। अमेरिका म मैंने जो कुछ देखा उनमें यह एक अपूर्व वस्तु है। अपराधियों के साथ कैसा हार्दिक व्यवहार किया जाता है, कैसे उनका चरित्र सशोधित होता है, फिर वे लोग लौट आकर कैसे समाज के आवश्यक अग रूप से परिणत होते हैं। ये सब बातें कैसी अद्भुत और सुन्दर हैं! बिना देखे तुम्हें विश्वास ही नहीं होगा। इसे देखकर अपने देश की बात सोचने से मेरे हृदय में बहुत ही खेद उत्पन्न हुआ। भारत में हम गरीबों, साधारण लोगों और पतितों को किस दृष्टि से देखते हैं? उन्हें कोई उपाय नहीं है, भागने का कोई रास्ता नहीं है, उठने का उपाय नहीं है। भारत के दरिद्रों, पतितों और पापियों को सहारा देने वाला कोई मित्र नहीं है। "राक्षस की तरह निष्ठुर समाज उन पर निरन्तर आघात करता आ रहा है। "सुनो मित्र हिन्दू धर्म

तो शिक्षा दे रहा है कि विश्व में जितने प्राणी हैं सभी तुम्हारी आत्मा के अनेक रूप मात्र हैं। समाज की इस प्रकार हीन अवस्था के कारण है—केवल इस तत्त्व को कार्य रूप में परिणत न करना, सहानुभूति और हार्दिकता का अभाव।···हिन्दू धर्म की तरह अन्य कोई भी धर्म ऐसे उच्च स्वर में मानवात्मा की महिमा का प्रचार नहीं करता। फिर यही हिन्दू धर्म जिस प्रकार पैशाचिक भाव से गरीबों और पतितों का गला रौंदता है संसार में और कोई धर्म वैसा नहीं करता। भगवान् ने मुझे दिखा दिया है कि इसमें धर्म का कोई दोष नहीं है···।"

एक दूसरी चिट्ठी में उन्होंने लिखा था— "आगामी पचास वर्षों के लिए अन्य सभी देवताओं को मन से निकाल देना होगा। एकमात्र जाग्रत देवता है हमारी जाति। इस विराट् की पूजा ही हमारी प्रधान पूजा होगी। सब से पहले हम जिस देवता की पूजा करेंगे वह है हमारे स्वदेशवासी।"

उन्होंने देश की दरिद्रता दूर करने के लिए कार्यकरी शिक्षा का योग्य प्रबन्ध करने के लिए देशवासियों को उद्बुद्ध किया है। सार्वभौम वेदान्त की वाणी के प्रचार के लिए मद्रास के शिष्यों को 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका के प्रकाशन के लिए रुपये भेज कर उत्साहित किया। स्वामीजी की उद्बोधनवाणी आकाश में विलीन नहीं हो गयी बल्कि अनेकों के हृदय में दुर्जय अनुप्रेरणा रूप से वह प्रविष्ट हो गयी। तन्द्राच्छन्न भारत ने उनके उदात्त आह्वान का उत्तम उत्तर दिया। मद्रास और कलकत्ते में दो स्थायी केन्द्र स्थापित हुए। और भी अन्य अनेक प्रकार से उनके गुरुभाई संगठनमूलक प्रचारकार्य में व्रती हुए। स्वामीजी के मन में एक बड़ा शक्तिशाली संघ स्थापित करने की परिकल्पना थी। जातीय उन्नति के लिए संघशक्ति का कितना प्रयोजन है उसे वे पाश्चात्य देशों में जाकर अच्छी तरह जान गये थे। उन्होंने अपने एक गुरुभाई को लिखा था "तुम्हारी जाति में Organisation (संघबद्ध होकर काम

करने) की शक्ति का एकदम अभाव है। यह अभाव ही सारे अनर्थों का मूल है। पाँच आदमी मिलकर एक काम करने में कोई भी राजी नहीं होता। Organisation (संगठन) के लिए प्रथम आवश्यकता है Obedience (आज्ञाकारिता) की।..." इसी ढंग से स्वामीजी अमेरिका में बैठ कर ही भारत में अपना कार्यक्षेत्र तैयार करने लगे।

बहुत अधिक परिश्रम और दुश्चिन्ता से स्वामीजी का शरीर इतना अधिक दुर्बल हो गया कि शिष्य लोग बहुत ही चिन्तित हो पड़े। कुछ विश्राम की आवश्यकता प्रतीत हुई। मौका भी मिल गया। एक शिष्या ने सेन्ट लारेन्स नदी के मध्यस्थित 'थोजन्ड आईलैन्ड पार्क' (सहस्रद्वीपोद्यान) के अपने घर में विश्राम के लिए स्वामीजी को निमन्त्रण भेजा। यह स्थान बहुत ही निर्जन तथा पेड़पौधों से घिरा हुआ था। विशाल नदी के बीच में और भी अनेक छोटे बड़े द्वीप थे। स्वामीजी को वह प्रस्ताव ईश्वर प्रेरित रूप से प्रतीत हुआ। वे अपने बारह शिष्यों के साथ डेढ़ महीने तक उस एकान्त स्थान में रहे (१८९५ ई०)। वे अधिकांश समय ध्यान में बिता देते थे। यह उनका सबसे आनन्ददायक विश्राम था। बाकी समय शिष्यों के धर्मजीवन गठित करने के काम में व्यतीत होता था। सुबह और शाम को शिष्यों को लेकर वे ध्यान और शास्त्रचर्चा का क्लास करते थे।

प्रथम दिन बाईबिल के 'जान' लिखित सुसमाचार के अवलम्बन से आलोचना आरम्भ हुई। उसके अनन्तर वेदान्त सूत्र, गीता, उपनिषद, योग दर्शन, नारद भक्ति सूत्र, अवधूत गीता आदि ग्रन्थ भी आलोचना और अध्यापना के विषय हुए। वे जिस प्रकार के प्राणस्पर्शी धर्मोपदेश देते थे उन्हीं के अवलम्बन से मिस वाल्डो नामक एक शिष्या ने 'Inspired Talks' या देववाणी नामक ग्रन्थ लिखा। जिन बारह शिष्यों ने स्वामीजी को उस परिवेश में पाने का सौभाग्य प्राप्त किया था उनमें से दो ने स्वामीजी से सन्यास दीक्षा और पाँच ने ब्रह्मचर्य व्रत को ग्रहण किया था। अन्य लोगों ने भी उन्हें गुरु मान लिया था। वृक्ष लता शोभित द्वीप के निर्जन स्थान में कुछ दिन निवास

करके स्वामीजी अत्यन्त आनन्दित हुए। बीच बीच में वे अपने हाथ से रसोई पकाकर शिष्यों को भारतीय खाद्य खिलाते थे और साथ साथ पुराण आदि ग्रन्थों से नीतिपूर्ण कथा कहकर सुनाते थे।

स्वामीजी न्यूयार्क नगर में लौट आकर फिर से प्रचारकार्य में लग गये। नियमित क्लास लेने के अतिरिक्त विभिन्न स्थानों में भाषण देने के लिए वे निमन्त्रित होते थे। उधर ईश्वर की इच्छा से यूरोप में श्रीरामकृष्ण देव की वाणी के प्रचार के लिए भूमि प्रस्तुत हो रही थी। कई अङ्गरेज मित्रों ने स्वामीजी को इङ्गलैण्ड जाने के लिए बार बार प्रार्थना कर पत्र लिखे—"यहाँ वेदान्त प्रचार के लिए विस्तृत क्षेत्र पड़ा है। आप के आने से ही सारा प्रबन्ध हो जायगा।" इस निमन्त्रण के भीतर स्वामीजी को भगवान का इङ्गित दिखाई पड़ा। ठीक उसी समय न्यूयार्क के एक धनिक मित्र पेरिस होकर इङ्गलैण्ड जा रहे थे। उन्होंने स्वामीजी को अपने साथी होने के लिए अनुरोध किया। स्वामीजी उनके साथ अगस्त के बीच में रवाना हुए। पेरिस में वे नेपोलियन का समाधिस्थान, चित्रशाला, गिरजा, म्यूजियम आदि द्रष्टव्य स्थानों को देखकर विशेष आनन्दित हुए। स्वामीजी कहीं भी अशांत नहीं रहते थे। यहाँ भी कुछ विशिष्ट विद्वानों से उनका परिचय हुआ।

अठारह

इङ्गलैण्ड में पधारने के पूर्व अँगरेज लोग विजित जाति के एक हिन्दू प्रचारक को किस भाव से ग्रहण करेंगे यह उनकी चिन्ता का विषय था। परन्तु कुछ दिनों के भीतर ही उनका मन संशयरहित हो गया। वे मिस मूलर और मिस्टर स्टार्डी आदि कुछ मित्रों के निमन्त्रण से लन्दन गये थे

और उन्हीं के मकान में रहकर ही टोपद्र को लन्दन के दर्शनीय स्थानों को देखने लगे। सुबह शाम आलोचना क्लास होता था और जो लोग भेंट करने के लिए आते थे उनसे वे बातचीत करते थे। महान तेजस्वी इस तरुण सन्यासी ने थोड़े ही दिनों के भीतर अनेक व्यक्तियों की दृष्टि आकर्षित की। उनका नाम चारों ओर फैल गया। तीन सप्ताहों के भीतर ही विशिष्ट क्लब तथा सोसाइटियाँ उन्हें निमन्त्रण भेजने लगीं। उच्च वर्ग तथा शिक्षित समाज के अनेक स्त्री पुरुष यहाँ तक कि धर्म प्रचारक लोग भी उनके प्रति आकृष्ट हुए। समाचार पत्र उनकी प्रशंसा से पूर्ण होने लगे।*

१८९५ के २२ अक्टूबर को पिकाडिला स्थित प्रिंसेस हाल में स्वामीजी ने 'आत्मज्ञान' के विषय पर जो भाषण दिया उसके प्रभाव के सम्बन्ध में 'स्टैण्डर्ड' पत्रिका ने लिखा था—' उस दिन एक भारतीय युवक सन्यासी ने प्रिन्सेप हाल में व्याख्यान दिया था। राजा राममोहन राय के बाद एक केशवचन्द्र सेन के अतिरिक्त भारतवासियों में ऐसे उत्तम वक्ता कभी इंगलैण्ड के व्याख्यानमञ्च पर नहीं दिखाई पड़े। व्याख्यान देते समय उन्होंने महात्मा बुद्ध और ईसा मसीह के दो चार बातों की तुलना में अगणित कल-कारखाना, विविध वैज्ञानिक आविष्कारों तथा अथादि के द्वारा मनुष्य जाति का कितना मामूली उपकार हो रहा है उस सम्बन्ध में तीव्र मन्तव्य प्रगट किया। व्याख्यान देते समय उन्होंने किसी प्रकार की स्मारक लिपि की सहायता नहीं ली थी। उनके गले का स्वर मधुर और भाषण में एक भी बात नहीं अटकती थी। "

राममोहन राय और केशवचन्द्र सेन ने दीर्घकाल तक प्रचार के फल-स्वरूप जिस स्थान पर अधिकार कर लिया था स्वामी विवेकानन्द ने एक ही

---

* "अङ्गरेज जाति सहज में कोई नया भाव ग्रहण करना नहीं चाहती है। परन्तु उनके मन में एक बार कोई नया भाव प्रविष्ट करा सकने से वे किसी तरह उसका परित्याग नहीं करते"—अङ्गरेज जाति के इस विशिष्ट गुण का स्वामीजी ने प्रथम कई दिनों के भीतर ही आविष्कार कर लिया था।

भाषण से उस स्थान पर अधिकार जमा लिया। उनका प्रत्येक व्याख्यान अनेक समाचार पत्रों में उच्च प्रशंसा पाने लगा। कुछ दिनों के भीतर ही उनका यश इतना अधिक फैल गया कि अनेक समाचार पत्रों के सम्पादक उनसे मिलने आने लगे। २३ अक्टूबर को 'वेस्ट मिनिस्टर गजट' के संवाद दाता ने लिखा था "स्वामीजी जब बात करते हैं तो उनका मुख बालक के मुख की तरह उज्ज्वल हो उठता है। उनका मुख बहुत ही सरल, निष्कपट और सद्भावपूर्ण प्रतीत होता है। जितने व्यक्तियों के साथ आज तक मेरी भेंट हुई है उनमें स्वामीजी हो एक अपूर्व सात्विक भाव पूर्ण व्यक्ति हैं, इस बात को मैं निस्सन्देह कह सकता हूँ।"

स्वामी जी ने अङ्गरेज जाति के विशिष्ट गुणों का आविष्कार करके उनके अन्तर पर अधिकार जमा लिया और वे उनकी गुणग्राहकता पर मुग्ध हुए। इसी कारण वे इङ्गलैण्ड को भारत की आध्यात्मिकता की प्रतिष्ठा का उपयुक्त स्थान समझते थे। उनकी एक चिट्ठी में लिखा है—" अङ्गरेजों के सम्बन्ध में मेरी धारणा आमूल परिवर्तित हो गयी है। ब्रिटिश समाज की सैकड़ों त्रुटियों के रहते हुए भी किसी भाव धारा के प्रचार के यन्त्र रूप से वह सर्वश्रेष्ठ है। मैं अपने विचारों को इस जाति के केन्द्रस्थल में रखना चाहता हूँ, उससे वे सारे संसार में फैल जायगे। "

अङ्गरेज जाति के सम्बन्ध में उनका मत था "अंग्रेजों के प्रति मुझसे अधिक घृणा का भाव लेकर ब्रिटिश भूमि में कोई नहीं आया है और अब यहां ऐसा कोई भी उपस्थित नहीं है जो अङ्गरेज जाति को मुझसे अधिक प्यार करता हो।"

इंगलैण्ड के उच्च वर्गीय लोगों के मकानों में जो बड़ी बड़ी आलोचना सभायें होती थीं उनमें से एक का बहुत ही सुंदर चित्र समाचार पत्र में दिखाई पड़ता है—" यथार्थ में ही लन्दन के माननीय परिवारों की महिलायें कुर्सी न मिलने के कारण ठीक भारतीय शिष्यों की तरह श्रद्धा के साथ फर्श पर पैर समेट कर बैठे व्याख्यान सुनते देखना एक विरल दृश्य है। स्वामीजी ने

अङ्गरेजों के हृदय में भारत के प्रति जो प्रेम और सहानुभूति का सचार किया था वह भारत की उन्नति के लिए बहुत ही सहायक होगा।" इगलैंड के 'इन्डियन मिरर' पत्र मे प्रकाशित हुआ था—" "हम आनन्द के साथ लिख रहे हैं कि स्वामी विवेकानन्द ने लन्दन के अनेक विशिष्ट सज्जनों और महिलाओं की दृष्टि आकर्षित की है। उनके हिन्दू-दर्शन तथा योग सम्बन्धी क्लासों में अनेक उत्साही, धर्मपिपासु और श्रद्धालु श्रोता उपस्थित रहते हैं।"

स्वामीजी तीन बार लन्दन आये थे। १८९५ ई० मे लगभग तीन मास १८९६ ई० के प्रथम भाग में प्राय चार मास और १८९६ के अन्तिम भाग में प्राय तीन मास स्वामीजी ने वहाँ प्रचार कार्य चलाया था। इगलैण्ड में उनका वेदान्तप्रचार बहुत ही सफल हुआ था। उसके फलस्वरूप उन्होंने ऐसे कुछ अङ्गरेजों को पाया था जिन्होंने उनके काम के लिए आत्म नियोग किया था। उनमें मिस मूलर, जे० जे० गुडविन, मिस मार्गरेट नोबल (भगिनी निवेदिता) तथा मिस्टर और मिसेज सेवियर के नाम विशेष उल्लेख-योग्य हैं। इनमे से बहुतों ने भारत की सेवा में आत्मोत्सर्ग किया था।

स्वामीजी के प्रचार का फल कितना गभीर और सुदूरप्रसारी हुआ था उसे समझने के लिए वाग्मिप्रवर विपिनचन्द्र पाल के द्वारा १८९८ ई० के १५ फरवरी के 'इन्डियन मिरर' पत्रिका मे लिखित पत्र विशेष सहायता करेगा।* वे स्वामीजी के इगलैण्ड छोड़ने के १४ मास के बाद उस देश में

---

* उन्होंने लिखा "भारत में अनेकों की धारणा है कि इगलैंड में स्वामी विवेकानन्द के भाषण विशेष प्रभावशाली नही हुए थे और उनके मित्र तथा समर्थकों ने साधारण कार्यों को अतिरंजित करके प्रकाशित किया था, परन्तु मैं यहाँ आकर सर्वत्र ही उनका असाधारण प्रभाव देख रहा हूँ। इङ्गलैंड में मैंने अनेक व्यक्तियों से वार्तालाप किया है जो लोग यथार्थ में ही स्वामी विवेकानन्द के ऊपर गभीर श्रद्धा रखते हैं। यद्यपि मैं उनके सम्प्रदाय का नहीं हू और यह भी सत्य है कि उनके साथ मेरा मतभेद है तथापि मुझे कहना पड़ता है कि सचमुच ही उन्होंने अनेकों की आँखें खोल

गये थे। उस समय भी उन्होंने वहाँ स्वामीजी के प्रचार का बहुत अधिक प्रभाव देखा। हमारे देश के प्राचीन लोग हिन्दू-धर्म शब्द से जो कुछ समझते हैं स्वामीजी उस प्रकार के हिन्दू-धर्म का प्रचार करने के लिए लन्दन में नहीं गये थे। 'वेस्ट मिनिस्टर गजट' के संवाददाता के प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने कहा था—"...कोई नूतन सम्प्रदाय स्थापित करने के लिए मैं यहाँ नहीं आया हूँ। मेरे गुरुदेव श्रीरामकृष्ण परमहंस देव से मैंने जो बातें पायी हैं उसी का संसार में प्रचार करना ही मेरा उद्देश्य है। और मुझे विश्वास है कि वेदान्त का उदार भाव सभी सम्प्रदाय अपने अपने धर्ममत कायम रखकर ग्रहण कर सकते हैं।"

दी हैं तथा उनका हृदय उदार और प्रशस्त कर दिया है। उनके प्रचार-कार्य के फलस्वरूप आजकल अनेक व्यक्ति ऐसा विश्वास रखते हैं कि प्राचीन हिन्दू-शास्त्र में अनेक आध्यात्मिक सत्य निहित हैं। उन्होंने इस देश के जन-साधारण के मन में केवल इन्हीं भावों को प्रविष्ट ही नहीं करा दिया है बल्कि वे भारत और इङ्गलैंड को एक सुवर्णमय योगसूत्र के द्वारा दृढ़ रूप से बाँधने में सफल हुए हैं।

"मैंने इससे पहले मिस्टर हाविस लिखित 'The Dead pulpit' नामक निबन्ध से Vivekanandism के सम्बन्ध में जो अंश उद्धृत किया है उसमें आप लोग जान गये होंगे कि स्वामी विवेकानन्द-प्रचारित मतवादों के प्रभाव के कारण अनेक व्यक्ति प्रकट रूप से ईसाई चर्च के बन्धन से अलग हो गये।...उसके अतिरिक्त मैंने अनेक शिक्षित अंगरेजों को देखा है जिन लोगों ने भारत के प्रति श्रद्धा करना सीखा है तथा भारतीय धर्म-मत और आध्यात्मिक तत्त्वों को सुनने के लिए विशेष आग्रह प्रगट किया है।" केवल अङ्गरेजों में ही नहीं स्वामीजी के प्रचार के कारण समस्त ऐंग्लो-सैक्सन जाति के भीतर भारतीय धर्म तथा संस्कृति के सम्बन्ध में जानने तथा उन्हें जातीय जीवन में परिणत करने की चेष्टा सक्रिय हो उठी थी।

उनके उदार भाव से वे संवाददाता इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि उन्होंने 'लन्दन में भारतीय योगी' नाम से स्वामीजी के सम्बन्ध में उक्त समाचार पत्र में विशेष तथ्य पूर्ण निबन्ध लिखा था।

लन्दन में स्वामीजी का प्रचारकार्य अच्छी तरह अग्रसर हो रहा था किन्तु अमेरिका के शिष्यवर्ग के उन्हें लौट आने के लिए बारम्बार चिट्ठी लिखते रहने से तथा अमेरिका में कार्य के स्थायित्व के विषय में सोचकर वे अमेरिका वापस जाने के लिए तैयार हुए।

लन्दन से स्वामीजी ने १८९५ ई० के १८ नवम्बर को आलासिंगा को लिखा था " इंगलैण्ड में मेरा काम बहुत ही उत्तम हुआ है, इसे देखकर स्वयं मुझे ही आश्चर्य हुआ है। अंग्रेज लोग समाचार पत्रों में भम्भन्नाजी नहीं करते, बल्कि वे चुपचाप काम करते हैं। दल के दल लोग आ रहे हैं। किन्तु इतने मनुष्यों को लेने मेरे यहाँ जगह नहीं है। इस कारण बड़े-बड़े घर की महिलायें तथा अन्यान्य व्यक्ति जमीन पर ही पल्थी मारकर बैठ जाते हैं। मैं उन्हें ऐसी कल्पना करने को कहता, मानो वे भारत के आकाश के नीचे शाखा प्रशाखा-युक्त विस्तृत वटवृक्ष की छाया में बैठे हुए हैं। वे लोग इस भाव को पसन्द भी करते हैं।

मुझे आगामी सप्ताह यहाँ से चला जाना होगा, इसी से ये बहुत दुःखी हैं। कोई कोई सोचते हैं, यदि मैं इतनी शीघ्र यहाँ से चला जाऊँ तो यहाँ के काम में हानि होगी। परन्तु मैं ऐसा नहीं सोचता। मैं किसी व्यक्ति या वस्तु के ऊपर निर्भर नहीं रहता—एकमात्र प्रभु ही मेरे आश्रय हैं और वह ही मेरे भीतर से काम कर रहे हैं।"

किन्तु इंगलैण्ड छोड़ने के पूर्व स्वामीजी ने कुछ विशिष्ट मित्रों को आरब्ध कार्य चलाते रहने का परामर्श दिया। उसके अनुसार मिस्टर स्टार्डी आदि शिष्य लोग गीता, उपनिषद् आदि के अवलम्बन से विभिन्न व्याख्यानों में धर्मालोचना चलाने लगे।

* * *

लन्दन से स्वामीजी न्यूयार्क लौट आये और अपने कार्य को सुदृढ़ भित्ति के ऊपर प्रतिष्ठित करने के लिए गठनमूलक कार्य में ब्रती हुए। भारतवर्ष से अपने गुरुभाइयों को प्रचार कार्य के लिए लाने का प्रबन्ध भी उन्होंने कर दिया। इधर-भारत की पुकार में जो करुण सुर था वह भी उनके मन को चंचल कर रहा था। किन्तु अमेरिका के कार्य को सुप्रतिष्ठित करने के पहले वे भारत नहीं लौट सकते थे। उस समय स्वामीजी को अमानुषिक परिश्रम करना पड़ा था—जो उनके स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति के लिए विशेष हानिकारक हुआ। परन्तु उसकी वे परवाह नहीं करते थे।

उन्होंने अपने कार्य को स्थायी करने के उद्देश्य से ऐसे मनुष्य तैयार करने के काम में मन लगाया, जो लोग उनकी अनुपस्थिति में, जिस अंकुर को उन्होंने उगाया है, उसे बचाये रख सकें। उन्होंने न्यूयार्क में वेदान्त-समिति स्थापित की।* बोस्टन तथा अन्यान्य शहरों में उसी तरह के प्रतिष्ठान स्थापित करके शिष्यों और छात्रों के सहयोग से स्वामीजी प्रचारकार्य चलाने लगे।

उनकी वाणी के लिए नरनारियों की भीड़ लग जाती थी वे क्लासें तथा

---

* १८९६ ई० के फरवरी मास में स्वामीजी ने न्यूयार्क में वेदान्त सोसाइटी स्थायीभाव से स्थापित की। मिस्टर फ्रान्सिस एच० लेगेट प्रेसिडेन्ट और स्वामीजी के अन्यान्य दीक्षित शिष्य विभिन्न कार्यकारक निर्वाचित हुए।

'ब्रह्म-वादिन्' पत्रिका के प्रथम खंड के पृष्ठ २०७ से दिखाई पड़ता है—१८९४ ई० के नवम्बर में स्वामीजी ने न्यूयार्क में विभिन्न विभागों के लिए कार्य निर्वाहकों के सहित एक समिति स्थापित की थी। परन्तु उस समिति तथा उसके कामकाज का कोई विवरण नहीं मिलता (रामकृष्ण मठ और मिशन का इतिहास—पृष्ठ १७)।

विश्वविद्यालयों से आते थे। शुद्ध-चेता ईसाई और स्वाधीन-चेता मनीषी अत्यन्त आग्रह से आने लगे। फिर सत्ययवादी समालोचक, नास्तिक आदि भी आये। उन्होंने सबका स्वागत किया और बिना भेदभाव के उनको उपदेश दिया। एंग्लो सैक्सन जाति में जो गुण थे, अच्छी बातें थीं, उनकी उन्होंने उपेक्षा नहीं की और जो दोष थे, उनकी भी तीव्र समालोचना करने में विरत नहीं हुए। पाश्चात्य की अर्थनीति, शिल्प व्यवस्था, जनशिक्षा, अजायबघर, कारखाने, विज्ञान की उन्नति, स्वास्थ्य व्यवस्था तथा विभिन्न जनहितकर कार्य —इन सभी की उन्होंने प्रशंसा की और भारत की उन्नति के लिए इन सभी का प्रवर्तन आवश्यक है, इसे भी उन्होंने श्रद्धा के साथ ग्रहण किया। किंतु साथ ही साथ पाश्चात्य सभ्यता की भौतिक भोगस्पृहा, सुवर्ण की अपरिमित पूजा, साम्राज्यवाद, विश्व को ग्रास करने की लालसा, दूसरी जातियों का रक्त शोषण कर अपना देह को पुष्ट करना आदि साम्य और मैत्री के जितने विरोधी हैं उसे भी उन्होंने कठोर शब्दों में प्रकट किया। स्वामी विवेकानन्द समग्र विश्व की कल्याण-कामना ही कर गये हैं, तथा विश्व के कल्याण का मार्ग भी दिखा गये हैं। उसके भीतर प्रधान था पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता के मिलन से विश्वमैत्री स्थापन। इसीलिए उस मिलन के विरोधी सभी बातें उनकी समालोचना का विषय थीं। यहाँ तक कि इंगलैंड की छाती पर खड़े होकर उन्होंने वणिक्‌समृद्धि, शोणित लोलुप युद्ध तथा असहिष्णु धर्म मत के प्रति तीव्र कटाक्ष करते हुए कहा था—"इस मूल्य से हिंदू तुम्हारे दम्भगर्भ और आडम्बरपूर्ण सभ्यता के अनुरागी नहीं होंगे।" **

पाश्चात्यों के लिए उनका काम था भारत की आध्यात्मिक सम्पद् को वहन कर वहाँ ले जाना और वहाँ से भारत तथा प्राच्य के लिए उन्होंने धन सम्पद् और शक्ति अर्जन के उपाय रूप विज्ञान को लेना चाहा था। इस आध्यात्मिकता और विज्ञान के विनिमय द्वारा वे पारस्परिक सहायता के माध्यम से नयी सभ्यता को गठित करने के काम में लगे हुए थे। अनेक शताब्दियों के अनन्तर भारतीय संस्कृति ने पुनः स्वामी विवेकानन्द के भीतर

से निर्गमन-पथ निकाल लिया था।* समस्त विश्व के स्थायी कल्याण के लिए इसका विशेष प्रयोजन था और है।

स्वामीजी का पाश्चात्य गमन एक आकस्मिक घटना नहीं थी। वह ईश्वर की विश्वकल्याण परिकल्पना का अंशविशेष था।...

स्वामीजी कभी नोट लिखकर भाषण नहीं देते थे। इस कारण उनके बहुत से भाषण लुप्त हो गये हैं। उनकी प्रतिलिपि अब नहीं मिल सकती। धर्ममहासम्मेलन के बाद स्वामीजी ने संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न स्थानों में दो वर्षों तक जो सैकड़ो भाषण दिये थे तथा आलोचनायें की थी यदि वे रक्षित होते तो उनसे हजारों पृष्ठों का ग्रंथ बन सकता था। परन्तु उन भाषणों की रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं हुआ था। १८६५ ई० के अन्तिम भाग में उनके न्यूयार्क लौट आने के अनन्तर उनके शिष्यों ने उनकी वक्तृताओं की रक्षा

---

* स्वामीजी के श्रेष्ठ दान के सम्बन्ध में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने कहा था—"...थोड़े दिन पहले बंगाल के जिस महात्मा का लोकान्तर हुआ है वे स्वामी विवेकानन्द पूर्व और पश्चिम को दाहिने और बायें रखकर बीच में खड़े हो सके थे। भारतवर्ष के इतिहास के भीतर पाश्चात्य को अस्वीकार करके भारतवर्ष को संकीर्ण संस्कारों में चिरकाल के लिए संकुचित करना उनके जीवन का उपदेश नहीं था। ग्रहण करने, मिलन कराने और सृजन करने की प्रतिभा ही उनमें थी।...उन्होंने भारतवर्ष की साधना को पश्चिम में और पश्चिम की साधना को भारतवर्ष में देने और लेने के पथ की रचना के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया था।" (रामकृष्ण मिशन शिक्षा मन्दिर, बेलुड़ मठ के द्वारा प्रकाशित, संदीपन १९६१ ई०, संख्या–२)

स्वामी विवेकानन्द प्राच्य और प्रतीच्य के मिलन-सेतु-स्वरूप थे। सारे विश्व में साम्य और मैत्री स्थापित करने के गुरुदायित्व को उन्होंने अपने कंधे पर ले लिया था। उनकी यह शुभ प्रचेष्टा कहाँ तक सफल हुई है इतिहास उसे प्रमाणित करेगा।

के लिए दो सांकेतिक लिपिकारों को नियुक्त किया था। किन्तु फल सन्तोषजनक नहीं हुआ। स्वामीजी जिस विषय पर भाषण देते थे उस विषयवस्तु के साथ परिचित न रहने के कारण तथा उनके बहुत द्रुत बोलने के कारण उनसे भाषणों का विवरण रखना सम्भव नहीं हुआ।

उस निराशा के समय दैव योग से जे० जे० गुडविन नामक एक अँगरेज सांकेतिक लिपिकार मिल गये जो स्वामीजी के भाषणों को लिखने में समर्थ हुए। कुछ दिनों के भीतर ही वे स्वामीजी के प्रति अनुरक्त और उनकी विचारधारा के साथ परिचित होकर स्वामीजी के भाषणों तथा आलोचनाओं को बहुत ही सुन्दर रूप से सांकेतिक लिपि में लिख रखने लगे। उस समय के बाद पाश्चात्य देशों में तथा भारतवर्ष में स्वामीजी की वक्तृतायें जो पुस्तक के रूप में मिल रही हैं वे सभी गुडविन की कृति हैं।* स्वामीजी ने कर्मयोग और भक्तियोग के सम्बन्ध में जो भाषण दिये थे वे भी पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं।

न्यूयार्क का कार्य सुप्रतिष्ठित करके स्वामीजी गुडविन को साथ लेकर

---

* स्वामीजी गुडविन को बहुत प्यार करते थे। कहते थे, "My faithful Goodwin" मेरा विश्वस्त गुडविन। स्वामीजी के पाश्चात्य देशों से लौट आने के बाद १८९८ ई० के किसी समय गुडविन 'मद्रास मेल' समाचार-पत्र के सम्पादकीय विभाग में नौकरी लेकर मद्रास चले आये और १८९९ के २ जून को उत्तकामंड में "Enteric Fever से आक्रान्त होकर सहसा दिवंगत हो गये। उस समय उनके पास सांकेतिक लेख में स्वामीजी की अनेक वक्तृतायें थीं। नौकरी लेने के बाद उन वक्तृताओं को प्रचलित अङ्गरेजी में लिखने का सम्भवतः उनको समय नहीं मिला था। उससे स्वामीजी की शताधिक वक्तृतायें तथा वार्त्तालाप नष्ट हो गये हैं। स्वामीजी के सभी भाषण प्रकाशित होते तो संसार का ज्ञान भण्डार विविध प्रकार से और भी अधिक समृद्ध होता।

डेट्रएट में पन्द्रह दिनों के लिए गये थे। उस समय उन्होंने मानो अपने को वितरित कर दिया था। प्रतिदिन भाषणों के अतिरिक्त उन्हें अनेक व्यक्तियों के साथ वार्तालाप भी करना पडता था। उनके अन्तिम दिन के भाषण के बारे में एक प्रत्यक्षदर्शी का वर्णन इस प्रकार है—"डेट्रएट के जन साधारण को उन्होंने केवल मन्दिर में अन्तिम दर्शन दिये थे। स्वामीजी के अनुरागी भक्त रैबाई लुई ग्रोसमैन उस यहूदी मन्दिर के पुजारी थे। उसदिन रविवार था। सन्ध्या समय जनता की भीड इतनी अधिक हो गयी थी कि हमें डर होने लगा कि लोग विह्वल होकर कोई काड न कर बैठे। सडक के ऊपर भी लोगों की भीड थी और सैंकडों व्यक्ति लौट भी जा रहे थे। स्वामी विवेकानन्द ने अपनी इस विराट श्रोतृमण्डली को मन्त्रमुग्ध कर लिया था। उनके भाषण का विषय था 'पाश्चात्य जगत् के प्रति भारत की वाणी और सार्वजनीन धर्म का आदर्श।' उनका भाषण अत्यन्त हृदयग्राही तथा पाण्डित्यपूर्ण हुआ था। •"

डेट्रएट के कार्यों का भार अपने शिष्य स्वामी कृपानन्द के ऊपर देकर स्वाम जी बोस्टन लौट आये। उस समय उन्होंने शत शत अनुरागी श्रोताओं के सामने विभिन्न स्थानों में अनेक भाषण दिये थे। उनमें 'एलेन जिमनेशियम' में चार, केम्ब्रिज में उलिबुल के मकान में दो, हार्वर्ड विश्वविद्यालय के स्नुधमण्डली क सामने एक और 'विंश शताब्दि' सभा के भाषण विशेष उल्लेख-योग्य हैं। हार्वर्ड विश्वविद्यालय में 'वेदान्त दर्शन' के सम्बन्ध में स्वामीजी का भाषण ऐसा पाण्डित्यपूर्ण तथा हृदयग्राही हुआ था कि उस विश्वविद्यालय के सभ्यों ने उन्हें वहाँ प्राच्य दर्शनों के अध्यापक होने के लिए बार बार अनुरोध किया था। परन्तु उन्होंने कहा था—"मैं सन्यासी हूं नौकरी कैसे करूँगा?"

इतने में स्वामीजी के कर्मयोग और भक्तियोग नामक दो ग्रथ प्रकाशित हुए, जिनका प्रभाव अमेरिका क विचारवान् मनस्तत्त्वविद तथा शिक्षित समाज में विशेष रूप से फैल गया। किन्तु अत्यधिक परिश्रम से स्वामीजी की स्नायु-

सम्प्रदाय अत्यन्त दुर्बल हो गयी थी। वे जिस सार्वभौम वेदान्त मत का प्रचार करते थे उसमें सभी धर्मों तथा मतवादों का स्थान था। इस कारण उनके मन में एक विश्वमन्दिर (Universal Temple) निर्माण की परिकल्पना क्रमशः रूप ले रही थी जहाँ सभी धर्मों, मतवादों तथा सम्प्रदायों के लोग अपना विरोध, ईर्ष्या और मतभेद भूलकर समवेत रूप से अपने अपने भगवान की उपासना कर सकें।*

वेदान्त धर्म को पाश्चात्य में सुप्रतिष्ठित करने के लिए कैलिफोर्निया के कैस्किल पर्वत के ऊपर १०८ एकड़ जमीन लेकर शिष्यों तथा वेदान्त के छात्रों के साधनभजन के लिए बहुत से कुटीर निर्माण की इच्छा भी स्वामीजी के मन में थी।†

---

* स्वामीजी यह परिकल्पना कार्य में परिणत नहीं कर सके। किन्तु स्वामीजी के परवर्ती ध्वजावाहककारी स्वामी त्रिगुणातीत ने १९०० ई० में स्वामीजी प्रतिष्ठित 'The Vedanta Society of San Fransisco' में १९०९ ई० में 'Hindu Temple' नाम से सभी जातियों की उपासना के लिए प्रथम वेदान्तमन्दिर का निर्माण किया। उस मन्दिर की आवश्यकता खत्म होने के कारण उस केन्द्र के वर्त्तमान अध्यक्ष स्वामी अशोकानन्द ने १९५९ में सानफ्रान्सिस्को नगर में सभी धर्मावलम्बियों के उपासनालय के रूप में और एक मन्दिर का निर्माण किया है। हालिउड केन्द्र के अध्यक्ष स्वामी प्रभवानन्द ने भी वृहत्तर सैन्टो बारबारा नामक स्थान में और एक वेदान्त मन्दिर की स्थापना की है। वर्तमान में अमेरिका में जो दस स्थायी केन्द्र हैं उनके प्रत्येक केन्द्र में ही विश्वमन्दिर के भावानुरूप उपासनालय स्थापित हुए हैं।

† स्वामीजी की जीवित अवस्था में ही उनके गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द ने सानफ्रान्सिस्को से ८० मील दूर सैन एन्टोन वैली के एक निर्जन स्थान में उस प्रकार का कार्य शुरू किया था। उसी तरह का एक विशाल आश्रम

अमेरिका में 'भारत की वाणी' सुप्रतिष्ठित करने में स्वामीजी की जीवनी-शक्ति प्रायः समाप्त हो चुकी थी, तथापि उन्होंने वह कार्य किया था। उनकी अनुपस्थिति में उस देश का काम उत्तम रूप से चलता रहे इसलिए वे प्राणपण से चेष्टा कर रहे थे। उन्होंने अनेक अनुरागी भक्तों को वेदान्त धर्म में दाखिल किया था और अनेक व्यक्ति उनसे ब्रह्मचर्य और सन्यास व्रत लेकर वेदान्त प्रचार में नियुक्त हुए। इसी तरह अमेरिका के उच्च श्रेणी के अनेक विचारशील व्यक्ति दार्शनिक, वैज्ञानिक, अध्यापक, लेखक, लेखिका धर्मप्रचारक स्वामीजी के भाव के प्रति श्रद्धासम्पन्न तथा अनुरक्त हो गये थे।

अमेरिका के काम में जब स्वामीजी इस तरह व्यस्त थे तो इंगलैण्ड के शिष्यों से बार बार आह्वान आने लगे। इंगलैण्ड के कर्षित भूमि में अन्न बीज बोने का समय आ गया था। वे भी तैयार होने लगे। पूर्व प्रबन्ध के अनुसार स्वामी सारदानन्द उन्हें सहायता देने के लिए भारतवर्ष से रवाना हो गये थे। १८९६ ई० के १ अप्रैल को वे लन्दन में उतरे। स्वामीजी भी १५ अप्रैल को न्यूयार्क से इङ्गलैण्ड के लिए चल पड़े। किन्तु जाने के पूर्व अमेरिका के यन्त्र को वेग से सञ्चालित कर गये।

सैन फ्रांसिस्को शहर से थोड़ी दूर के ओलिमा में दो हजार एकड़ पहाड़ी जंगलों को साफ करके स्वामी अशोकानन्द की चेष्टा से तैयार हो गया। संयुक्त राष्ट्र के उत्तर पश्चिमांश में पोर्टलैंड वेदांत सोसाइटी के द्वारा १२० एकड़ जंगल के भीतर साधनभजन के उपयोगी एक दूसरा आश्रम भी स्थापित हुआ है। और भी छोटे बड़े कई रिट्रीट हैं। इसी ढंग से अमेरिका के विभिन्न स्थानों में स्वामीजी की परिकल्पना रूपायित हुई है।

उन्नीस

लन्दन में पहुँच कर स्वामी सारदानन्द को देखकर स्वामीजी अत्यन्त आनन्दित हुए। दोनों ने ही मिस्टर स्टर्डी के मकान में रहकर प्रचारकार्य्य आरम्भ किया। साथ साथ स्वामी सारदानन्द को प्रचारक रूप से तैयार करना भी स्वामीजी का दूसरा काम था। उन्होंने गुरुभाई को विविध प्रकार से शिक्षा देने के अतिरिक्त अपने विशिष्ट मित्रों के साथ उन्हें परिचित भी करा दिया।

मई के प्रथम सप्ताह से ही नियमित भाव से ज्ञानयोग का क्लास आरम्भ हुआ। इसके अतिरिक्त वे पिकाडिली पिक्चर गैलरी, प्रिन्सेस हाल, विभिन्न आलोचना सभाएँ तथा शिक्षा प्रतिष्ठानों, एनीबेसेन्ट के घर तथा अन्य अनेक स्थानों में भाषण देते थे। इङ्गलैण्ड के श्रोताओं की विचारशीलता ने प्रति स्वाम जी का ध्यान आकृष्ट हुआ। रक्षणशीलता भी उन लोगों में एक विशिष्टता थी। वे अपने पूज्य और प्रियतम गुरुदेव के सम्बन्ध में भी कहीं कहीं बोला करते थे।

संयुक्त राष्ट्र में स्वामीजी को कुछ श्रेष्ठ मनीषी मित्र रूप से मिले थे। किन्तु अँगरेजों के इस प्रकार के दान स्वामीजी के काम में और भी अधिक सहायता देते थे।

लन्दन में रहते समय स्वामीजी और पण्डितप्रवर मैक्समूलर का मिलन एक महत्त्वपूर्ण घटना है। मैक्समूलर पहले से ही श्रीरामकृष्ण के प्रति श्रद्धावान थे। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को 'पूर्वाकाश में उदीयमान नक्षत्र और आधुनिकतम अवतार' रूप से घोषित किया था। केशवचन्द्र सेन के एकाएक धर्म मत परिवर्तन का कारण खोजते हुए उन्होंने श्रीरामकृष्ण का आविष्कार किया था और उसी समय से उस महापुरुष की जीवनी और वाणी जितनी पाते थे उसका संग्रह कर 'नाइनटीन्थ सेन्चुरी' पत्रिका में 'यथार्थ महात्मा' नाम से प्रकाशित किया था। उसी से उस देश में हलचल मच गयी थी। स्वामीजी ने पहले से ही मैक्समूलर के साथ भेंट करने का निश्चय किया था। परन्तु उनका

हार्दिकतापूर्ण आमन्त्रण पाकर स्वामीजी १८९६ के २८ मई को आक्सफोर्ड में वृद्ध प्रोफेसर के घर जाकर उनसे मिले। दोनों का मिलन बहुत ही अन्तरंग भाव से हुआ। श्रीरामकृष्ण के प्रधान शिष्य के रूप में ही स्वामी विवेकानन्द उनके परम श्रद्धा के पात्र थे।

स्वामीजी ने यूरोप के वृद्ध अध्यापक को प्राचीन आर्य्य ऋषियों के अवतार कहकर सम्बोधित किया था।* श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में स्वामीजी ने जैसे ही कहा—"आजकल हजारों स्त्री-पुरुष श्रीरामकृष्ण देव की पूजा कर रहे हैं" वैसे ही वृद्ध अध्यापक का मुखमंडल आनन्दोज्वल हो उठा। उन्होंने आवेग के साथ उत्तर दिया—"इनके ऐसे" व्यक्ति की लोग यदि पूजा न करें तो किसकी करेंगे? उन्होंने उत्साह के साथ और भी पूछा—"आप लोग उन (परमहंस देव) को संसार में परिचित कराने के लिए क्या कर रहे हैं?" उन्होंने बाद में कहा कि यदि आवश्यक उपादान ला दिये जायें तो वे आनन्द से श्रीरामकृष्ण की जीवनी लिखने के लिए तैयार हैं।† स्वामीजी ने पूछा—"आप कब भारत जायेंगे? जिन्होंने हमारे ऋषियों के विचारों की

---

* मैक्समूलर के साथ परिचित होकर स्वामीजी इतने अधिक प्रसन्न हुए थे कि उन्होंने मद्रास के 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका के लिए जो पत्र भेजा था (१८९६ ई० के ६ जून) वह द्रष्टव्य है। उद्बोधन कार्य्यालय के द्वारा प्रकाशित 'हिन्दू धर्मेर जागरण' नामक पुस्तक में मैक्समूलर और पाल डयसेन के साथ स्वामीजी की भेंट का विवरण उनके द्वारा लिखित पत्र के अनुवाद रूप से निकला है उसमें दोनों पक्षों की गम्भीर आन्तरिकता हमें आश्चर्यचकित कर देती है।

† श्रीरामकृष्ण देव की जीवनी के उपादान संग्रह करने के लिए स्वामीजी के लन्दन से रामकृष्णानन्द को लिखे पत्र का एक अंश इस प्रकार है—"१८९६ ई० २४ जून। प्रिय शशी, श्रीजी (श्रीपरमहंस देव जी) के सम्बन्ध में मैक्समूलर का लिखित निबन्ध आगामी मास में प्रकाशित होगा। वे श्रीजी की एक जीवनी लिखने में राजी हुए हैं। वे श्रीजी की सारी

श्रद्धा के साथ आलोचना की है उनकी अभ्यर्थना करने के लिए यहाँ के सभी लोग आनन्द के साथ तैयार रहेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है।" अध्यापक ने आवेग के साथ कहा "तो शायद मैं फिर नहीं लौटूँगा। मेरा शरीर यहीं समाधिस्थ कर देना पड़ेगा।"...

रात को स्वामीजी जब ट्रेन के लिए स्टेशन पर प्रतीक्षा करते थे तो वृद्ध अध्यापक आँधीपानी के भीतर स्टेशन पर आ उपस्थित हुए। उन्हें देख कर स्वामीजी कुछ संकोच के साथ बोले—"इस दुर्योग के भीतर आप कष्ट करके क्यों आये?" अध्यापक ने गद्‌गद्‌ स्वर से उत्तर दिया—"श्रीरामकृष्ण के योग्यतम शिष्य के दर्शन लाभ का सौभाग्य प्रतिदिन नहीं होता।" उन मर्मस्पर्शी बात ने स्वामीजी को विशेष रूप से अभिभूत कर दिया। वह जीवन भर अध्यापक के प्रति विशेष श्रद्धासम्पन्न थे।...

वाणियाँ चाहते हैं। सारी उक्तियों को सजाकर उन्हें भेजो अर्थात् कर्म के सम्बन्ध में एक स्थान में, वैराग्य के बारे में अन्यत्र, वैसे ही भक्ति, ज्ञान आदि के विषय में भी।

तुम्हें यह काम अभी से शुरू करना होगा। केवल जो बातें अंगरेजी में चल नहीं सकतीं उन्हें छोड़ देना। (शौच, पेशाब, थू थू, शरीर के धना-विष्कार्थ स्थान आदि)। अपनी बुद्धि के अनुसार उन शब्दों के स्थान में यथा सम्भव अन्य शब्द लगा देना। 'कामिनी-कांचन का काम कांचन लिखना— Lust and gold etc अर्थात् उनके उपदेश में सार्वजनीन भाव प्रगट करना होगा। यह चिट्ठी किसी को दिखाई न जाय। तुम यह काम समाप्त करके सारी उक्तियों का अंगरेजी अनुवाद classify (श्रेणीविभाग) करके प्रोफेसर मैक्समूलर आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी, इङ्गलैण्ड इस पते पर भेजना।'" स्वामीजी ने सारदानन्दजी को भी उपादान संग्रह में नियोजित किया था। उस संगृहीत उपादानों के अवलम्बन से प्रोफेसर मैक्समूलर ने "श्रीरामकृष्ण की जीवनी और वाणी" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की थी।

मैक्समूलर के साथ भेंट होने के बाद १८९६ ई० के ३० मई को लन्दन से स्वामीजी ने मिसेज बुल को लिखा था—"गत परसों मैक्समूलर के साथ मेरी भेंट हो गया। वे एक ऋषितुल्य व्यक्ति हैं। उनकी उम्र ७० होने पर भी वे युवक की तरह प्रतीत होते हैं। यहाँ तक कि उनके चेहरे पर वृद्ध वयस की रेखा तक नहीं है। हाय! भारतवर्ष और वेदान्त के प्रति उन्हें जितना प्रेम है यदि हमारे भीतर उसका आधा भी रहता! उसके अतिरिक्त योगशास्त्र के प्रति भी वे अनुकूल भाव रखते हैं और उस पर विश्वास करते हैं। परन्तु पाखण्डियों को वह एकदम पसन्द नहीं करते।

"सबसे ऊपर रामकृष्ण परमहंस के प्रति उनकी भक्ति अगाध है और उन्होंने उनके सम्बन्ध में 'नाईन्टीन्थ सेन्चुरी' के लिए एक निबन्ध लिखा है। उन्होंने मुझसे पूछा—'आप उन्हें संसार के सामने प्रचारित करने के लिए क्या कर रहे हैं?' रामकृष्ण देव ने उन्हें अनेक वर्षों से मुग्ध कर रखा है। क्या यह एक सुसमाचार नहीं है? "

* * *

उस समय स्वामीजी व्याख्यान आदि के अतिरिक्त सप्ताह में ५ क्लास और २ प्रश्नोत्तर क्लास करते थे। इस तरह जुलाई मास तक प्रचारकार्य चलाकर वे सेवियर दम्पति और मिस मूलर के साथ यूरोप भ्रमण के लिए निकल पड़े। विश्राम के लिए सभी लोग पहले स्वीजरलैंड गये। एकदिन घूमते हुए पहाड़ के ऊपर एक छोटे उपासना मंदिर में उन्होंने 'मेरी' की पाद पूजा की। मंदिर के पूजारी को आपत्ति हो सकती है इस कारण उन्होंने स्वयं न जाकर मिसेज सेवियर के हाथ देवी की पादपूजा के फूल देकर कहा—"यह भी माँ है"। किसी दूसरे समय एक शिष्य के मैडोना की मूर्त्ति स्वामीजी के सामने लाकर आशीर्वाद देने के लिए कहने पर उन्होंने सिर झुकाकर शिशु ईसा के चरण स्पर्श करके कहा था—"मैं यदि उस समय उपस्थित रहता तो आँसूओं से नहा, छाती के रुधिर से उनका चरण धो देता।"

कुछ दिनों में ही स्वामीजी के स्वास्थ्य में उन्नति दिखाई पड़ी। ...

टटी रुया, जलप्रपात और पर्वतीय शोभा देखकर स्वामीजी अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। ठीक उसी समय जर्मनी के कील विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध अध्यापक पाल डयसेन ने स्वामीजी को उनसे मिलने के लिए निमंत्रण भेजा। तदनुसार स्वामीजी ने कील नगर में जाकर प्रोफ़ेसर के घर में उनसे भेंट की। वेदांत-चर्चा ही अध्यापक का एकमात्र जीवन व्रत था। आलोचना प्रसंग में प्रोफेसर ने कहा—"···वेद और वेदांत की उच्च विचारधारा क्षण भर में ही मन को उन्नत आध्यात्मिक भावराज्य में ले जाती है।···मनुष्य की चिंताशक्ति ने सत्य की खोज करते हुए जिन तत्वों का आविष्कार किया है उपनिषद्, वेदांत दर्शन और शांकरभाष्य उनकी श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति है।"

स्वामीजी के साथ वेदान्त और उपनिषद् की आलोचना से प्रोफेसर इतने अधिक मुग्ध हुए कि उन्होंने स्वामीजी को कुछ दिन वहाँ रह जाने के लिए अनुरोध किया। किंतु लन्दन के काम के लिए यह सम्भव नहीं है जानकर वे स्वयं ही स्वामीजी के साथ वेदान्त की आलोचना के उद्देश्य से पुनः हैम्बुर्ग नगर में जा मिले। सबलोग हालैण्ड की राजधानी एम्सटर्डम नगर में तीन दिन रहकर एकसाथ लन्दन चले गये। स्वामीजी के भाषण सुनकर वेदांत-आशय के उज्ज्वल प्रकाश से प्रोफेसर का अन्तर उद्भासित हो उठा।

लन्दन में दो सप्ताह तक प्रतिदिन उन दोनों की भेंट होती थी। पाश्चात्य के इन दोनों श्रेष्ठ मनीषियों के सम्बन्ध में स्वामी जी ने 'ब्रह्मवादिन' पत्रिका में लिखा था 'भारतवर्ष अपने को जहाँ तक जान पाया है उससे भी अधिक इन दोनों विद्वानों ने जान लिया है। इन दोनों व्यक्तियों के निकट भारतवर्ष विशेष रूप से ऋणी है।" मैक्समूलर सुदीर्घ चालीस वर्षों से वेद पर गवेषणा कर रहे थे। इस कारण उन्हें स्वामी जी आर्य्य ऋषि के अवतार कहते थे।

* * *

इन दिनों स्वामी सारदानन्द न्यूयार्क में विशेष सफलता के साथ वेदांत का प्रचारकार्य चला रहे थे। स्वामीजी ने भी लन्दन लौटकर कुछ दिन

विश्राम के बाद ८ अक्तूबर से नियमित भाषण और क्लास करना आरम्भ कर दिया। उस प्रचार का फल प्रचुर हुआ था। इंगलैण्ड के धर्मप्रचारकों की विचारधारा भी उसके द्वारा विशेष रूप से प्रभावित हुई थी और अनेक मनीषी स्वामीजी के संस्पर्श में आकर उपकृत हुए थे।

पूर्व व्यवस्था के अनुसार इस समय उनके गुरुभाई स्वामी अभेदानन्द भी लन्दन आ पहुँचे। स्वामीजी ने नवागत प्रचारक को तैयार करके कर्मक्षेत्र में उतारने की व्यवस्था की। २७ अक्तूबर ब्लूम्सबेरि स्क्वेयर में उनके बदले स्वामी अभेदानन्द ने बहुत सुंदर भाषण दिया। स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए और प्रचारकार्य का उज्ज्वल भविष्यत् जानकर वे निश्चिन्त हुए। प्रत्यक्ष में वेदान्त सुप्रतिष्ठित हो गया। स्वामीजी ने एक समय कहा था—" बीस कर्त्तव्यपरायण कार्यदक्ष प्रचारक मिल जायँ तो ४० वर्षों के भीतर में पाश्चात्य भूखण्ड को वेदान्त के भाव से प्रभावित कर सकता हूँ।*

* * *

भारत की चिन्ता ने स्वामीजी के चित्त पर अधिकार जमा लिया। समस्त भारत उनको वाणी ग्रहण करने के लिए आग्रहान्वित थे। उन्होंने एक समय एक शिष्य को लिखा था—"भारत के बाहर प्रदत्त एक आघात भीतर प्रदत्त हजारों आघातों के समान है।" पाश्चात्य देशों में उन्होंने जो प्रचंड आघात दिया है उसकी प्रतिध्वनि ने भारत को रोमांचित और जाग्रत कर दिया है। सहस्रों स्त्री पुरुष उन्हें ग्रहण करने के लिए तैयार थे। स्वामीजी के हृदय में

* वेलूड़ मठ के द्वारा १९६२ ई० के मई मास में प्रकाशित रामकृष्ण मठ और मिशन की जेनरल रिपोर्ट में लिखा है—वर्तमान में अमेरिका के विभिन्न स्थानों में १० प्रधान केन्द्र, ८ रिट्रीट तथा आर्जेन्टीना, इङ्गलैंड और स्वीजरलैंड में एक एक स्थायी केन्द्र स्थापित हुआ है। कुल १८ सन्यासी और कई ब्रह्मचारी इस विशाल कार्य को चला रहे हैं। (फ्रांस देश में भी एक केन्द्र तैयार हो गया है—लेखक)।

भारत के गठन मूलक कार्य रूप ले रहा था। उन्होंने भारत में लिखा कि पहले वे मद्रास, कलकत्ते और हिमालय में एक-एक केन्द्र स्थापित कर कार्यारम्भ करना चाहते हैं और क्रमशः बम्बई, इलाहाबाद और सारे भारत में केन्द्र स्थापित करेंगे।

स्वामीजी ने प्रथम बार इंगलैण्ड आकर भूमिस्पर्श किया था, दूसरी बार आकर उसमें बीज वपन कर दिया। वे विभिन्न स्थानों में अपनी वाणी का प्रचार करने लगे। उसका फल अपूर्व हुआ था। मनीषी तथा विचारवान व्यक्ति उनमें वेदान्तालोचना करने के लिए आकर उनकी युक्ति को श्रेष्ठ रूप से मान लेने में बाध्य हुए। उनके व्याख्यानों में इतने अधिक मनुष्य एकत्रित होते थे कि स्थानाभाव के कारण सैकड़ों मनुष्य खड़े रह कर व्याख्यान सुनते थे। समाचार पत्र उनकी प्रशंसा से भरे रहते थे।

१८९६ ई० के १८ जनवरी को 'इण्डियन मिरर' पत्रिका ने स्वामीजी के प्रचार-कार्य के सम्बन्ध में लिखा था—" हम आनंद के साथ लिख रहे हैं कि स्वामी विवेकानन्द ने लन्दन के अनेक विशिष्ट विद्वानों तथा शिक्षित महिलाओं की दृष्टि आकर्षित की है। उनके हिन्दू दर्शन और योग सम्बन्धी व्याख्या में अनेक उत्साही और श्रद्धावान् श्रोता उपस्थित रहते हैं।" लदन के एक संवाददाता ने लिखा है—'लन्दन शहर के सम्पन्न घर की कुछ महिलायें कुर्सी के न मिलने के कारण फर्श पर पैर समेट कर भारतीय गुरुभक्त शिष्यों की तरह बैठकर भक्ति के साथ स्वामीजी का उपदेश सुन रही हैं—यह दृश्य बहुत ही आश्चर्यजनक है। हमने सुना है कि कैम्रस, हेज आदि प्रसिद्ध धर्मप्रचारकों के द्वारा वे विशेष सम्मान के साथ गृहीत हुए हैं। प्रथमोक्त महाशय के घर स्वामीजी के प्रति सम्मान प्रदर्शन के लिए एक 'लेवि' आहूत हुई थी। उसमें लन्दन के अनेक सम्मानित सज्जन और महिलायें उपस्थित थी। "

१८९६ ई० के १० जून के 'दि लन्दन डेली क्रानिकल' पत्रिका में दिखाई पड़ता है— 'स्वामीजी एक विख्यात वेदान्त वादी हैं। उनका आचरण अनन्य-

साधारण और आकृति चित्ताकर्षक हैं। उनकी गभीर दार्शनिक तत्वों की सरल व्याख्या प्रणाली और अङ्गरेजी भाषा पर प्रभुत्व देखने से समझ में आता है कि क्यों अमेरिका वासियों ने इतने आदर के साथ उनका स्वागत किया था ? उन्होंने नाम, यश और सांसारिक सुख भोग की वासना का त्याग कर दिया है। उन्हें किसी धर्मसम्प्रदाय के अन्तर्गत नहीं कहा जा सकता क्योंकि उन्होंने स्वतन्त्र विचार धारा के द्वारा सभी धर्मों से कुछ न कुछ सत्य का ग्रहण किया है।" -

उन्होंने केवल वेदान्त का ही प्रचार नहीं किया। वेदान्त के तत्व जिस उपाय से उन देशों में सुप्रतिष्ठित हो सकें, उसके लिए गर्वगर्वित पाश्चात्य सभ्यता के आमूल संस्कार के लिए भी उनकी चेष्टा अल्प नहीं थी। उस सभ्यता ने मनुष्यों के मन में सर्वग्रासी बुभुक्षा जगा दी थी। भोगविलास ही मानो जीवन का मूल मन्त्र है। अतिरिक्त तृष्णा ने मानव मन को अशान्त कर डाला है और जगत् को ध्वंस की ओर वह ढकेल रही है। इसका प्रतिकार एकमात्र वेदांत की वाणी में ही है। इस कारण पाश्चात्य जगत् के वक्ष स्थल पर खड़े होकर ही उन्होंने कहा था—"सावधान! मैं दिव्य चक्षु से देख रहा हूँ। समस्त पाश्चात्य सभ्यता एक ज्वालामुखी के ऊपर खड़ी है। वह किसी भी क्षण आग उगल कर पाश्चात्य जगत् को भस्मीभूत कर सकती है। अभी तुम लोग सावधान न हुए तो आगामी ५० वर्ष के भीतर तुम्हारा ध्वंस अनिवार्य है।"

स्वामी विवेकानन्द की भविष्य वाणी अक्षरशः सत्य हो चली है। गत दो महायुद्धों के भयंकर परिणाम और तृतीय महायुद्ध के विध्वंसकारी विराट् आयोजन की ओर देखने से हमारे मन में भारी भय उत्पन्न होता है। परन्तु अभी तक मदमत्त दानवों के मन में सुबुद्धि का उदय नहीं हो रहा है। विज्ञान के आविष्कार को विश्व ध्वंस के काम में न लगा कर मानव जाति के सुख और सौन्दर्य के बढ़ाने के काम में अगर लगाया जाता ? सम्भवतः नयी सृष्टि और नूतन गठन के लिए और भी भारी ध्वंस की आवश्यकता है।

उस समय एक अंग्रेज मित्र ने उनसे पूछा था—"स्वामीजी, इन कई साल तक पाश्चात्य वास के अनन्तर भारतवर्ष आप को कैसा लगेगा?" आवेग के साथ उन्होंने उत्तर दिया—"पाश्चात्य देशों में आने के पूर्व मैं भारतवर्ष को प्यार करता था परन्तु अब भारत की वायु यहाँ तक कि भारत की प्रत्येक धूल-कण मेरे निकट अद्भुत पवित्र है। भारत भूमि पवित्र भूमि है। मेरे लिए भारत परम पवित्र तीर्थ है।"....

स्वामीजी ने भारत लौट आने के सम्बन्ध में मन स्थिर कर मद्रास तथा अन्य स्थानों के शिष्यों को पत्र लिखा। सेवियर दम्पति तथा गुडविन स्वामीजी के साथ जाने के लिए तैयार हो गये। मिस मूलर और मिस नोबल भी भारत में स्त्री शिक्षा विस्तार के लिए स्वामीजी का अनुगमन करेंगी।

मित्र, छात्र और शिष्य सभी स्वामीजी के वियोग की चिन्ता से व्याकुल थे। विशाल विदाई सभा में सहस्रों स्त्री पुरुष उपस्थित हुए। बहुतों के नेत्रों में आँसू थे। अभिनन्दन पत्र पढ़ा गया। स्वामीजी ने भी उसका उत्तर दिया। वे लन्दन निवासियों के हार्दिक प्रेम से मुग्ध थे।

१८९६ ई० के १६ दिसम्बर, सेवियर दम्पति के साथ स्वामीजी लन्दन छोड़कर डोवर, कैले और मन्ट सेनिस के रास्ते इटली आये। रोम निवासियों ने उन्हें अभिभूत कर दिया। वैथलिका का सघन शान्ति और प्रचार के उद्यम से उनके हृदय में अनेक चिन्ताओं का उदय हुआ। उनकी उपासना पद्धति के साथ हिन्दू धर्मानुष्ठान का साहश्य देखकर वे विस्मित हुए।' रोम से नेपल्स। गुडविन यहाँ आ मिले। ३० दिसम्बर को नेपल्स से जहाज छूटा। १८९७ ई० के १५ जनवरी को उस जहाज के कोलम्बो पहुँचने की बात थी।

पाश्चात्य देशों को पीछे छोड़कर स्वामीजी प्राच्य की ओर अग्रसर होते चले। जाते समय उसके विपरीत भाव था। इस बार साथी अल्प थे। इस कारण उनको गंभीर चिन्ता का प्रचुर अवकाश मिला। स्वामीजी का समूचा अन्त:करण भारत की चिन्ता में डूब गया। क्या वे पाश्चात्य से खाली हाथ लौट रहे हैं?

नहा, वे बहुत कुछ सचय कर लौट रहे थे सब कुछ भारत की उन्नति के काम में लगायेंगे। पाश्चात्य की सघटन शक्ति, विज्ञान, कर्मपरायणता, अदम्य उत्साह ये भारत के जातीय जीवन के लिए आवश्यक हैं। किन्तु किस भाव से उन्हे काम म लगायेंगे यही उनकी चिन्ता का विषय था।

दरिद्रों को वे नहीं भूले। इस पर भी उनका ध्यान गया था कि गणतन्त्र देशों म भी बाहरी आचार व्यवहार म यद्यपि उतना भेद नहीं देखा जाता तथापि उन देशों म भी निपीडित मनुष्यों की सख्या अल्प नहीं है। इस कारण उनके अन्तर की वेदनानुभूति समी सीमा रेखाओं का अतिक्रमण कर समस्त विश्व के दरिद्र और निपीडित जनों के प्रति प्रवाहित होने लगी। ससार की शूद्रशक्ति को उद्बुद्ध करना होगा—यही था उनका प्रण।

डेट्रएट में कुछ शिष्यों से उन्होंने एक दिन कहा था—" यथार्थ म मेरे कार्यों का आदर एकमात्र भारतवर्ष म ही हो सकता है। वे लोग समझेंगे कि किस प्रकार म रक्तों को म अपने शरीर के रक्त बहा कर निर्लिप्त जा रहा हू। इन रत्नों का सम्पूर्ण समादर केवल उसी देश म सम्भव है और होगा भी वैसा ही। और कुछ दिन प्रतीक्षा करो, देखना भारत की मूलग्रन्थि तक हिल जायगी और उसकी शिराओं में बिजली दौड़ेगी, विजयोल्लास से भारतवासी मुझे छाती पर उठा लेंगे।" वे भारतवासियों को पहिचानते थे, किन्तु उन्होंने कभी सोचा भी न था कि समस्त जाति उनके आगमन की प्रतीक्षा म ऐसे आग्रह के साथ बैठी हुई है। अपने पूज्य और प्रिय विवेकानन्द का वरण कर लेने के लिए ऐसा देशव्यापी कल्पनातीत आयोजन। यह आयोजन स्वत प्रणोदित था—इसमें राजशक्ति की पृष्ठपोषकता लेश मात्र भी नहीं थी। अनेक फाटक तैयार हुए, मकान, बाजार, मन्दिर, सुसज्जित हुए, नगर उत्सव मुखरित थे।

१८९७ ई० के १५ जनवरी को गोधूली बेला में जब वे कोलम्बो पहुँचे तब उनकी गैरिक उष्णीष देखते ही कोलम्बो बन्दरगाह म सागरगर्जन की तरह अगणित मनुष्यों का आनन्द कोलाहल उठने लगा। कोलम्बो हिन्दू

समाज के पक्ष से दो सदस्यों ने (स्वामीजी के गुरुभाई निरंजनानन्द के साथ) जहाज पर सवार होकर उनका स्वागत किया। स्टीमलंच से जब वे तीर पर लाये गये तो अगणित स्त्री-पुरुष उनके चरणों पर लोटने लगे। स्वामीजी के गले में विजय मालाय डाली गयीं। वेद गान होने लगा। मांगलिक वाद्य बज उठा। पुष्प-माल्यादि सुशोभित सुदृश्य-ध्वज-छत्र-चामर-परिवृत्त विशाल शोभायात्रा के साथ स्वामीजी आधी मील दूर के दारुचीनी बाग के श्वेत-वस्त्र-मंडित विस्तृत सभामंडप में लाये गये। सहस्रों स्त्री-पुरुष जयध्वनि करते हुए उनके पीछे-पीछे आये। ब्राह्मणों का वेद-ध्वनि मांगलिक वाद्य के साथ मिलकर मधुर संगीत के समान प्रतीत होने लगी।…

स्वामीजी के मंच पर चढ़ते ही सहस्रों कण्ठों से जयध्वनि निकलने लगी। सिंहल निवासी स्वामीजी का प्रथम स्वागत करने का सुयोग पाकर अपने को गौरवान्वित समझने लगे। अभिनन्दन पत्र का पाठ हो जाने पर स्वामीजी ने संक्षेप में कहा—"…आप लोगों के द्वारा अभिनन्दित होकर मैं परम आनन्दित हुआ।…मैं कोई राजा महाराजा धनकुबेर या प्रसिद्ध राजनीतिक नेता नहीं हूँ। मैं एक अकिंचन सन्यासी हूँ तथापि आप लोगों ने जिस प्रकार मेरी सादर अभ्यर्थना की इससे मालूम होता है कि हिन्दू-जाति अभी तक अपनी आध्यात्मिक सम्पद नहीं खो बैठी है। यह सम्मान मेरा नहीं है धर्म के प्रति ही यह सम्मान है।" और यथार्थ में यदि हिन्दू जाति को जीवित रहना है तो धर्म का ही आश्रय लेना होगा। धर्म ही उसके जातीय जीवन का मेरुदण्ड स्वरूप है।

दूसरे दिन धनी, दरिद्र शत-शत दर्शनार्थी नर-नारियों की भीड़ लग गयी। सभी भक्ति-अर्घ्य स्वामीजी के चरणों में अर्पित करने लगे। अपराह्न में 'फ्लोरल हाल' में सहस्रों उत्साही श्रोताओं के सामने स्वामीजी ने 'पुण्यभूमि भारत' के सम्बन्ध में इस देश में प्रथम भाषण दिया। धर्म भूमि भारत की महिमा का कीर्तन करके उन्होंने कहा—"…पहले सभी हिन्दुओं की तरह मुझे भी विश्वास था कि भारत कर्मभूमि है।…आज मैं इस सभा के समक्ष खड़ा

होकर दृढ़ता के साथ कहता हूँ—यह सत्य है और—अति सत्य है। यदि पृथ्वी पर ऐसा कोई देश है जिसे पुण्यभूमि कहा जा सके, यदि ऐसा कोई स्थान हो जहाँ पृथ्वी भर के सभी प्राणियों को कर्मफल भोग करने के लिए आना होगा, यदि ऐसा कोई स्थान है जहाँ भगवान् को प्राप्त करने के लिए जीव मात्र को अन्त में आना होगा, यदि ऐसा कोई देश है जहाँ मनुष्य जाति के भीतर सबसे अधिक शौच, क्षमा, धैर्य, दया आदि सद्गुणों का विकास हुआ है, यदि ऐसा कोई देश है जहाँ आध्यात्मिक भाव तथा अन्तर्दृष्टि का सबसे अधिक विकास हुआ है—तो मैं निश्चय रूप से बता सकता हूँ कि वह हमारी मातृभूमि—यह भारतभूमि ही है।" उसके अनन्तर उन्होंने 'दुर्बल हिन्दुओं की धर्मप्राणता' 'धर्म ही भारत का मुख्य सम्बल है, राजनीति और समाजनीति नहीं' 'आध्यात्मिक प्रकाश ही संसार को भारत का दान' 'सनातन और युगधर्म' तथा 'सर्व धर्म समन्वय की वाणी' सुनायी। कोलम्बो में स्वामीजी ने वेदान्त दर्शन पर एक और भाषण दिया था। अनुराधापुरम में 'सार्वजनीन धर्म' और काण्डी, जाफना आदि स्थानों में उन्होंने और भी कई उद्दीपनापूर्ण भाषण दिये थे, जिनसे सभा मुग्ध हुए। वेद की अभय वाणी से लोगों के हृदय में उत्साह उत्पन्न हुआ। सीलोन के विभिन्न स्थानों में स्वामीजी दस दिन थे। सभी जगह उनका विशेष सम्मान हुआ। जनसाधारण के उत्साह ने उन्हें अभिभूत कर दिया।*

---

* कोलम्बो निवासियों ने स्वामीजी से वहाँ वेदान्त प्रचार के लिए एक स्थायी केन्द्र स्थापित करने का अनुरोध किया। तदनुसार स्वामीजी ने १८९७ ई० में अलमोड़ा रहते समय अपने गुरुभाई स्वामी शिवानन्द को सीलोन में वेदान्त प्रचार के लिए भेजा था।

बीस

२८ जनवरी की रात में एक देशी जहाज से स्वामीजी दक्षिण भारत की ओर रवाना हुए। दूरी केवल पचास मील की थी। इसी जलभाग का शायद महावीर हनुमान् ने उछल कर अतिक्रमण किया था। सीलोन की विपुल अभ्यर्थना और समारोह का समाचार मद्रास, कलकत्ता और भारत के विभिन्न स्थानों में बिजली के वेग से प्रचारित हो गया। सर्वत्र ही जनता उन्मत्त हो उठी। दूसरे दिन दोपहर के पहिले ही जहाज पामबान पहुँचा। स्वामीजी नहीं जानते थे कि रामनाड के राजा स्वयं उपस्थित हैं और राजकीय विराट् स्वागत का आयोजन हुआ है। जहाज से स्वामीजी तीर पर लाये गये। इष्ट-मित्रों के साथ राजा स्वामीजी के चरणों पर लोट गये। तट पर अगणित पामबान निवासी अधीर आग्रह से प्रतीक्षा कर रहे थे। नाव से उतरने के पहिले ही विपुल भाव से स्वामीजी की संवर्धना हुई। सुंदर विशाल मंडप के नीचे स्वामीजी को जो अभिनन्दन पत्र दिया गया उसकी भाषा बहुत ही मर्मस्पर्शी थी—"पाश्चात्य में आप का हिन्दू धर्म प्रचार विशेष फलप्रद हुआ है। अब इस निद्रित भारत को उसकी बहुत दिनों की अपारनिद्रा से जगाने के लिए सन्नद्ध हो जाइये।" इस आवेदन के सुर ने स्वामीजी के अन्तर को प्रभावित कर डाला। उन्होंने उत्तर में कहा था—"भारत का जातीय जीवन एकमात्र धर्म में ही प्रतिष्ठित है—राजनीति, युद्ध विद्या, वाणिज्य या शिल्प-समृद्धि में नहीं। धर्म ही हमारा एकमात्र आश्रय और अवलम्बन तथा जातीय जीवन का मेरुदण्ड है। और यही धर्म हम संसार को देना है।"

सभा के अन्त में स्वामीजी राजशक्ट में राजा के बंगले पर रहने के लिए लाये गये। राजा के आदेश से गाड़ी से घोड़ों को खोल देते ही प्रजाओं के साथ राजा स्वयं गाड़ी खींचने लगे। राजा की भक्ति देखकर सब लोग अभिभूत हो गये। दूसरे दिन स्वामीजी रामेश्वर मन्दिर के दर्शन के लिए गये। गाड़ी के मन्दिर के पास आते ही अगणित जनता ने हाथी, ऊँट, घोड़े, ध्वजा संगीतादि की विराट शोभायात्रा के साथ स्वामीजी का स्वागत किया। स्वामीजी

ने देवता विग्रह की पूजा की। मन्दिर का अपूर्व कारुशिल्प, स्थापत्य कौशल और सहस्र स्तम्भों पर प्रतिष्ठित मण्डप देखा, देवता के लिए संचित बहुमूल्य मणि, माणिक, हीरा, जवाहिरात आदि देखकर भारत के अगणित गरीब दुखिया के लिए उनका हृदय रो पड़ा। अनन्तर जनता के विशेष आग्रह से 'तीर्थमाहात्म्य और उपासना' के सम्बन्ध में स्वामीजी ने एक बहुत ही सुंदर भाषण दिया। प्रसंगवश उन्होंने बताया—" शिव का पूजा केवल मन्दिर के विग्रह की अर्चना नहा बल्कि दीन दरिद्र तथा आतुरों में जो जीव रूप शिव हैं उन्हा की पूजा है। "

स्वामीजी के भाषण ने राजा के हृदय को आलोडित कर दिया। वे उन्मत्त की तरह दोनों हाथों से धन का वितरण करने लगे तथा हजारों दीन दुखी आतुरों को भर पेट भोजन कराया और वस्त्र दिये।

स्वामीजी के शुभ पदार्पण के स्मरणार्थ चालीस फुट ऊँचा एक स्तम्भ निर्मित कर उस पर लिखा गया—

'सत्यमेव जयते। पाश्चात्य देशों में वेदान्त प्रचार की अश्रुतपूर्व सफलता लाभ करने पूज्यपाद श्रीश्रीस्वामी विवेकानन्द ने अङ्गरेज शिष्यों के साथ भारत भूमि ने जिस स्थल पर प्रथम पदार्पण किया था उस पवित्र स्थान को चिह्नित करने के लिए रामनादाधिपति भास्कर सेतु पति के द्वारा यह स्मृति स्तम्भ निर्मित हुआ १८६७ ई० ९७ जनवरी।"

पामबान से स्वामीजी रामनाद आये। सन्ध्या का समय था। सुनील नभमण्डल के असख्य नक्षत्रों ने स्वामीजी का स्वागत किया। तोपों की ध्वनि होने लगी। विचित्र वर्णों की आतिशबाजियों से आकाश छा गया। राजा के भाई ने स्वामीजी की गाडी के घोड़ों की रस्सी पकड़ ली। राजा स्वयं शोभायात्रा के आगे रहकर स्वामीजी के गाड़ी का अनुसरण करने लगे। सैकड़ों मशाल जल रही थीं। देशी और विदेशी बैंड में 'देखो, वह आया विजयी वीर' यह सुर एकतान में बज रहा था। चारों ओर शत शत कंठों की जयध्वनि और कोलाहल के भीतर स्वामीजी राजमहल में प्रविष्ट हुए।

राजदरबार में विपुल अभिनन्दन का आयोजन हुआ। हृदय के आवेग से राजा ने स्वामीजी की बहुत प्रशंसा करके एक छोटा सा भाषण दिया। राजा के भाई ने रामनाद-निवासियों के पक्ष से अनेक साधुवादपूर्ण मान पत्र पढ़कर स्वर्ण-पेटिका के साथ उसे स्वामीजी के हाथ में अर्पित किया।

उसके उत्तर में स्वामीजी ने उदात्त कंठ से समस्त भारत की जागृति और आशा की वाणी सुनाया—" "सुदीर्घ रजनी समाप्तप्राय प्रतीत हो रही है। महान् दुःख का अन्त हो रहा है। महानिद्रा में निद्रित शव मानों जाग उठा है। इतिहास की बात दूर रहे किंवदन्ती तक जिस सुदूर अतीत का घनान्धकार भेद करने में असमर्थ है वहाँ से एक अपूर्व वाणी मानों सुनाई पड़ रहा है। ज्ञान, भक्ति और कर्म के अनन्त हिमालय रूप हमारी मातृभूमि भारत के प्रत्येक शिखर में यह वाणी प्रतिध्वनित होकर मृदु परन्तु दृढ़ और अभ्रान्त भाषा में किसी अपूर्व राज्य का समाचार वहन कर ला रहा है। जितने ही दिन जा रहे हैं उतनी ही यह स्पष्ट और गम्भीर प्रतीत हो रही है, मानो हिमालय का प्राणदायक वायु के स्पर्श से मृत शरीर के शिथिलप्राय अस्थि माँस में भी प्राणसंचार कर रही है—निद्रित शव जाग्रत हो रहा है। उसकी जड़ता छूटती जा रही है। जो अन्धा है उसे दिखाई नहीं पड़ता, जिसका मस्तिष्क विकृत है वह समझ नहीं सकता कि हमारी मातृभूमि गम्भीर निद्रा छोड़कर जाग्रत हो रहा है। इस समय कोई उसका गतिरोध नहीं कर सकता। यह फिर निद्रा में आच्छन्न नहीं होगा। कोई भी बाहरी शक्ति इसे पुनः दबा नहीं रख सकती। कुम्भकर्ण की सुदीर्घ निद्रा टूटती जा रही है।

अनन्तर उन्होंने बताया—"धर्म ही भारत का मेरुदण्ड है, राजनीति या अन्य कुछ नहीं। वर्तमान समय में भारत के लिए जड़वाद की भी आवश्यकता है और साहस का अवलम्बन करने का निर्देश देकर उन्होंने कहा— "यदि जगत् में कुछ पाप हो तो दुर्बलता ही वह पाप है। सब प्रकार की दुर्बलता का परित्याग करो—दुर्बलता ही मृत्यु और दुर्बलता ही पाप है।" इसके बाद उन्होंने दृढ़ता के अवलम्बन का आवेदना बताया और भविष्य

भारत को गठित करने के उद्देश्य से कहा—"भाइयो ! हम सभी को कठोर परिश्रम करना होगा । अब सोने का समय नहीं रहा । वह देखो भारत माता धीरे धीरे अपने कमल नेत्र खोल रही है । उठो और नूतन जागरण तथा उत्साह से पहिले की अपेक्षा महान् गौरव से मंडित कर भक्ति के साथ उन्हें अनन्त सिंहासन पर प्रतिष्ठित करो । "

स्वामीजी की वह देव-वाणी सारे भारत को आन्दोलित करते हुए समस्त देशवासियों के हृदय पर तडित-स्पर्श के समान कार्यकर हुई । भारतवासियों की आत्म शक्ति के पास, मनुष्य के भीतर जो ब्रह्म निद्रित है—उनके निकट यह वाणी दुर्जय आवेदन के रूप में पहुँच गयी । मृतवत् मनुष्यों में भी प्राणों का स्पन्दन होने लगा । रामनाद से आरम्भ करके समस्त भारत में स्वामीजी ने नव-जागरण और महाशक्ति की वाणी सुनायी—'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत' और सभी के कानों में उन्होंने 'अभी' मन्त्र दिया ।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने 'भारत आविष्कार' ग्रंथ में वर्तमान भारत को स्वामीजी के दान के सम्बन्ध में उनकी वाणी उद्धृत कर अनेक विषयों की आलोचना की है—"मनुष्यों के भीतर ईश्वर को देखना ही यथार्थ ईश्वर दर्शन है । सारे प्राणियों में मनुष्य ही श्रेष्ठ है ।"—"जातीय समस्याओं का समाधान आन्तर्जातिक दृष्टि से करना ही सम्भव है ।" स्वामी जी की अभय वाणी के सम्बन्ध में उन्होंने कहा—" किन्तु उनके भाषण और रचना के भीतर एक सुर सदा ध्वनित हो रहा है वह है अभय अर्थात् अभय हो जाओ, बार बार, दुर्बलता का परित्याग करो मनुष्य को कभी उन्होंने शोचनीय पापी नहीं कहा । प्रत्येक मनुष्य के भीतर दैव शक्ति विराजमान है । मनुष्य क्या डरेगा ? संसार में यदि कोई पाप हो तो दुर्बलता ही वह पाप है । दुर्बलता का परित्याग करो । उपनिषद् की महान् शिक्षा यही थी । भय से ही अमंगल और दुर्बलता का जन्म होता है । स्वामीजी ने कहा है—'वर्तमान में ऐसे बलिष्ठ मनुष्यों की आवश्यकता है जिनकी पेशियाँ लोहे के समान दृढ़ और स्नायु फौलाद की तरह कठिन हो और जिनकी प्रचण्ड इच्छा शक्ति ब्रह्माण्ड

के गूढ़तम रहस्यों के भेदन में समर्थ हैं।' उन्होंने दुर्बल करने वाले 'गुह्य तत्त्व' की निन्दा की है।...धर्म की यही परीक्षा है। जो कुछ तुम्हारी शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक दुर्बलता ला दे वह विषवत् परित्याज्य है।...'' श्रीनेहरू ने स्वामीजी के भाषणों और पत्रों से इस प्रकार के बहुत से अंश अपने उस ग्रन्थ में लिये हैं—ऐसा लिखा है।

* * *

कुम्भकोनम में तीन दिन रहकर स्वामीजी मद्रास रवाना हुए। प्रत्येक स्टेशन पर ही दर्शनार्थी अगणित मनुष्यों की भीड़ थी। जिन स्टेशनों पर गाड़ी रुकने की बात नहीं थी वहाँ भी सैकड़ों मनुष्यों ने रेलवे लाइन पर लेट कर गाड़ी को रोक लिया। वे भारत गौरव महान् पुरुष का दर्शन करना चाहते थे। उनके मुख से दो चार बात सुनने की इच्छा रखते थे। स्वामीजी सभी की आकांक्षा की पूर्ति करते थे। सबको दर्शन देते थे। और दोनों हाथ फैला कर सबको आशीर्वाद देते थे।

* * *

मद्रास उनके लिए अपार आग्रह से प्रतीक्षा कर रहा था। नगर के विभिन्न स्थानों में सत्रह विजय-तोरण निर्मित हुए थे। घर, द्वार केले के वृक्षों तथा पुष्पमालाओं से सजाये गये थे। मकानों, मठों और मन्दिरों के ऊपर विजय वैजयन्ती उड़ रही थी। सारा शहर उत्सव में उन्मत्त था। स्थान-स्थान पर विविध वर्णों में बड़े बड़े अक्षरों से लिखा गया था—पूजनीय विवेकानन्द दीर्घ-जीवी हों, हे भगवत् सेवक, हे अतीत के ऋषि स्वामी विवेकानन्द! आपका स्वागत है। आप नवजाग्रत भारत की सादर संवर्धना स्वीकार करें। हे शांति के अग्रदूत श्रीरामकृष्ण के योग्य शिष्य, पुरुष सिंह, विजयी वीर आइये—इत्यादि।

६ फरवरी प्रातःकाल होते ही दल के दल लोग पुष्पमाला और ध्वजा लेकर रेल स्टेशन की ओर चल पड़े। मद्रास के विशिष्ट व्यक्ति विश्वेश्वरराय

संन्यासी का स्वागत करने के लिए समवेत हुए। ट्रेन प्लेटफॉर्म के पास खड़ी होते ही सहस्र कंठों से निर्गत जयध्वनि और आनन्द-कोलाहल के द्वारा आकाश गूँज उठा। स्वागत समिति के सदस्यों ने स्वामीजी को पुष्पमालाओं से भूषित कर दिया। दर्शक-व्यूह का भेदन कर किसी तरह स्वामीजी निकट की गाड़ी के पास लाये गये। स्वामीजी के पास गाड़ी में उनके दो गुरुभाई शिवानन्द और निरंजनानन्द बैठे थे। युवक गाड़ी के घोड़ों को खोलकर जयध्वनि के भीतर स्वामीजी की गाड़ी को समुद्र के किनारे वाले 'कैस्ल कारनान' नामक प्रासादोपम अट्टालिका की ओर खींच ले चले। स्वामीजी के सिर पर पुष्प वृष्टि होने लगी। असंख्य स्त्री पुरुष नारियल तथा अन्य अनेक फल लाकर स्वामीजी के चरणों पर चढ़ाने लगे। स्थान स्थान पर महिलाओं ने कर्पूर और दीप जलाकर आरती उतारी। उनकी श्रद्धा और हार्दिकता देखकर स्वामीजी विह्वल हो गये। साढ़े नौ बजे 'कैस्ल कारनान' में गाड़ी पहुँचने पर 'मद्रास विद्वत् मनोरञ्जनी सभा' की ओर से स्वामीजी को अभिनन्दित करते हुए एक संस्कृत मान पत्र पढ़ा गया।

दूसरे दिन रविवार को स्वागत समिति की ओर से स्वामीजी को मान पत्र दिया गया। उसके अनन्तर अङ्गरेजी, संस्कृत, तामिल तथा अन्यान्य भाषाओं में २६ मान पत्र दिये गये।* विपुल जनता एकत्रित हुई थी। लोगों के

* इन मान पत्रों में खेतड़ी के महाराजा का मान पत्र भी था, इङ्गलैंड और अमेरिका से भी मान पत्र आये थे। उनमें अमेरिका के विलियम जेम्स तथा हार्वर्ड विश्वविद्यालय के अध्यापकों के हस्ताक्षर युक्त मान पत्र भी थे। डेट्रएट से भी ४२ विशिष्ट व्यक्तियों के हस्ताक्षर विशिष्ट एक अभिनन्दन-पत्र आया था। ब्रुकलिन एथीकल एसोसियेशन ने 'महान् आर्य परिवार के भारतीय भ्राताओं के प्रति' हार्दिक प्रेम जताकर एक मान पत्र भेजा था। सीलोन से लेकर मद्रास तक जो विपुल अभ्यर्थना हुई थी उसकी प्रतिध्वनि वायु मंडल

अनुरोध से स्वामीजी बाहर आकर स्वागत का उत्तर देने के लिए एक गाड़ी में कोचबक्स के ऊपर खड़े हो गये किन्तु चारों ओर की विपुल भीड़ के कोलाहल में भाषण देना सम्भव न हुआ। निदान उन्होंने संक्षेप में श्रोताओं को धन्यवाद देकर उनके उत्साह पर आनन्द प्रगट करते हुए कहा—'देखना, आग बुझ न जाय।"*

दूसरे दिन स्वामीजी ने 'विक्टोरिया हाल' में विराट् जनता के सामने 'मेरी समरनीति' विषय पर भाषण दिया। उन्होंने संघटन नीति की व्याख्या की। धर्म ही जातीय जीवन का मेरुदंड है। इस ओर सबकी दृष्टि आकर्षित करते हुए दानधर्म की व्याख्या करते समय विद्या-दान के ऊपर ही उन्होंने विशेष जोर दिया और भी बताया—"दुर्बलता ही पाप है। उपनिषद् की बलप्रद शिक्षा के अवलम्बन से ही जातीय जीवन की उन्नति सम्भव है। उपनिषद् का उपदेश है—मनुष्य उठो, जागो, वीर्य का अवलम्बन करो' संसार के साहित्यों के भीतर केवल उपनिषद् में ही 'अभीः' मन्त्र का उपदेश उच्चारित हुआ है। उपनिषद् में कथित यह तेजस्विता ही इस समय हमारे जीवन में विशेष रूप से परिणत करने का समय आया है।" स्वामीजी की वाणी विपुल विस्फोट की सम्भावना से पूर्ण थी। श्रोताओं के हृदय में आवर्त्त की सृष्टि हुई—अग्नि जल उठी।

स्वामीजी ६ दिन मद्रास में रहे। उस समय उन्होंने अभिनन्दनों का उत्तर देने के अतिरिक्त ५ भाषण दिये—'मेरी समरनीति', 'भारतीय जीवन में वेदान्त का प्रयोग,' 'भारत के महापुरुष,' 'हमारा वर्तमान कर्तव्य' और

में तरंगायित होकर हिमालय के पाददेश तक समस्त भारत में फैल गई थी।

* Strike the iron while it is hot—स्वामीजी इस नीति वाक्य का आशय अच्छी तरह जानते थे। इस कारण उन्होंने सारे भारत में उत्साह की अग्नि जला दी और तपे लोहे पर आघात किया। उस आघात की प्रतिध्वनि भारत के सभी प्रान्तों में पहुँच गयी।

'भारत का भविष्य'। समुद्रतीर पर जिस भवन में स्वामीजी थे वह स्थान सदा दर्शनार्थियों से पूर्ण रहता था। उन्हें देखते ही लोग साष्टांग प्रणाम करते थे और अनेक प्रकार से अन्तर की श्रद्धा निवेदित करते थे। वह दृश्य बहुत ही मर्मस्पर्शी था और उससे स्वामीजी बहुत ही अभिभूत थे। यद्यपि स्वामीजी पृथ्वी के तीन श्रेष्ठ जातियों के महोच्च सम्मान के अधिकारी हुए थे तथापि उन्होंने उस सम्मान को बहुत ही विनय के साथ ग्रहण किया था। एक मान पत्र के उत्तर में स्वामीजी ने कहा था—"अभिनन्दन पत्र में जो सुन्दर विशेषण प्रयुक्त हुए हैं उनके लिए मैं कैसे हृदय की कृतज्ञता प्रगट करूँगा, नहीं जानता। मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे वैसी प्रशंसा के योग्य बनावे और मैं जीवन भर अपने धर्म और मातृभूमि की सेवा कर सकूँ।" •

स्वामीजी के ओजस्वी भाषण ने भारतवासियों के जीवन में विप्लव उत्पन्न कर दिया।* जातीयतावाद के निर्भीक जागरण ने संगठन के भीतर से नया रूप ग्रहण कर लिया। यद्यपि राजनीति के साथ उनका कोई सम्पर्क नहीं था तथापि स्वामीजी की वाणी के केन्द्र से ही वह जातीय जागरण संभव हो उठा था। भारत के जातीय आन्दोलन की समसामयिक और पारिपार्श्विक घटनाओं का विश्लेषण करने से जाना जाता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम अंश में स्वामी विवेकानन्द की जाग्रति की वाणी ने भारत के जातीय और सामाजिक जीवन के गतिहीन अवस्था पर प्रचंड आघात दिया था। उनके आविर्भाव और वाणी प्रचार के समय से ही जातीय जागरण और गण अभ्युत्थान की प्रचेष्टा में एक नयी प्रेरणा दिखाई पड़ती है। उस प्रेरणा ने देशवासी

* कोलम्बो से अलमोड़ा और भारत के अन्यान्य स्थानों में स्वामीजी ने जो भाषण दिये थे उनमें से थोड़ा भी इस ग्रन्थ में सन्निवेशित करना सम्भव न हुआ। उन भाषणों को श्रीरामकृष्ण मिशन नागपुर से प्रकाशित स्वामी विवेकानन्द की वक्तृता ग्रन्थ में देखना चाहिए। उन भाषणों में उनकी अग्निमयी वाणी का स्पर्श मिलता है।

साधारण मनुष्यों को भी अपने भाग्य के सम्बन्ध में सचेत कर दिया था। मनुष्य के अन्तर में निद्रित भगवान को भी उसने जाग्रत कर दिया था। प्रभावशाली थोड़े से व्यक्तियों के द्वारा अवहेलित और अज्ञात जनसाधारण के भीतर ही उन्होंने भविष्य भारत को देखा था।* इसीलिए स्वामीजी ने उन्हें अपनी अपनी भूमिका ग्रहण करने के लिए आह्वान किया था।...

—"नया भारत निकल आवे बनियों की दूकान से, भरभूंजे के भाड़ के पास से, कारखाने से, हाट या बाजार से अथवा झाड़ी-जंगल पहाड़ से।"

---

* जन-शिक्षा और गणोन्नति के ऊपर ही जाति का भाग्य पूर्णतया निर्भर रहता है। भारत के उपेक्षित कृषक, जुलाहे, मजदूर, मेहतर आदि निम्न श्रेणी के लोगों की उन्नति के ऊपर ही स्वामीजी विशेष गुरुत्व का आरोप करते थे। उनकी वाणी और रचनावली के भीतर हम इस सम्बन्ध में अनेक बातें पाते हैं। उन्होंने कहा था—" 'याद रखो, सभी देशों में ये ही जाति का मेरुदण्ड हैं।' वेदान्त की जन्मभूमि भारतवर्ष में जनसाधारण को मानो युगों से सम्मोहित कर रखा गया है। उनका स्पर्श अपवित्र तथा मन अशुचि है। 'यूरोप के अनेक देशों में भ्रमण करते समय दरिद्रजनों की सुख-स्वच्छन्दता और शिक्षा-दीक्षा देखकर भारत के असहाय गरीबों की अवस्था याद आती थी और मैं आँखों से आँसू बहाता था। इस पार्थक्य का कारण खोजते हुए मैंने समझा—गण शिक्षा में भेद ही इस विषमता का मूल है।

जन-साधारण की दुर्गति देखकर मेरा हृदय इतना भाराक्रान्त हो जाता था कि अन्तर की वह वेदना भाषा में व्यक्त करना असम्भव है। ' याद रखो, दरिद्रों की झोपड़ी में ही भारतीय जाति का निवास है। किन्तु हाय, उनके लिए किसी ने कभी कुछ किया नहीं है। हमारे वर्तमान समाज-सुधारक विधवा विवाह लेकर ही व्यस्त हैं। सब प्रकार के सुधारों के साथ मेरी सहानुभूति है सही परन्तु यह बात भी ठीक ही है कि विधवाओं की पति प्राप्ति की संख्या के ऊपर जाति का भाग्य निर्भर नहीं है, निर्भर है जाति के जन-साधारण

स्वामीजी की पुकार का उन लोगों ने उत्तर दिया था। लोग निश्चल श्राकर दर्द भंगिमा में खड़े हो गये थे। १६०५ ई० के बंगाल के विभाजन के प्रतिवाद में जो आन्दोलन उत्पन्न हुआ था वह केवल शिक्षित और सम्पन्न सम्प्रदाय में ही सीमाबद्ध नहीं था। बंगाल के देहातों के साधारण लोग भी उस आन्दोलन में आकर सम्मिलित हुए थे। उससे यह आन्दोलन इतना प्रबल हो गया था कि अधिकारियों को विवश होकर बंगाल के दो टुकड़ों को मिला देना पड़ा।

गाँधीजी ने स्वतन्त्रता संग्राम में जो साधारण मनुष्यों को मुक्ति सेना-वाहिनी के रूप में पाया था वह भी स्वामी विवेकानन्द की वाणी के प्रभाव से ही। देश की मुक्ति का अर्थ—दरिद्रजनों की मुक्ति है—यह तत्त्व विवेकानन्द प्रवर्तित भावधारा में प्रचारित न होता तो गाँधीजी का गण आन्दोलन साफल्य मण्डित होता या नहीं इसमें सन्देह है। स्वामी विवेकानन्द ही थे भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के प्रथम सेनापति। उन्होंने जो मुक्ति फौज का सूत्रपात किया था, उन्हीं के आत्म त्याग और रुधिर के विनिमय से ही भारत स्वतन्त्रता प्राप्त कर सका है। उन्होंने जो अभय वाणी—'उत्तिष्ठत जाग्रत' रूप जागृति की वाणी सुनायी थी उसका उत्तर लाखों मनुष्यों ने दिया था। उसी के फल-स्वरूप विंश शताब्दी की सूचना होते ही बंगाल में तथा सारे भारत में जातीय आन्दोलन ने नया मोड़ लिया—आवेदन निवेदन के निर्जीव पथ से हट आकर तीव्र निर्भीक जातीयताबोध के—नूतन संगठन के भीतर से।

* * *

मद्रास में रहते समय स्वामीजी को विभिन्न स्थानों से अनेक निमन्त्रण पत्र मिले। खेतड़ी के महाराजा, पूना से लोकमान्य तिलक और विभिन्न स्थानों से तथा विशिष्ट व्यक्तियों की ओर से उन्हें जाने के लिए पत्र भेजे जाने लगे किन्तु

की अवस्था के ऊपर। उन्हें उन्नत कर सकते हो ? हमारे जन-साधारण सांसारिक बातों में एकदम अज्ञ है। परन्तु है वे सज्जन। क्योंकि इस देश में दारिद्र्य के साथ दुर्जनता का कोई सम्पर्क नहीं है।"

विशेष इच्छा रहते हुए भी उनका जाना सम्भव न हुआ। कोलम्बो से मद्रास तक लगातार भाषण, आलोचना और अनेक लोगों के साथ भेंट तथा वार्तालाप से वे इतने अधिक श्रान्त हो पड़े थे कि उन्हें विश्राम की आवश्यकता हुई। इस कारण वे रेलपथ से न जाकर विश्राम के लिए जल पथ से १५ फरवरी के प्रातःकाल कलकत्ते के लिए रवाना हुए। मद्रास निवासियों ने उन्हें वहाँ एक स्थायी केन्द्र संस्थापित करने के लिए अनुरोध किया। इसके उत्तर में उन्होंने कहा था—"अभी नहीं, इसके बाद में तुम्हारे पास अपने एक ऐसे गुरुभाई को भेजूँगा जो तुम्हारे कट्टर ब्राह्मणों से भी कट्टर है और पूजा, शास्त्र ज्ञान तथा ध्यान धारणा आदि में अतुलनीय है।"*

स्टीमर घाट पर अनेक मनुष्य समवेत हुए थे। मद्रास के 'आर्यवैश्य समाज' तथा राजमहेन्द्री के जनसाधारण की ओर से दो अभिनन्दन पत्र स्वामीजी को दिये गये थे।

इक्कीस

सारा बंगाल, खास कर कलकत्ता के निवासी आग्रह के साथ स्वामीजी के शुभागमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। नागरिकों की ओर से अभ्यर्थना समिति गठित हुई। स्वागत का विपुल आयोजन हुआ। २० फरवरी को खिदिरपुर में जहाज से उतरकर स्वामीजी ने देखा कि उनके लिए एक स्पेशल ट्रेन प्रतीक्षा कर रही है। सुबह साढ़े सात बजे स्यालदह पहुँचते ही सहस्र कण्ठों

*१८९७ ई० के मार्च मास के अन्तिम भाग में उन्होंने अपने गुरुभाई स्वामी रामकृष्णानन्द और अपने संन्यासी शिष्य सदानन्द को प्रचार के लिए मद्रास भेजा था।

की जयध्वनि से स्टेशन गूँज उठा। शिष्यों के साथ स्वामीजो ट्रेन से उतर कर हाथ जोड़े सबको प्रत्यभिवादन करने लगे। स्वागत समिति के सभ्यों ने मालाओं से उन्हें भूषित कर दिया। कीर्तन करने वालों ने उच्च संगीत के द्वारा चारों दिशाओं को प्रतिध्वनित कर दिया। २० हजार कण्ठों से गगनभेदी जयध्वनि निकलने लगी। बहुत कष्ट से जनता का भेदन करके पाश्चात्य शिष्यों के साथ स्वामीजी चार घोड़ों की गाड़ी में बिठाये गये। उत्साही युवक गाड़ी से घोड़ों को खोलकर स्वामीजी की गाड़ी खींच ले चले। सुसज्जित मार्ग के दोनों ओर अनेक स्त्री-पुरुष विचित्र वर्णों की ध्वजायें हाथ में लेकर जयध्वनि कर रहे थे। सुशोभित तीन फाटक के भीतर से होकर गाड़ी रिपन कालेज के सामने आ खड़ी हुई।··

उसके अनन्तर राय पशुपतिनाथ वसु बहादुर के बागबाजार के भवन में गुरुभाइयों के साथ दोपहर का भोजन करके तीसरे पहर स्वामीजी आलमबाजार मठ में गये। बराहनगर से मठ १८९२ ई० में वहाँ चला गया था। पाश्चात्य शिष्यों के निवास का प्रबन्ध काशीपुर में गोपाललाल शील के उद्यान भवन में हुआ।

सारे बंगाल, कलकत्ता निवासियों तथा उनके गुरुभाइयों ने स्वामीजी को घेरण कर लिया। परन्तु उन्हें क्षण भर का अवकाश भी न रहा। वे निरंतर अपने को वितरित कर देने लगे। सैकड़ों मनुष्य उनसे मिलने आते थे। अनेक स्थानों से निमन्त्रण पत्र भी आने लगे। उन्होंने गठनमूलक काम में तुरन्त मन लगाया। विभिन्न स्थानों में केन्द्रस्थापन, सेवाकार्य, शिक्षाप्रवर्त्तन, कर्मियों का संग्रह आदि उनके कार्य के अन्तर्गत थे। विराट् योजना उनके हृदय में रूप परिग्रह करने लगी। समस्त भारत को उन्हें जगाना है, समृद्ध, उन्नत और बलवान् बनाना है। गणोन्नति, जाति-भेददूरीकरण, नारीकल्याण, सांस्कृतिक जीवन की परिपुष्टि तथा और भी अनेक गठनमूलक योजनाओं की पूर्ति उनकी चिन्ता के विषय बन गये।

प्रतिदिन अनेक विशिष्ट नागरिक उनसे मिलने आते थे। उनके साथ

उन विषयों की आलोचना होती थी। वे कहते थे "मेरा कार्य होगा बिजली की तरह क्षिप्र और वज्र की तरह दृढ़।" उनका समय अल्प था पर कर्म की सीमा न थी। इस कारण वे समय समय पर अधीर हो जाते थे।

२८ फरवरी को कलकत्ते के नागरिकों ने स्वामीजी को अभिनन्दित किया। शोभाबाजार के राजा राधाकान्त देव के महल के विस्तृत आँगन में आहूत सभा में कलकत्ते के प्रसिद्ध व्यक्ति तथा छात्रसमाज मिलकर लगभग ५ हजार स्त्री पुरुष समवेत हुए। सभा में उपस्थित होते ही सभापति राजा बिनयकृष्ण देव ने स्वामीजी का स्वागत करते हुए कहा—"भारत के जातीय जीवन में इस पुरुषसिंह ने अतुलनीय कीर्ति स्थापित की है। लाखों में कदाचित ऐसे एक असाधारण महापुरुष दिखाई पड़ते हैं।" उसके अनन्तर उन्होंने अभिनन्दन पत्र पढ़कर एक चाँदी की मञ्जूषा में उसे रखकर स्वामीजी के हाथ में प्रदान किया। स्वामीजी ने खड़े होकर जन्मभूमि की वन्दना की। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि' कहकर प्रणाम करते हुए कलकत्ता-निवासियों को सम्बोधित करके कहा—" आज मैं आपलोगों के सामने सन्यासी के रूप में उपस्थित नहीं हुआ हूँ, धर्मप्रचारक के रूप में भी नहीं, बल्कि पहले के कलकत्ता-वासी बालक के रूप में आपलोगों के साथ वार्तालाप करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ। भाइयो, ऐसी इच्छा हो रही है कि इस महानगरी के राज पथ की धूल पर बैठकर बालक की तरह सरल भाव से आपलोगों से हृदय की सारी बात खोलकर कहूँ।" उसके अनन्तर अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण देव के प्रति श्रद्धा और भक्ति अर्पित करते हुए कहा—" "यदि मैंने कायमन वाक्य से कोई शुभ कार्य किया हो, यदि मेरे मुख से ऐसी कोई बात निकली हो जिससे ससार के किसी व्यक्ति को कुछ उपकार हुआ हो, तो उसमें मेरा कोई गौरव नहीं है, सारा गौरव उन्हीं का है। किन्तु यदि मेरी जिह्वा ने कभी अभिशाप वाक्य का वर्षण किया हो, यदि मेरे मुख से कभी किसी के प्रति घृणासूचक वाक्य निकला हो तो उसके लिए मैं ही दायी हूँ। वे नहीं। जो कुछ दुर्बल और दोष-युक्त है वह सभी मेरे हैं। जो कुछ जीवनप्रद, बलदायक, और पवित्र हैं सभी उनकी शक्ति का खेल और उनकी वाणी तथा वे

स्य है। मित्रो, सचमुच ही अभी तक उस पुरुषश्रेष्ठ से जगत् परिचित नहीं हुआ है।...''

सबके अन्त में उन्होंने उपनिषद् के नाम से शक्ति की स्तुति-गान करके कलकत्ता निवासी युवकों से कहा "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत"— उठो, जागो क्यों कि शुभ मुहूर्त आ गया है।...तुम लोगों ने कहा—मैंने कुछ काम किया है। यदि वैसा ही हो तो याद रखो कि मैं भी किसी समय यहाँ एक तुच्छ बालक मात्र था। यदि मेरे द्वारा यहाँ तक हो सका है तो तुमलोग मुझ से भी बहुत अधिक काम कर सकते हो। उठो, जागो, संसार तुम्हें पुकार रहा है। मैं तो अभी तक कुछ कर नहीं सका हूँ। तुम्हीं को सब कुछ करना होगा। यदि कल मेरी मृत्यु हो जाय तो साथ साथ काम का निलोप नहीं होगा। मुझे दृढ़ विश्वास है कि जनसाधारण में से हजारों व्यक्ति यह मत ग्रहण करेंगे और इस काम की इतनी उन्नति और विस्तार होगा कि उसकी कभी कल्पना में भी आशा नहीं की गयी है। देश के ऊपर मेरा *पूर्ण विश्वास है विशेष रूप से देश के युवकों के ऊपर।* "

स्वामीजी देश के युवकों से बहुत कुछ आशा रखते थे। उन्होंने उनसे मातृभूमि के लिए महाबलि की प्रार्थना की थी। देश के युवकों ने स्वामीजी की पुकार का उत्तर दिया। जो लोग उस दिन सभा के समय उपस्थित नहीं थे, स्वामीजी की वाणी ने उनके हृदयों को भी आलोडित कर दिया और अनागतों के लिए भी वे अपना आवेदन छोड़ गये। उस शाश्वत वाणी के अमोघ स्पन्दन ने स्वदेश प्रेमिक मात्र को सचेतन कर डाला। भारतीय युवकों ने स्वामीजी की वाणी को यथोचित मर्यादा दी, उनकी पुकार का यथोचित उत्तर देकर उनकी वाणी को सार्थक किया, उस पर सम्मान दिखलाया और भविष्य में भी दिखलायेंगे।

श्रीरवीन्द्रनाथ ने लिखा है—"आधुनिक समय में भारतवर्ष में स्वामी विवेकानन्द ने ही एक महती वाणी का प्रचार किया था। वे किसी आचार के अन्तर्गत नहीं है। उन्होंने देश के प्रत्येक व्यक्ति को बुला कर कहा था—

"तुम्हारे सभी के भीतर ब्रह्म की शक्ति है—दरिद्रों में रहने वाले देवता तुम्हारी सेवा चाहते हैं। इस बात ने युवकों के चित्त को जगा दिया है। इस वाणी का फल देश की सेवा में आज विचित्र भाव से फलित हो रहा है। उनकी वाणी ने जैसे मनुष्य को सम्मान दिया है वैसे ही शक्ति भी दी है।··· देश के युवकों ने जो दुस्साहसिक अध्यवसाय का परिचय दिया है उसके मूल में है, स्वामी विवेकानन्द की यह वाणी।···" (रामकृष्ण मिशन विद्यार्थी मन्दिर, बेलूड़ मठ के द्वारा प्रकाशित 'संदीपन' संख्या २, १९६१ ई०)

स्वामी विवेकानन्द के देहत्याग के पश्चात् कुछ सालों के भीतर ही बंगाल तथा समग्र भारत में निमाक जातीय आन्दोलन जिस रूप में परिणत हो गया था, जिसके कारण भारत अब स्वतन्त्र हो गया है और स्वतन्त्रता संग्राम में देश के युवकों ने जिस प्रकार उत्कृष्ट भूमिका का ग्रहण किया था उसकी उद्भावना मानो एकमात्र स्वामीजी की वाणी से ही आयी थी।···

नेताजी सुभाषचन्द्र बसु ने अपने आत्मचरित में लिखा था—"···स्वामी विवेकानन्द जब मेरे जीवन में प्रविष्ट हुए उस समय मेरी उम्र १५ वर्षों से भी कम थी। उसके बाद से मेरे अन्तर में प्रचण्ड विप्लव आया और सब कुछ उलट पलट गया।··· उनकी वीरता-व्यञ्जक प्रतिच्छवि तथा शक्तिपूर्ण-वाणी के माध्यम से स्वामीजी मेरे सामने पूर्ण विकसित आदर्श व्यक्तित्व रूप में आविर्भूत हुए और उन्होंने जिस पथ का निर्देश दिया था, उस सम्बन्ध में ही मैं गम्भीर चिन्ता में डूब गया।··· मेरी अस्थि मज्जा के भीतर तक एक अभिनव जाग्रति की सृष्टि हुई।··· दिन पर दिन, सप्ताह पर सप्ताह, मास पर मास मैं एकाग्र चित्त से उनकी वाणी तथा, रचनावली पढ़ने लगा। उनकी पत्रावली में तथा कोलम्बो से अलमोड़ा तक प्रदत्त व्याख्यानमाला में देशवासियों के प्रति इतने अधिक कार्यकर उपदेश थे जो मेरे हृदय को विपुलभाव से अनुप्राणित करने लगे।"

* * *

कोलम्बो से मद्रास तक और उसके बाद कलकत्ते में देशवासियों की ओर

से स्वामीजी को जो राजोचित अभिनन्दन दिये गये थे उनसे वे विशेष सकोच-युक्त और क्लान्त हो पड़े थे। इस विजय अभियान तथा भाषण आदि से अपने को मुक्त करके वे गठनमूलक कार्य में व्रती हुए। इसी से दिखाई पड़ता है कि कुछ दिनों के बाद कलकत्ते के स्टार थियेटर मे—"सर्वावयव वेदान्त" नाम से एक भाषण देकर उन्होंने व्याख्यान पर्व समाप्त कर दिया।**

अनेक गुरुभाई उनके पास आ खड़े हुए। १८९७ ई० के मार्च के अन्त में स्वामीजी ने रामकृष्णानन्द को मद्रास में वेदान्त प्रचार के लिए भेज दिया। वे मद्रास शहर में स्थायी केन्द्र स्थापित कर शहर के विभिन्न अशों में क्रम से सप्ताह में १०।१२ क्लास करने और भाषण देने लगे। इसी तरह थोड़े दिनों के भीतर समस्त दक्षिण भारत में अनेक समितियाँ प्रतिष्ठित करके उन्होंने वेदान्त प्रचार तथा सेवा कार्य का प्रवर्तन किया।

स्वामीजी के सेवाभाव से अनुप्राणित होकर उनके गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्दजी ने मुर्शिदाबाद में दुर्भिक्ष पीड़ित लोगों की सेवा में आत्मनियोग किया। स्वामीजी भी उन्हें आर्त नारायण-सेवा कार्य में धन और सेवक भेजकर सहायता देने लगे। स्वामी अखण्डानन्द ने सैकड़ों क्षुधित व्यक्तियों के मुख में अन्न दिया, दुर्भिक्ष से अनेक मनुष्यों की जीवन-रक्षा करके परित्यक्त शिशुओं का सग्रह कर महुला में एक अनाथाश्रम स्थापित किया और जातिवर्ण का विचार न रखकर उन शिशुओं का पालन पोषण तथा शिक्षा प्रदान करके उन्हें मनुष्य बनाने के काम में जीवन उत्सर्ग कर दिया। उन्होंने जीवन के अन्तिम दिन तक उस जनकल्याणसाधन को ही श्रेष्ठ व्रत रूप से ग्रहण किया था।

उसी १८९७ ई० में स्वामी त्रिगुणातीतानन्द ने दिनाजपुर में एक दुर्भिक्ष सेवा केन्द्र स्थापित करके चारों ओर के अनेक ग्रामों में दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता की थी। बाद में अन्यान्य स्थानों में विविध सेवा कार्य प्रवर्तित हुए थे। उसी साल के बीचो-बीच गुरुभाई स्वामी शिवानन्द सीलोन में वेदान्त प्रचार के लिए भेजे गये। स्वामी सारदानन्द और स्वामी अभेदानन्द अमेरिका में सफलता के साथ वेदान्त प्रचार का कार्य चलाने लगे। जनसेवा

कार्य भारत में तथा बाहर के देशों में विभिन्न प्रकार से फैल गया। परन्तु इन यन्त्र को चलाने के लिए स्वामीजी की प्रचुर शक्ति का व्यय हुआ था। उनके स्वास्थ्य की अवस्था देखकर उनके गुरुभाई विशेष चिन्तित हो उठे। उनके सामने स्वामीजी श्रीरामकृष्ण देव के प्रतिनिधि और उन्हीं के निर्वाचित नेता थे। स्वामीजी के भीतर शक्ति सञ्चार द्वारा ही श्रीरामकृष्ण देव ने अपना युगचक्र का प्रवर्तन किया था।···

स्वामीजी हिमालय में तथा गंगातीर के किसी प्रशस्त स्थान में भावी मठ प्रतिष्ठित करने तथा रामकृष्ण मिशन प्रतिष्ठान गठित करने के काम में बहुत ही व्यस्त थे। किन्तु गुरुभाइयों के अनुरोध को भी उन्होंने नहीं टाला। ब्रह्मानन्द आदि कुछ गुरुभाइयों और पाश्चात्य तथा मद्रासी शिष्यों को लेकर वे दार्जिलिंग शैलावास में कुछ दिन रहने के लिए चले गये।

पर्वत की ठंडी आबहवा तथा निर्जन परिवेश में आकर स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए, किन्तु जो विश्राम उनके स्वास्थ्योद्धार के लिए विशेष आवश्यक था वह उन्हें नहीं मिला। कई बड़ी बड़ी योजनाओं को रूप देने के लिए वे बहुत ही व्यस्त थे।

खेतड़ी के राजा से मिलने के लिए उन्हें कुछ दिनों के लिए कलकत्ते आना पड़ा। राजा के साथ आलमबाजार मठ में पाश्चात्य देशों में प्रचार कार्य के संचालन की बहुत आलोचना हुई। खास कर उन्हें अपने साथ इंगलैण्ड ले जाने के लिए ही राजा आये थे। परन्तु अस्वस्थता के कारण स्वामीजी के लिए यह सम्भव न हुआ।

स्वामीजी पुनः दार्जिलिङ्ग लौट गये। किन्तु उनके मानस में जो चिन्तायें जगी थीं उन्हें कार्य रूप में परिणत न करने तक वे पहाड़ पर भी बेचैनी का अनुभव करने लगे। पहाड़ से उतर आकर आलमबाजार मठ के संगठन कार्य में स्वामीजी व्रती हुए। यहाँ उन्होंने चार ब्रह्मचारियों को सन्यासधर्म में दीक्षित किया। मठवासियों का आध्यात्मिक जीवन गठित करना भी उनका एक विशेष महत्त्व का कार्य था।

पाश्चात्यों की सहति-शक्ति ने उन्हें मुग्ध कर दिया था। संहति के बिना कोई स्थायी बड़ा कार्य सम्भव नहीं होता। इस कारण उन्होंने सन्यासी और गृहस्थ भक्तों को लेकर संघ रचना की व्यवस्था की। १८९७ ई० का १ मई एक विशेष स्मरणीय दिन था। स्वामीजी के आह्वान से बागबाजार स्थित बलरामबाबु के भवन में आश्रमिक तथा गृहस्थ भक्त लोग एकत्रित हुए। स्वामीजी ने सबको उद्देश करके संघटन की आवश्यकता समझाते हुए कहा—"सुनियन्त्रित प्रतिष्ठान के सिवाय कोई वृहत् कार्य सम्पन्न होना सम्भव नहीं है।''' हम जिनके नाम पर सन्यासी हुए हैं, आपलोग जिन्हें जीवन का आदर्श मानकर गृहस्थ आश्रम में रह रहे हैं, देहावसान के द्वादश वर्षों के भीतर प्राच्य और पाश्चात्य देशों में जिनके पवित्र नाम और अलौकिक जीवन का अभावनीय विस्तार हुआ है यह संघ या प्रतिष्ठान उन्हीं श्रीरामकृष्ण के नाम से प्रतिष्ठित होगा। हमलोग प्रभु के दास हैं। आपलोग इस कार्य में सहायक बनें।"

सर्वसम्मति से स्वामीजी का प्रस्ताव गृहीत हुआ और भविष्यत् कार्य प्रणाली तथा विधि विधान की विशद आलोचना के अनन्तर प्रतिष्ठान के उद्देश्य और कर्म प्रणाली इस प्रकार निर्धारित हुई :—

१—यह संघ 'रामकृष्ण मिशन' के नाम से परिचित होगा।

२—इसके उद्देश्य—रामकृष्णदेव ने मनुष्य जाति के कल्याण के लिए अपने जीवन में जिस सत्य का प्रचार और अनुष्ठान किया था उसका प्रचार करना और सर्व साधारण के इहलौकिक तथा पारलौकिक कल्याण के लिए उन तत्वों को कार्य रूप में परिणत करने में सबको सहायता देना।

३—संघ का उद्देश्य और आदर्श है—जनता की सेवा तथा उनका आत्मिक कल्याण साधन। राजनीति के साथ इस संघ का कोई सम्पर्क नहीं है।

इसी ढंग की विविध कार्य पद्धति तथा नियम गठित हुए। सबकी सम्मति से स्वामी विवेकानन्द साधारण सभापति निर्वाचित हुए। स्वामी ब्रह्मानन्द और योगानन्द कलकत्ता केन्द्र के सभापति और उपसभापति हुए। इसी तरह

स्वामीजी ने उस दिन रामकृष्ण मिशन स्थापित करके संघ को बहुजनहिताय सक्रिय कर दिया।

स्वामी विवेकानन्द ने जाति-वर्ण का भेद न रखकर मानव जाति के कल्याण के लिए रामकृष्ण मठ और मिशन रूप जिस युगसंघ का गठन किया था। उसमें मानव-सेवा का प्राधान्य यद्यपि सुस्पष्ट था तथापि इस प्रतिष्ठान का आदर्श तथा कर्मधारा भारत और बाहर के देशों के अनेक जन सेवा प्रतिष्ठानों के आदर्श और कर्मधारा से सम्पूर्ण स्वतन्त्र है। 'शिव ज्ञान से जीव सेवा' ही इस प्रतिष्ठान का मूलमन्त्र है। जीव को शिव समझ कर उसकी पूजा ही मुख्य साधन है। श्रीरामकृष्ण के विशाल हृदय में जो विश्वप्रेम प्रतिभासित हुआ था उसी विश्वप्रेम और एक मानवता की अनुभूति को जन सेवा के माध्यम से उद्बुद्ध करने के लिए स्वामी विवेकानन्द ने जाति के भीतर व्यावहारिक क्षेत्र में यह संघ गठित किया था। विभिन्न धर्मों में सौभ्रात्र स्थापित करना भी इनका अन्यतम उद्देश्य था। चरम आदर्शवाद की ओर से रामकृष्ण मठ और मिशन जन-सेवा क्षेत्र में एक विशेष स्थान अधिकृत किये हुए हैं, और संसार के सारे सेवाव्रतियों के सामने विश्व मानवता का एक नूतन क्षितिज उद्‌घाटित कर दिया है।

इस संघ के सेवाव्रतियों के सामने—"आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च" अपनी मुक्ति तथा जगत् का हितरूप युगल आदर्श स्थापित है। भगवान् की अभिव्यक्ति जानकर जीव मात्र की सेवा करने से भगवान् की पूजा होती है। इस प्रकार नरनारायण की सेवा द्वारा चित्तशुद्धि क्रम से आत्मानुभूति होती है। यथार्थ में नारायण जानकर रुग्णों, दुखियों और मूर्खों की सेवा से आत्मोपलब्धि तथा जगत् का हित दोनों ही साधित होते हैं। शास्त्रों में कलियुग के लिए दानधर्म की महिमा वर्णित हुई है—दानमेकं कलौ युगे—उस दान धर्म को स्वामीजी ने चित्त शुद्धि के उपाय रूप सेवाधर्म में रूपान्तरित कर दिया। दान चार प्रकार के हैं—धर्मदान, विद्यादान, प्राणदान और अन्नदान। धर्मप्रार्थी को धर्मोपदेश दानविद्याहीन को विद्यादान, रुग्ण और

न्नु पु धो औषध पथ्य और सेवा द्वारा जीवित करके प्राण दान तथा क्षुधातुर ो अन्नदान—ये चार प्रकार का दान ही भगवत् सेवा ज्ञान से करना होगा। गवद्‌बुद्धि से इस प्रकार की सेवा, पूजा का ही नामान्तर है।

उपनिषद् का उपदेश है—"पितृदेवो भव मातृदेवो भव"। युगधर्म f प्रवर्तक स्वामी विवेकानन्द ने उपनिषद् वाक्य के साथ 'दरिद्रदेवो भव, मूर्खदेवो भव' (दरिद्र और मूर्ख तुम्हारे देवता हो) इनको भी सलग्न कर दिया। दान के समय दाता के मन में जो अहकार और ऊँच-नीच का बोध रहता है उसके स्थान मे दाता सेवक और ग्रहीता उस समय भगवान् है, इस प्रकार सेव्य सेवक भाव मन म लाने से प्रत्येक मनुष्य को देवता के आसन पर बिठाकर अपने को दान पुजारी बनाना चाहिए। स्वामीजी के द्वारा प्रवर्तित इस सेवाधर्म म व्यक्तिगत, पारिवारिक, धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा आन्तर्जातिक ज यन में सुदूरप्रसारी फल होने की विपुल सम्भावना है।

स्वामी विवेकानन्द ने नरनारायण की सेवा के लिए १८८७ ई० में जिस रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी वह १८९९ ई० में बेलुड के विस्तृत भूमि में स्थानान्तरित 'बराहनगर श्रीरामकृष्ण मठ' के साथ युक्त होकर बेलुड मठ के सन्यासियों के द्वारा सचालित एक नायक युगल प्रतिष्ठान (मठ और मिशन) रूप से धीरे धीरे विस्तार को प्राप्त हुआ ह। बेलुड मठ से जेनरल सेक्रेटरी ने द्वारा १९६२ ई० के मई मास म प्रकाशित १९६० ६१ साल की कार्यविवरणी म दिखाई पडता है कि वर्त्तमान में भारत और भारतेतर देशों म रामकृष्ण मठ और मिशन के १३८ स्थायी केन्द्र और २२ उपकेन्द्र हैं। उपकन्द्र भी रामकृष्ण सघ के सन्यासियो द्वारा परिचालित हो रहे है।

उन केन्द्रो से उस साल चिकित्सा विभाग में १२ अस्पतालो के अन्तर्विभाग में २७,८१६ रोगियो की चिकित्सा हुई, और ६८ दवाखानों में ३७,०२,६६६ रोगियो को दवा दी गयी। शिक्षा विभाग में १७६ शिक्षाकेन्द्रो से ४३,४०२

छात्रा तथा १८,१२६ छात्राओं ने भारतवर्ष, पाकिस्तान, सिंहल, सिंगापुर, फिजी और मॉरिशस द्वीप में शिक्षा प्राप्त की है।

इसके अतिरिक्त ग्रामोन्नयन, नारीकल्याण और श्रमिकों तथा अनुन्नत श्रेणी के लोगों में व्यापक रूप से सेवाकार्य किया गया है। ग्रन्थ प्रकाशन विभाग से अंग्रेजी तथा भारत के प्रधान आठ भाषाओं में श्रीरामकृष्ण भाव-धारा और भारतीय संस्कृति के प्रचार के लिए अनेक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। पाश्चात्य देशों में विशेष रूप से भाषण, क्लास, आलोचना और ग्रंथ प्रकाशन के माध्यम से धर्म और संस्कृति के प्रचार का कार्य किया गया है। इस तरह स्वामीजी ने मानव जाति के कल्याण के लिए जिस रामकृष्ण मठ और मिशन रूप यन्त्र को चालू कर दिया था वह अग्रगति के रास्ते चल पड़ा है और उन्होंने कहा था—इस यन्त्र को कोई रोक न सकेगा।"

बाईस

रामकृष्ण मिशन की प्रतिष्ठा के कुछ दिनों के बाद (१८९७ ई० के ६ मई) स्वामीजी चिकित्सकों के परामर्श से कुछ गुरुभाइयों को साथ लेकर नैनाताल होकर अलमोड़ा जाने को बाध्य हुए। सेवियर दम्पता, मिस मूलर आदि पाश्चात्य शिष्य लोग पहले ही अलमोड़ा चले गये थे। अलमोड़ा निवासियों ने विशेष आडम्बर और सम्मान के साथ स्वामीजी का स्वागत किया था। उसके उत्तर में उन्होंने तपोभूमि हिमालय की महिमा-कीर्तन करते हुए वहाँ एक मठ स्थापित करने की इच्छा प्रकट की।

हिमालय में आकर स्वामाजी बहुत प्रसन्न हुए। और उस एकान्त स्थान में रहकर वह अपनी भविष्य कर्म पद्धति के सार्थक रूपायण के विषय में विचार

करने लगे। जिस आन्दोलन को उन्होंने चलाया उसे उन्नति के पथ पर ले जाने में उनकी शक्ति का यथेष्ट क्षय हुआ। उन्होंने कहा था—"एक ही चिन्ता की आग मेरे दिमाग में जल रही है। वह है भारत के जन-साधारण की उन्नति-साधन और उसके लिए जिस यन्त्र को मैंने चालू किया है उसका जितना अंश मैंने सम्पादित किया है।...लड़के लोग जिस ढंग से दुर्भिक्ष में सेवा-कार्य चला रहे हैं, दुःखियों तथा दरिद्रों में कैसे काम कर रहे हैं, उसे देखकर मन आनन्द से भर जाता है। ये प्राणों की ममता छोड़कर अस्पृश्य कालरा रोगी के बिछौने पर बैठे सेवा कर रहे हैं। भूखे दरिद्रों यहाँ तक कि चंडालों के मुख में भी अन्न दे रहे हैं। ..." यह दरिद्र-नारायण की सेवा ही विराट् पुरुष की पूजा है।

स्वामीजी ने अमेरिका से भारत में पैर रखते ही भारतवासियों को खासकर युवकों को मातृभूमि की सेवा में जीवन उत्सर्ग करने के लिए पुकारा—"आगामी ५० वर्षों तक उस परम जननी मातृभूमि ही तुम्हारे आराध्य देवता हों।... प्रथम पूजा विराट् की पूजा—तुम्हारे सामने, तुम्हारे चारों ओर जो लोग हैं उनकी ही पूजा करनी होगी। सेवा नहीं—पूजा। ये मनुष्य, ये पशु—ये ही तुम्हारे ईश्वर हैं, और तुम्हारे स्वदेशवासी ही तुम्हारे प्रधान उपास्य हैं।"

रामकृष्ण मठ और मिशन को यन्त्र बनाकर स्वामीजी ने उस विराट् की पूजा का प्रवर्तन किया।

* * *

अलमोड़ा में स्वामीजी लगभग ढाई मास थे। उनका प्रधान कार्य था प्राच्य और पाश्चात्य में आरब्ध कार्यों के विस्तार में सहायता देना। किन्तु अलमोड़ा छोड़ने के पूर्व जो दो भाषण उन्होंने दिये थे उनसे सभी मुग्ध हुए। स्थानीय अधिवासियों के विशेष आग्रह से उन्होंने जिला स्कूल में हिन्दी में जो भाषण दिया था उसका विषय था—"वेद का उपदेश—तात्विक और

व्यवहारिक" स्वामीजी ऐसी सुन्दर हिन्दी जानते थे यह किसी को ज्ञात नहीं था। इसलिये उन्होंने मैं अंग्रेज अधिवासियों के लिए अंग्रेजी में उन्होंने जो व्याख्यान दिया था उस सभा में गोरखा रेजीमेन्ट के कार्नल पुलि सभापति थे। उस व्याख्यान का विषय था—"उपजातीय देवता और आत्मतत्व।" व्याख्यान सुनते समय सभी के चित्त एक उच्च भावभूमि में प्रतिष्ठित हो गये थे।...

६ अगस्त को अलमोड़ा छोड़कर स्वामीजी पंजाब और कश्मीर के सफर में निकल पड़े। बरेली, अम्बाला, अमृतसर, रावलपिंडी और मारी होकर वे श्रीनगर पहुँचे। कश्मीर में वे राज अतिथि के रूप में थे। सभी जगह वे अनेक प्रकार से सम्मानित हुए। अनेक स्थानों में उन्हें भाषण देने पड़े। अधिकांश भाषण हिन्दी में ही हुए। उन भाषणों में उन्होंने भारत के उद्धार की बात ही कही। गुरु गोविन्दसिंह के प्रति गंभीर श्रद्धा निवेदित करते हुए उन्होंने कहा—" यदि तुम लोग देश का हित करना चाहते हो तो हर एक को गोविन्दसिंह बनना पड़ेगा।...उनके भीतर जो हिन्दू रक्त था उस पर ध्यान दो।" सभी को साम्प्रदायिक सकीर्णता से मुक्त होने के लिए उन्होंने आवाहन किया। मानवात्मा का महिमाकीर्तन, छुआछूत का परिहार और नारी शिक्षा की आवश्यकता सबके सामने उन्होंने उपस्थापित कर दी। जाति भेद, खाद्या-खाद्य का विचार और पुण्य भूमि की महिमा भी आलोचना के विषय थे। उन्होंने अपने अन्तर का अग्निस्पर्श सबको दिया। आर्यसमाजियों के साथ भी उनकी अनेक आलोचनायें हुई थीं।...

श्रीनगर से वे फिर मारी में आये। वहाँ स्वामीजी का अभिनन्दन दिया गया। उन्होंने भी उसके उत्तर में हृदयस्पर्शी भाषण दिया। उनके दर्शन के लिए बड़ा भीड़ लग जाती थी। मारी से रावलपिंडी होकर कश्मीर के महाराजा के विशेष आमन्त्रण से स्वामीजी जम्बू पधारे। कश्मीर के महाराजा स्वामीजी के दर्शन कर बहुत ही श्रद्धासम्पन्न हो गये। तथा प्रधान मन्त्री और उच्च राज-कर्मचारियों के साथ स्वामीजी का धर्म प्रसंग सुनकर इतने अधिक मुग्ध हो

गये कि, दस बारह दिन तक वहाँ रहकर हर तीसरे दिन एक एक भाषण देने के लिए उन्होंने स्वामीजी से अनुरोध किया। स्वामीजी ने जम्मू में कई भाषण दिये। जम्मू के बाद स्यालकोट। वहाँ दो भाषण दिये। अलमोड़ा छोड़कर अब तक लगभग तीन मास धर्मचर्चा, भाषण और आलोचना आदि चला कर वे लाहौर आये। स्वामीजी के आगमन से वहाँ विशेष हलचल मच गयी। लाला हंसराज आदि आर्यसमाज के नेताओं ने विशेष समारोह के साथ स्वामीजी का स्वागत किया। वे लाहौर दस ग्यारह दिन रहे। प्रतिदिन ही उन्हें व्यस्त रहना पड़ता था। आर्यसमाज, सिक्ख सम्प्रदाय तथा अन्यान्य अनेक प्रतिष्ठानों में योग दान और वार्तालाप, आलोचना आदि के अतिरिक्त उन्होंने "हिन्दू धर्म की साधारण भित्ति", "वेदान्त" और "भक्ति" के सम्बन्ध में तीन सारगर्भ व्याख्यान देकर सब श्रेणियों के श्रोताओं में विस्मय उत्पन्न कर दिया था। व्याख्यान सुनने के लिए इतने अधिक लोग एकत्रित होते थे कि सम्हालना कठिन था।

सिक्खों की एक शुद्धिसभा में सम्मिलित होकर उनका उदार भाव देखकर स्वामीजी बहुत ही प्रसन्न हुए। जो सिक्ख विशेष कारण से दूसरे धर्म में चले गये थे, उनमें जो लोग पश्चात्ताप करके पुनः अपने धर्म में लौट आना चाहते थे उन्हीं के लिए ऐसी शुद्धि की व्यवस्था थी।

लाहोर में प्रोफेसर तीर्थराम गोस्वामी (जो बाद में स्वामी रामतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुए थे) स्वामीजी के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट हुए थे। स्वामीजी का संग उनके जीवन में एक महान शुभ मुहूर्त था। उन्होंने स्वामीजी को शिष्यों के साथ अपने घर में भोजन का निमन्त्रण दिया था। भोजन के अन्त में स्वामीजी गाना गाने लगे—"जहाँ राम तहाँ काम नहीं, जहाँ काम तहाँ नहीं राम।" गान की मर्मवाणी तीर्थराम के अन्तर में बार बार आघात करने लगी। उन्होंने अपनी सोने की घड़ी स्वामीजी को उपहार के रूप में दी। स्वामीजी ने उसे ग्रहण तो किया पर साथ ही साथ उसे तीर्थराम

के जेल में दारा पर कहा—"अच्छी बात मित्र, इसी जेल में मैं अब से इस पद्धति का व्यवहार करूँगा।"

स्वामीजी के सम्पर्श में आकर तीर्थराम के अन्तर का सुप्त वैराग्य उद्दीप्त हो उठा। 'क्षणमपि सज्जनसंगतिरेका, भवति भवार्णवतरणे नौका'—यह आप्तवाक्य सार्थक हुआ। थोड़े ही दिनों के भीतर उन्होंने नौकरी छोड़ कर सन्यास जीवन ग्रहण कर लिया। *धर्मप्रचार के लिए वे अमेरिका भी गये थे। अनेक धर्मग्रंथों की रचना भी की थी। उत्तर भारत में उनका वृहत् शिष्य सम्प्रदाय है।

* * *

इस व्याख्यान के दौरे में स्वामीजी का शरीर विशेष रूप से अस्वस्थ हो गया था। परन्तु वे मानो दैव-बल से सब काम चलाते जा रहे थे। लाहौर से देहरादून, सहारनपुर, दिल्ली, अलवर, जयपुर और खेतड़ी पुनः जयपुर और अजमेर तथा खंडवा आदि स्थान होकर वे १८९८ ई० के जनवरी मास के बीचो बीच भग्न स्वास्थ्य लेकर कलकत्ते लौट आये। गुजरात और बम्बई प्रान्त के अनेक स्थानों से बार-बार आमन्त्रण आते रहने पर भी शरीर की अस्वस्थता के कारण वे उन स्थानों में नहा जा सके।

लगभग ५ मास तक स्वामीजी ने उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया था। सभी जगह उन्हें भाषण देने पड़े—अधिकांश ही हिन्दी में। सचित्र लिपिकार के द्वारा सरक्षित न होने के कारण अनेक भाषण अब लुप्त हो गये हैं। धर्मालोचना, कथोपकथन और प्रश्नोत्तर भी उनके प्रचार के अंग थे। इसी तरह शिक्षित, उच्चपदस्थ तथा जनसाधारण आदि सभी स्तरों के मनुष्यों का अन्तःस्पर्श करने का उन्हें मौका मिला। उसका फल भी बहुत व्यापक हुआ। उन्होंने अपनी अमृतमयी भावधारा से हजारों हृदयों को स्नान करा दिया।

स्वामीजी का काम मानवात्मा को लेकर था, राष्ट्रों को लेकर नहीं। मनुष्यों में भगवान् मानो शृंखल से बँधे हुए है, उन्हें मुक्त करने की चेष्टा ही उन्होंने

सर्जन की है। स्वामीजी की वाणी देवत्व की वाणी थी। उन्होंने कहा था— "स्वयं देवता बनो और दूसरा को देवत्व में उन्नत होने में सहायता प्रदान करो।" फिर नरनारायण की सेवा का आह्वान भी बीच-बीच में झंकृत होता था। समस्त जगद्वासियों ने स्वामी विवेकानन्द को किस भाव से ग्रहण किया इसका प्रमाण उनके स्वतःप्रणोदित विवेकानन्द शताब्दी जयन्ती उत्सव की प्रस्तुति के माध्यम से मिलता है। अंग्रेजी के अतिरिक्त बंगला, हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलेगू, मलयालम आदि भारत के प्रायः सभी प्रधान भाषाओं में स्वामीजी की सभी वाणियों और रचनावलियों का प्रकाशन हो रहा है। केवल बंगला भाषा में ही पचीस हजार सेट अर्थात् ढाई लाख ग्रन्थ मुद्रित हो रहे हैं।

स्वामीजी के भाव में अनुप्राणित देश विदेश के विभिन्न स्तरों के स्त्री पुरुषों की पृष्ठपोषकता से एक शक्तिशाली 'शताब्दी जयन्ती-समिति' गठित हुई है। प्राच्य और प्रतीच्य में श्रीरामकृष्ण-संघ द्वारा परिचालित केन्द्रों के अतिरिक्त अनेक अस्थायी केन्द्रों में केवल विविध कार्य सूचियों के माध्यम से एक साल तक 'शताब्दी जयन्ती उत्सव' अनुष्ठित होगा ऐसा नहीं, बल्कि भारत के हजारों ग्रामों, शहरों और विभिन्न स्कूल-कालेज विद्यालयों आदि में अनुष्ठित होकर यह जयन्ती उत्सव जातीय उत्सव के रूप में परिणत होगा।

'विवेकानन्द शतवार्षिकी' की प्रस्तुति का समाचार उद्बोधन पत्रिका की बंगाब्द १३६८ माघ संख्या में इसी आशय का प्रकाशित हुआ—(जनवरी १९६३ ई० से जनवरी १९६४ ई०)

"१९६३ ई० के जनवरी मास में जब बेलुड़ मठ में विवेकानन्द शतवार्षिकी उत्सव का उद्बोधन तब से होगा, स्वामी विवेकानन्द की ग्राम-उन्नयन, चरित्र-गठन और यथार्थ मनुष्य गठन विषयक वाणियाँ केन्द्रीय मन्त्रिसभा के समाज उन्नयन विभाग (Union Ministry of Community

Development) के उद्योग से भारत के साढ़े पाँच लाख ग्रामों के निवासियों के भा T निःशुल्क वितरण के लिए मुद्रित हो।

केन्द्रीय मन्त्रिसभा के सूचना और प्रचारकार्यालय (Union Ministry of Information and Broadcasting) के द्वारा स्वामीजी की जीवनी के अवलम्बन से एक प्रामाणिक चलचित्र तैयार होगा। केन्द्रीय शिक्षा सचिव (Secretary, Education Ministry) श्रीकृपाल ने 'शिक्षाप्रसंग में स्वामी विवेकानन्द' नामक एक पुस्तक विभिन्न भाषाओं में छपवाकर समस्त भारत में निःशुल्क वितरित करने के लिए स्वीकृति दी है। केन्द्रीय समाज उन्नयन समिति की सभानेत्री (Chairman Central Welfare Board) श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख ने १७ भारतीय भाषाओं में स्वामी विवेकानन्द लिखित 'भारत की नारी' पुस्तक छापने की प्रतिश्रुति दी है। १९६३ ई० में उन्होंने स्वामीजी के सम्बन्ध में एक विशेष संख्या (Special Number) प्रकाशित करने का वचन दिया है।

विभिन्न विश्वविद्यालय, प्रतिष्ठान, समिति आदि के सहयोग से भारत में तथा भारत के बाहर स्वामीजी की शिक्षा और भावादर्श के प्रचार के उद्देश्य से व्याख्यान, आलोचना तथा सभा का प्रबन्ध किया जा रहा।

बेलूड़ में श्रीरामकृष्ण संघ के सन्यासियों तथा ब्रह्मचारियों का एक सम्मेलन भी होगा। सर्वधर्मसमन्वय तथा पारस्परिक शुभेच्छा-स्थापन के उद्देश्य से वाराणसी में भी उसी प्रकार का एक सम्मेलन होगा।"

* * *

स्वामीजी अस्वस्थ होकर कलकत्ते आये। परन्तु उनकी योजनायें एक पर एक कार्यान्वित हो रही थीं। कलकत्ते लौट आकर १८९८ ई० के ३ फरवरी को बेलूड में गंगा के पश्चिम तीर पर मठ के लिए एक पुराने मकान सहित ७ एकड़ से भी कुछ अधिक जमीन उन्होंने खरीद ली। नयी जमीन में मन्दिर तथा अन्यान्य मकान आदि का बनाना आरम्भ हो गया। प्रधानतया

स्वामीजी की शिष्या मिस मूलर और मिसेज उलीबुल के धन से ही मठ की जमीन खरीदना तथा मकान आदि का निर्माण सम्भव हुआ। फरवरी के बीचोबीच आलम-बाजार से हटकर नयी जमीन के दक्षिण ओर नीलाम्बर मुकर्जी के उद्यान भवन में मठ सामयिक रूप से स्थानान्तरित हुआ।

मिस मूलर, मिस मार्गारेट नोबेल (निवेदिता), मिसेज उलीबुल और मिस मैक्लाउड आदि पाश्चात्य शिष्यायें पुण्य भूमि भारत की शिक्षा और संस्कृति के साथ प्रत्यक्ष रूप से परिचित होकर श्रीरामकृष्ण संघ के काम में सहायता देने के लिए भारत आयीं। ये लोग नये परिवेश के साथ अपने को मिलाकर नयी खरीदी जमीन के एकांश में अवस्थित पुराने मकान में ही रहने लगे। शिक्षा दीक्षा के माध्यम से पाश्चात्य शिष्याओं को भारत की सेवा के उपयोगी रूप से गठित कर लेना स्वामी का अन्यतम विशेष कार्य था। वे सुबह शाम उन्हें अनेक प्रकार के उपदेश देते, स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछताछ करते थे और उन्हें नियमित शिक्षा देने के लिए उन्होंने अपने एक सुयोग्य सन्यासी शिष्य स्वामी स्वरूपानन्द को नियुक्त कर दिया।

इधर स्वामी सारदानन्द अमेरिका में वेदान्त प्रचार करके स्वामीजी के बुलाने से भारत लौट आकर मठ के संचालन के कार्य में व्रती हो गये। स्वामी शिवानन्द भी सीलोन में वेदान्त प्रचार करके मठ में लौट आये। दिनाजपुर में व्यापक दुर्भिक्ष-सेवा-कार्य को समाप्त कर स्वामी त्रिगुणातीतानन्द भी स्वामीजी से आ मिले। अपने गुरुभाइयों की कर्म शक्ति तथा सफलता देखकर स्वामीजी विशेष गर्व का अनुभव करने लगे।

कुछ दिनों के बाद २२ फरवरी को श्रीरामकृष्ण देव की जन्म तिथि-पूजा आदि अनुष्ठित हुए। उस दिन स्वामीजी ने ५० अब्राह्मण गृही भक्तों को गायत्री मन्त्र और यज्ञोपवीत प्रदान किया। उस समय उन्होंने कहा था—'तीनों वर्णों को उपनयन का अधिकार है।'''समय आने पर सभी को ब्राह्मण पदवी में उन्नीत करना होगा।" २७ फरवरी को विपुल समारोह के साथ श्रीरामकृष्ण देव का साधारण उत्सव दाँ लोगों के ठाकुरबाड़ी में

अनुष्ठित हुआ। हजारों स्त्री पुरुषों को जाति-वर्ण का भेद न रखकर प्रसाद पेट प्रसाद भोजन करते देखकर स्वामीजी विशेष आनन्दित हुए।

● ● ●

मिस मार्गारेट नोबल अपने पूर्व जीवन का सारा सम्पर्क छोड़कर भारत की सेवा में आत्म नियोग करने के लिए आयी थीं। स्वामीजी ने इस शिष्या के जीवन को आदर्श ब्रह्मचारिणी के रूप से त्याग, वैराग्य, तितिक्षा और तपस्या के भीतर से गठित कर दिया। समय जानकर शिष्या के प्रार्थनानुसार एक शुभ दिन (२५ मार्च) में उन्हें ब्रह्मचारिणी व्रत में दीक्षित किया। मार्गारेट नोबल का नया नाम 'निवेदिता' हुआ था। उन्होंने अपना नाम लिखा Nivedita of R. K. V. अर्थात् रामकृष्ण विवेकानन्द चरणों में निवेदिता। अक्षरशः यह नाम सार्थक हुआ। अनाघ्रात फूल की तरह सौरभमय पवित्र जीवन को उन्होंने भारत की सेवा में उत्सर्ग कर दिया। उनके सम्बन्ध में स्वामीजी ने कहा था—"निवेदिता भारत के प्रति इङ्गलैण्ड का एक श्रेष्ठ उपहार है। निवेदिता यहाँ प्राण देने के लिए आयी हैं गुरुगीरी करने के लिए नहीं।*

उत्तर भारत की भाषण-यात्रा समाप्त कर स्वामीजी ने कुछ दिनों तक साधारण सभा में भाषण नहीं दिया। वे गठनमूलक कार्य्य में लगे हुए थे। केवल ११ मार्च स्टार थियेटर में मार्गारेट नोबल ने 'इङ्गलैण्ड में भारतीय आध्यात्मिक विचार का प्रभाव' और १८ मार्च को स्वामी सारदानन्द ने एमरल्ड रंग-मंच पर 'अमेरिका में हमारा उद्देश्य' के सम्बन्ध में जो भाषण दिये थे उनमें स्वामीजी सभापति रहे। २७ मार्च को बहुबाजार विज्ञान परिषद्

---

* निवेदिता के जीवन की साधना और अवदान के सम्बन्ध में विशेष रूप से जानने के लिए रामकृष्ण मिशन सिस्टर निवेदिता गर्ल्स स्कूल से प्रकाशित प्रव्राजिका मुक्तिप्राणा लिखित 'भगिनी निवेदिता' जीवनी ग्रन्थ विशेष सहायता देगा।

के एक अधिवेशन में उन्होंने भाषण दिया। १६ मार्च को स्वामीजी ने अपने दो ब्रह्मचारी शिष्यों को सन्यास व्रत में दीक्षित किया। उनके नाम स्वामी स्वरुपानन्द और स्वामी सुरेश्वरानन्द हुए।...

बहुत सावधान रहने पर भी स्वामीजी का स्वास्थ्य क्रमशः खराब हो रहा था। डाक्टरों के परामर्श से वे ३० मार्च को दार्जिलिंग चले गये। हिमालय के निर्जन स्थान में आकर वे अधिक समय ध्यानमग्न ही रहा करते थे। आवश्यक चिट्ठी पत्रियों का उत्तर तथा कामकाज का निर्देश भी उन्हें ही देना पड़ता था। विश्राम लेने से उनका स्वास्थ्य कुछ सुधर गया। परन्तु कलकत्ते में प्लेग के प्रकोप से सैकड़ों मनुष्यों का प्राण-नाश, हजारो लोगों के प्राण-भय से पलायन तथा शहर में अत्यन्त विशृङ्खल अवस्था का समाचार पाकर वे वहाँ स्थिर नहीं रह सके। ३ मई को स्वामीजी कलकत्ते उतर आये और साथ-साथ प्लेग निवारण कार्य्य में कूद पड़े। उसी दिन हिन्दी और बँगला में उन्होंने दो घोषणा-पत्र छपवाये—लोगों को साहस दिलाया और सान्त्वना की वाणी सुनायी। साथ साथ स्वामी शिवानन्द, निवेदिता और सदानन्द के नेतृत्व में सेवाकार्य्य भी आरम्भ हुआ। सेवा शिविर निर्माण, स्वय सेवक दलगठन, बस्तियों का कतवार अपसारण तथा स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का प्रवर्तन किया गया। बंगाली युवक दल के दल सेवाकार्य में जुट गये। निवेदिता ने मूर्तिमती सेवा के रूप में हजारों के हृदय में आशा और साहस उत्पन्न कर दिया।

स्वामीजी के एक गुरुभाई ने पूँछा था "इतना धन कहाँ से आयेगा?" स्वामीजी ने क्षण भर भी विलम्ब न कर उत्तर दिया "क्यों? आवश्यक हुआ तो मठ की नयी जमीन आदि सब बेच डालूँगा।" परन्तु वैसा नहीं करना पड़ा। रामकृष्ण मिशन के उस जन कल्याण-कार्य्य के लिए प्रचुर धन का संग्रह हो गया। स्वामीजी कलकत्ते के उस सकटकाल में देव-दूत की तरह आविर्भूत हुए थे। प्लेग शान्त हो गया।

हिमालय में विश्राम करने और एक आश्रम की प्रतिष्ठा करने के लिए

स्वामीजी ११ मई को अलमोड़ा चले गये। साथ में कुछ गुरुभाई और पाश्चात्य शिष्यायें तथा भक्त थे। स्वामीजी पाश्चात्य शिष्याओं को भारत की संस्कृति और धर्म के साथ परिचित कराना चाहते थे। यह भी उनकी शिक्षा का एक विशेष अंग था।

शैलावास में स्वामीजी अधिकांश समय ध्यान-भजन में बिताते थे। आश्रम-स्थापन के लिए अनुकूल स्थान की खोज भी होने लगी। पाश्चात्य शिष्याओं तथा भक्तों को अनेक प्रकार की शिक्षा दान, दर्शनार्थियों के साथ धर्मालोचना तथा भारत और पाश्चात्य देशों में कार्य-परिचालन में भी उनका बहुत समय जाता था। मद्रास से प्रकाशित "प्रबुद्ध भारत" पत्रिका कई कारणों से बन्द हो गयी थी। स्वामीजी ने उस पत्रिका को अलमोड़ा में लाकर स्वामी स्वरूपानन्द के हाथ में उसके सम्पादन और सेवियर दम्पती के ऊपर उसके परिचालन का भार दिया।* इस ढंग से अलमोड़ा के कार्य को सुप्रतिष्ठित करके स्वामीजी पाश्चात्य शिष्याओं को लेकर १० जून को काश्मीर रवाना हुए। तीन मास से अधिक समय तक वे लोग काश्मीर के विभिन्न स्थानों में रहे। बहुत दिनों तक स्वामीजी के साथ रहने से शिष्याओं का धर्मजीवन बहुत उन्नत हुआ था। स्वामीजी के साथ रहना ही एक बड़ी शिक्षा थी। भगिनी निवेदिता ने उस समय का विवरण "Notes of some wanderings with Swami Vivekananda" नाम के ग्रन्थ में लिपिबद्ध किया था। स्वामीजी का मन उस समय सांसारिक विषयों से परे उच्च आध्यात्मिक स्तर पर विराजमान रहता था। लोककल्याण विषयों भी मानो उनके मन से विदूरित हो गयी थी। उन्होंने अपने को विराट् के चरणों में अवलुंठित कर दिया था।...

हजारों सन्यासियों और तीर्थयात्रियों के साथ वे भी अमरनाथ दर्शन के

---

* स्वामीजी-परिकल्पित हिमालय का मठ सेवियर दम्पती के द्वारा १८९९ ई० में मायावती पहाड़ पर स्थापित हुआ और साथ-साथ 'प्रबुद्ध भारत' भी वहीं स्थानान्तरित हुआ।

लिए गये। केवल निवेदिता ही उनके साथ थीं। १८ हजार फुट ऊँचे एक दुर्गम पर्वतमार्ग का अतिक्रमण कर केवल कौपिन पहने हुए अमरनाथ की गुफा में (१२७३० फुट) प्रविष्ट होकर स्वामीजी उस बर्फ की गुफा में ध्यान-मग्न हो गये। सदाशिव अमरनाथ ने उन्हें दर्शन देकर इच्छामृत्यु वर दिया। उनका हृदय मन शिव मय हो गया। वे आनन्द में विभोर हो गये। कुछ दिनों तक उनके मुख में महादेव की बात के अतिरिक्त अन्य बात नहीं था।...

अमरनाथ दर्शन से लौटकर वे एकायक क्षीर भवानी दर्शन के लिए अकेले चले गये। उस जाग्रत तीर्थ में वे सात दिनों तक कठोर साधना में निमग्न थे। मुसलमानों के अत्याचार से वह देवी-मन्दिर बहुत दिन पहिले ही विध्वस्त हो गया था। एक कुण्ड के भीतर देवी की पूजा होती थी।

वे यहाँ प्रतिदिन पूजा और होम करते थे तथा चावल, बादाम आदि के साथ मन भर दूध की खीर पकाकर देवी को चढाते थे। पुजारी ब्राह्मण की बालिका कन्या की 'कुमारी' रूप से पूजा करके जपमाला हाथ में लिये बहुत देर तक जप में मग्न रहते थे। देवी मन्दिर का ध्वसावशेष देखकर वे दुःखित चित्त से एकदिन सोच रहे थे—मैं उस समय वहाँ रहता तो प्राण देकर भी माँ की रक्षा करता। साथ साथ देव-वाणी हुई—"तू मेरी रक्षा करता है? या मैं तेरी रक्षा करती हूँ? विधर्मा यदि मन्दिर का ध्वस करे और मेरी मूर्त्ति को कलुषित कर डाले तो उसमें तेरा क्या है? बेटा, मैं चाहूँ तो यहाँ इसी क्षण सातमंजिला सोने का मन्दिर बना सकती हूँ।" दैव वाणी सुनकर स्वामीजी स्तब्ध हो गये। दूसरे ही क्षण पर परिवर्तित हो गया। हृदय-कन्दर दिव्य आलोक से उद्भासित हो गया। वे अन्तर और बाहर उस आद्या शक्ति का स्पन्दन अनुभव करने लगे। इस ब्रह्माड में माँ ही एकमात्र कर्त्ता, कारयित्री तथा विश्व-सृजन पालन सहार-कारणी है। मैं तो एक छोटा सा यन्त्र मात्र हूँ—माँ की गोदी में एक छोटा बालक।

युगाचार्य, वाग्मी, कर्मी, नेता, गुरु, जन सेवक, देश प्रेमिक विवेकानन्द ने जगज्जननी की विराट् सत्ता में अपने को विलीन कर दिया। वे मातृ-गत प्राण

शिशु हो गये। मुख में केवल माँ माँ शब्द था। उनमें अपनी इच्छा कुछ भी नहीं रह गयी—सभी माँ की इच्छा पर निर्भर है।...

सात दिन के अनन्तर क्षीर-भवानी से लौट कर जब वे शिष्यायों से आ मिले तब उनका यह परिवर्तन देखकर सभी विस्मय विमुग्ध हुए। मातृभाव से उन्होंने सभी का अन्तर भर दिया।

कश्मीर भ्रमण समाप्त कर स्वामीजी १८ अक्टूबर को एकायक बेलूड़ मठ में उपस्थित हुए। स्वामी सारदानन्द स्वामीजी के शिष्याओं को लेकर उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों में भ्रमण करने के लिए निकल पड़े।

तेईस

स्वामीजी को पाकर मठ के निवासी बहुत आनन्दित हुए। परन्तु उनके शरीर और मन की अवस्था देखकर विषाद की काली छाया से सबके हृदय आच्छन्न हो गये।

इधर नयी जमीन पर मठ भवन का निर्माण-कार्य प्रायः सम्पूर्ण हो गया था। मठ के स्थान परिवर्तन के लिए आयोजन चल रहा था। १८९८ ई० १२ नवम्बर काली पूजा के पहले दिन सबजननी श्रीसारदा देवी ने बागबाजार से नये मठ प्रांगण में आकर श्रीश्रीठाकुर की पूजा की। श्रीरामकृष्ण देव युग युगान्तर के लिए वहाँ अधिष्ठित हुए। बेलूड़ मठ महातीर्थ में परिणत हो चला।

दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीश्रीमाता जी का विशेष आशीर्वाद लेकर बाग बाजार में 'भगिनी निवेदिता बालिका विद्यालय' की प्रतिष्ठा हुई।

परवर्ता ६ दिसम्बर जगत् के आध्यात्मिक इतिहास में एक महान स्मरणीय

दिन है। उसी दिन प्रातःकाल पुण्य मुहूर्त में स्वामीजी स्वयं श्रीरामकृष्ण देव की भस्मास्थि पूर्ण डिबिया को कंधे पर रखकर नये मठ प्रांगण में आये, एवं अनेक उपचारों से पूजा होमादि कार्य समाप्त कर श्रीरामकृष्ण देव को बेलूड़ मठ में प्रतिष्ठित किया। स्वामी शिवानन्द की सहयोगिता से एक मन दूध से खीर पकाकर श्रीठाकुर को भोग दिया गया।

नये मठ में श्रीरामकृष्ण देव को प्रतिष्ठित करके स्वामीजी के सिर पर से एक विराट् चिन्ता का बोझ उतर गया। समागत लोगों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा—"आज आप लोग कायमनोवाक्य से श्रीठाकुर के चरणों में प्रार्थना कीजिये कि महायुगावतार श्रीठाकुर बहु जन हिताय बहु-जन सुखाय इस पुण्य क्षेत्र में दीर्घ काल तक विराजमान रहकर इस स्थान को सब धर्मों का अपूर्व समन्वय केन्द्र बनाये रखें।"

उसके अनन्तर शिष्य शरत् चन्द्र चक्रवर्ती को सम्बोधित करके स्वामीजी ने कहा था—"श्रीठाकुर की इच्छा से आज उनका धर्मक्षेत्र सुप्रतिष्ठित हुआ। १२ साल की चिन्ता मेरे सिर पर से आज उतर गयी। यहाँ सभी मतों और भावों का सामञ्जस्य रहेगा। श्रीठाकुर के उदार भाव का यह केन्द्रस्थान होगा। इस स्थान के महासमन्वय की उद्भिन्न छटा से जगत् प्लावित हो जायगा।"

सन्यासी लोग नये मठ में आकर क्रमशः रहने लगे। अगले २ जनवरी को नीलाम्बर बाबू के बगीचे से मठ नये भवन में स्थानान्तरित हुआ।

योजनायें एक पर एक कार्य्य रूप में परिणत होने से स्वामीजी की चिन्ता का लाघव होने पर भी उनका स्वास्थ्य क्रमशः टूटता ही जा रहा था। दमा के कारण इतना अधिक कष्ट हो रहा था कि डाक्टरों के परामर्श से वे वैद्यनाथ चले गये। किन्तु विश्राम और एकान्त निवास से उनके स्वास्थ्य की विशेष उन्नति नहीं दिखाई पड़ी। निदान ३ फरवरी को वे बेलुड़ मठ लौट आये।

मठ सुचारु रूप से चल रहा था। ध्यान, जप और शास्त्रादि का पाठ तथा आलोचना को अविराम चलते देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। गुरु-भाइयों और शिष्यों को लेकर एक सभा का आयोजन करके सबको युगावतार

श्रीरामकृष्ण की वाणी का समस्त भारत में प्रचार करने का उपदेश दिया। स्वामी शिवानन्द और प्रकाशानन्द को उन्होंने प्रचार कार्य के लिए ढाका भेज दिया।...

दल के दल कालेज के छात्र और शिक्षित सज्जन स्वामीजी के पास आते थे। वे उनके साथ केवल धर्म, दर्शन, विज्ञान, देश विदेश की बात, इतिहास और साहित्य की ही चर्चा नहीं करते थे बल्कि प्रत्येक को मनुष्य बनने का 'मन्त्र' देते थे। उनका कहना था "मैं ऐसे धर्म का प्रचार करना चाहता हूँ जिससे ठीक ठीक मनुष्य तैयार हो सकें।" युवकों को सम्बोधित कर वे कहते थे—दो हजार वीर हृदय, निष्ठावान, चरित्रवान् और मेधावी युवक और बीस करोड़ रुपये मिलने से मैं भारत को अपने पैरों पर खड़ा कर सकता हूँ।" ..

भारतवर्ष में उन्होंने भाषण अल्प ही दिये थे। परन्तु उनका विशेष काम था 'जमीन तैयार करना।' उन्होंने भारत में 'जमीन तैयार' करके उसे उपजाऊ भी बना दिया है।*

भारत की कल्याणचिन्ता में जब वे मग्न थे उस समय भी वे पाश्चात्य देशों में अपने आरब्ध कार्य की बात नहीं भूले थे। क्योंकि उसके ऊपर भारत की उन्नति भी बहुत कुछ निर्भर था। उनके स्वास्थ्य सुधारने के लिए दीर्घ विश्राम और वायु परिवर्तन की विशेष आवश्यकता थी। इसके लिए डाक्टरों के परामर्श से वे समुद्र-यात्रा के लिए तैयार हुए। अब की साथ में स्वामी तुरीयानन्द को लिया। निवेदिता अपनी नारी शिक्षा कार्य के लिए धन संग्रहार्थ

---

* उस भूमि में बोने के लिए उन्होंने वायु-मण्डल में बीज छिड़क दिया था, किन्तु फसल वे अल्प ही देख सके थे। वर्तमान भारत की उन्नति में वह फसल अब हम देख रहे हैं। २० वीं शती में भारतवासियों के भीतर जो परिवर्तन आया है वह स्वामी विवेकानन्द भारत में जो जागृति लाये थे उसी का फल है।

इंग्लैण्ड जाने को तैयार हुई। वह भी स्वामीजी के साथ चला। १८९९ ई० के २० जून को 'गोलकुण्डा' जहाज में कलकत्ता से रवाना होकर सब लोग मद्रास, कोलम्बो, एडेन, नेपल्स और मार्सेल के रास्ते ३१ जुलाई लन्दन पहुँचे। टिलबेरी डक पर अनेक भक्त और मित्रों ने स्वामीजी का स्वागत किया। दो अमेरिकन शिष्य भी डेट्रएट से उन्हें ले जाने के लिए आये थे।

लन्दन की साधारण सभा में इस बार स्वामीजी ने कोई भाषण नहीं दिया। मित्र वर्गों की भीड़ लग गयी थी। १६ अगस्त को वे न्यूयार्क के लिए रवाना हो गये और लगभग १ साल वे अमेरिका में रहे। स्वामीजी के दूसरी बार के पाश्चात्य भ्रमण का विवरण बहुत अल्प ही मिलता है और वह भी बहुत विच्छिन्न भाव से रखा गया था। विभिन्न स्थानों में उन्होंने अनेक व्याख्यान दिये थे, क्लास, वार्तालाप तथा आलोचनायें भी अल्प नहीं हुई थीं। परन्तु उनका कोई लिखित विवरण रखा नहीं गया था। इस कारण उनके काम का परिमाण नहीं जाना जाता। किन्तु उनकी कुछ चिट्ठियों से उनकी उस समय की मानसिक अवस्था का जो चित्र खिंच उठा है उससे स्पष्ट मालूम होता है कि वे लौकिक कार्य से अपने को समेट कर विराट की इच्छा के इंगित से चल रहे थे। उन्होंने लिखा था—" माँ का काम माँ ही कर रही हैं इसलिए अब मैं उस विषय में दिमाग नहीं खपाता। माँ ही यन्त्री हैं हम उनके हाथ के यन्त्र के सिवाय और क्या है?" तथापि वह यन्त्र अनुपम कार्य करता जा रहा था।

न्यूयार्क आकर स्वामी अभेदानन्द के वेदान्त प्रचार की सफलता देखकर स्वामीजी बहुत ही आनन्दित हुए। स्वामी तुरीयानन्द को अभेदानन्द के साथ कार्य करने के लिए छोड़कर वे विश्राम के लिए 'रिजलिमैनर' गये।

८ नवम्बर न्यूयार्क लौटकर एक अधिवेशन में उन्होंने सभापतित्व किया। १० तारीख को जनता की ओर से उन्हें अभिनन्दन पत्र दिया गया। उत्तर में उन्होंने एक सुन्दर भाषण दिया। पुराने मित्र उन्हें पाकर विशेष आनन्दित हुए। न्यूयार्क में दो सप्ताह रहते समय स्वामी तुरीयानन्द पर मट क्लुअर का

उनकी मानसिक निर्लिप्तता का एक सुन्दर चित्र मिस मैक्लाउड को आलामिडा से १६०० ई० के १८ अप्रैल में लिखे पत्र में मिलता है ··· "मैं अच्छा ही हूँ, मानसिक रूप से बहुत ही अच्छा हूँ।—···अब गँठरी-पेटी बाँधकर उस महान मुक्तिदाता की प्रतीक्षा में चलने के लिए बैठा हूँ। 'अब शिव पार करो मेरी नैया'—हे शिव, मेरी नाव को पार ले चलो!

"कितना ही क्यों न हो, जो, मैं तो अभी भी उस पूरब के बालक के सिवाय और कोई नहीं हूँ, जो दक्षिणेश्वर में पंचवटी के नीचे श्रीरामकृष्ण की अपूर्व वाणी अवाक् होकर सुनता और भाव में विभोर हो जाता था। वह बालक-भाव ही मेरा असली स्वभाव है—और कामकाज परोपकार आदि जो कुछ किया गया है वह उसी स्वभाव के ऊपर कुछ समय के लिए आरोपित एक उपाधि मात्र है। अहा! अब फिर मैं वह मधुर वाणी सुन रहा हूँ—वह चिर-परिचित कंठस्वर, जो मेरे हृदय के अन्तस्तल तक कंटकित कर रहा है।··· आता हूँ प्रभु, आता हूँ।

"हाँ, अब मैं ठीक आ रहा हूँ।···अपने सामने अपार निर्वाण समुद्र देख रहा हूँ। मैं जो जन्मा था उससे मैं प्रसन्न हूँ।··· फिर जो निर्वाण के शान्ति-समुद्र में डुबकी लगाने जा रहा हूँ उसमें भी मैं खुश हूँ।···

"शिक्षादाता, गुरु, नेता, आचार्य, विवेकानन्द चला गया—पड़ा है केवल पूरब का वह बालक, प्रभु का वह चिर-शिष्य, चिर-पदाश्रित दास।··· मैं सभी विषयों में उदासीन होकर उनकी इच्छा से अनायास तैरते हुए चल रहा हूँ। आता हूँ माँ, आता हूँ—तुम्हारे स्नेहपूर्ण वक्ष पर धारण करके जहाँ तुम मुझे ले चल रही हो उस अशब्द, अस्पर्श, अज्ञात अद्भुत राज्य में। अभिनेता का भाव पूर्णतया परित्याग करके केवल द्रष्टा और साक्षी का तरह डूब जाने में मुझे कोई द्विविधा नहीं है।···

"चारों ओर बहुत से पुतले और चित्र सजाये हुए रखे देखकर लोगों के मन में जिस प्रकार शान्तिभंग का कारण उपस्थित नहीं होता, इस अवस्था में

समस्त संसार ठीक उसी तरह प्रतीत हो रहा है, मेरे अन्तःकरण में शान्ति का विराम नहीं है। फिर वही पुकार! आता हूँ प्रभु, आता हूँ।...''

उनकी कर्मग्रंथियाँ शिथिल हो गयी थीं। तथापि विराट् पुरुष के इशारे से वे अक्लान्त भाव से कर्म करते जा रहे थे।

कैलिफोर्निया छोड़ने के पहिले एक भक्तिमती शिष्या ने स्वामीजी को 'सन्ताक्लैरा' प्रान्त में पर्वत के नीचे के निर्जन प्रदेश में १६० एकड़ भूमि प्रदान की थी। स्वामी जी ने उस दान को स्वीकार कर वहाँ वेदान्त-साधना का एक केन्द्र स्थापित करने का प्रबन्ध किया, कैलिफोर्निया निवास के अन्तिम अंश में उन्हें पेरिस प्रदर्शनी के द्वारा आयोजित धर्म इतिहास सभा में योगदान का निमन्त्रण मिला। उस आमन्त्रण को स्वीकार कर उस सम्मेलन में योग दान के लिए मई मास के अन्तिम भाग में वे न्यूयार्क के लिए चल पड़े। रास्ते में शिकागो और डेट्रायट में कुछ भाषण देकर वे न्यूयार्क पहुँचे। यहाँ भी स्वामी जी को प्रत्येक शनि और रविवार गीता के सम्बन्ध में भाषण देना पड़ा था।

परन्तु उनका स्वास्थ्य एकदम अच्छा नहीं था—मानो अकालवार्धक्य का आक्रमण हो गया। वे अमेरिका से विदाई लेकर २० जुलाई को पेरिस की ओर रवाना हुए और वहाँ लेगेट दम्पति के अतिथि रूप से रहे। पेरिस के अनेक कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक, गायक गायिका, शिक्षयित्री, चित्रकार, शिल्पी आदि गुणियों के साथ उनका परिचय हुआ। इस अवसर में फ्रांसिसी भाषा भी उन्होंने अच्छी तरह सीख ली।

शिकागो सर्वधर्मसम्मेलन का फल देखकर कैथोलिक सम्प्रदाय के लोगों ने पेरिस में धर्मसम्मेलन के आयोजन के विरुद्ध तीव्र आपत्ति उठायी थी। इस कारण पेरिस में विश्व प्रदर्शनी के उद्योग से केवल धर्म इतिहास सम्मलन की व्यवस्था हुई। स्वामी जी ने उस सम्मेलन में केवल दो ही भाषण दिये थे। परन्तु उनका फल अपूर्व हुआ था, पाश्चात्य के संस्कृतज्ञ पंडितों और

दार्शनिकों के विरुद्ध खड़े होकर उन्होंने वैदिक धर्म को प्रतिष्ठित किया। प्रथम भाषण में—'वैदिक धर्म प्रकृति पूजा से उत्पन्न है'—पाश्चात्य पंडितों के इस मत का उन्होंने शास्त्र और युक्ति के द्वारा खण्डन करके जर्मन पंडित ओपार्ट के साथ तर्क किया। शिव पूजा वेद से उद्भूत है और वेद ही हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म तथा भारत के अन्यान्य धर्मों की मूल भित्ति है—इसे भी उन्होंने प्रतिष्ठित किया।

दूसरे भाषण में बुद्धदेव के बहुत पहले श्रीकृष्ण का आविर्भाव तथा गीता की रचना महाभारत के बाद नहीं हुई इसे प्रमाणित करके भारतीय चारु कला, साहित्य और ज्योतिष के ऊपर ग्रीक प्रभाव अस्वीकृत कर दिया। उपस्थित पण्डितमण्डली में खासकर नवानों में बहुतों ने स्वामीजी के मत का अनुमोदन किया।

स्वामीजी उस समय प्राय तीन मास पेरिस में थे। अनेक विख्यात पंडित और मनीषी उनके भाव से प्रभावित हुए। पाश्चात्य में फ्रांसीसी सभ्यता का प्रभाव देखकर वे बहुत ही मुग्ध हुए। 'प्राच्य और पाश्चात्य' नामक ग्रंथ में उन्होंने लिखा है—" पेरिस यूरोपीय सभ्यता गंगा की गोमुखी है। यह पेरी विश्वविद्यालय यूरोप का आदर्श है। इनकी रचना की नकल सभी यूरोपीय भाषाओं में है। दर्शन, विज्ञान और शिल्प की खान है यह पैरी नगरी। अन्य सभी जगह इनकी नकल होती है।"

दूसरी बार पाश्चात्य भ्रमण में उन्होंने अमेरिका और यूरोप की सम्पन्न शक्ति के पीछे जो हिंसक भोग लालसा, स्वार्थ और प्राधान्य प्रतिष्ठा की अदम्य चेष्टा तथा साम्राज्यवाद की लोलुप दृष्टि विद्यमान है उसका आविष्कार किया था। पाश्चात्य सभ्यता की बाहरी चमक से वे फिर आकृष्ट न हुए। उन्होंने निवेदिता से कहा था " पाश्चात्य की जयनयात्रा अट्टहास की तरह है, परन्तु उसके नीचे है रुदन। उसकी परिसमाप्ति भी रुदन में होगी। हँसी-खिलखिली जो कुछ है सभी ऊपरी है—परन्तु इसका भीतरी भाग बहुत ही करुण

है।'''यहाँ (भारत में) जो कुछ विवाद, रोना-पीटना है, सब कुछ ऊपरी ही है; परन्तु भीतर है निर्विकार भाव और आनन्द।"*

चार मित्रों के साथ स्वामीजी २४ अक्टूबर को पेरिस छोड़कर वियना, हंगरी, सर्विया, रूमानिया, बुलगेरिया, कुस्तुनतुनियाँ होकर मिस्र देश में आये। दो चार दिन रह रहकर द्रष्टव्य स्थानों को देखा। किंतु पेरिस के बाद यूरोप का कोई भी शहर उन्हें अच्छा नहीं लगा। उसके अतिरिक्त पाश्चात्य की भोग लालसा तथा प्राधान्य प्रतिष्ठा के लिए प्रतिद्वन्द्विता उनके अन्तर को अत्यन्त पीड़ित कर रही थी। वे भारत लौटने के लिए व्याकुल हो रहे थे और साथियों से विदा लेकर पहिले जो जहाज मिला उससे भारत लौट आये। उन्हें अंतर से असीम की पुकार सुनाई पड़ रही थी। ''प्राच्य और प्रतीच्य के मिलन की प्रचेष्टा, वेदांत के प्रचार से यूरोप को 'धूमायमान ज्वालामुखी के मुख में रक्षा करने की इच्छा'—सब कुछ मन के एक एकांत कोने में दबा हुआ रह गया। उन्होंने निर्गम की पुकार का उत्तर दिया।

चौबीस

बम्बई से वे ९ दिसम्बर (१९०० ई०) रात को एकाएक बेलुड़ मठ में आ पहुँचे। स्वामीजी को पाकर मठवासियों को अपार आनन्द हुआ। मठ

---

* भगिनी क्रिस्टिन की स्मृति-कथा से जाना जाता है कि, स्वामीजी ने १८९६ ई० में उनसे कहा था "आगामी आन्दोलन जिस नव युग की सृष्टि करेगा, वह रूस या चीन से आयेगा।''' पृथ्वी में अब तृतीय युग चल रहा है। इस युग में वैश्यों का प्राधान्य है, परन्तु चतुर्थ युग में शूद्रों (सर्वस्व खोये हुओं) का प्रधान्य होगा।

मे'अभी प्रसाद पाने की घटी पड गई थी। स्वामीजी भी सबके साथ प्रसाद पाने के लिए पंगत मे बैठ गये। उसके बाद रातभर विविध वार्त्तालाप मे सब लोग जागते ही रह गये। मठ में आनन्द-प्रवाह बहने लगा।...

जीर्ण देह और भग्न स्वास्थ्य लेकर वे लौटे थे। मठ में आते ही कप्तान सेवियर का मृत्यु समाचार पाकर मिसेज सेवियर को इस दुर्वह शोक मे सान्त्वना देने के उद्देश्य से वे तुरन्त मायावती जाने के लिए तैयार हो गये। वहाँ तार भेज दिया। स्वामी शिवानन्द और शिष्य सदानन्द को साथ लेकर २७ दिसम्बर को चलकर २६ को काठगोदाम पहुँचे। उस समय हिमालय मे महान् प्राकृतिक दुयाग—आँधी पानी, वज्रपात, बरफ का गिरना चल रहा था। स्वाम जी उसकी पर्वाह न करके ३ जनवरी (१६०१ ई०) को मायावती पहुँचे। आश्रम देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। सेवियर दम्पति ने अपने हृदय का खून बहाकर स्वामीजी परिकल्पित हिमालय के उस आश्रम को बहुत ही सुन्दर ढग से बनाया था। सेवियर के शरीर का भी उस आश्रम के निकट दाह-संस्कार किया गया था। स्वामीजी को प्राप्त कर मिसेज सेवियर को बहुत कुछ सान्त्वना मिली। १३ जुलाई को स्वरूपानन्द स्वामीजी की जन्म तिथि मनायी गई। दूसरे दिन मिस्टर सेवियर का जन्म दिन था। जीवित रहते तो उनकी अवस्था ५६ वर्ष होती।

स्वाम जी १५ दिन मायावती मे रहे। मिसेज सेवियर के साथ वार्त्तालाप के अतिरिक्त आश्रम के साधुओं के साथ अनेक गुरुत्वपूर्ण आलोचनायें होती थीं। आश्रम मे बैठकर ही चिरतुषार मंडित अभ्र भेदी हिमालय के अगणित शिखरो का दर्शन कर वे ध्यान मग्न हो जाते थे। एकदिन मिसेज सेवियर से उन्होंने कहा था—'जीवन के अन्तिम भाग में काम-काज छोड कर यहाँ आ रहूँगा। ग्रंथ रचना और संगीतालाप लेकर जीवन बिता दूँगा।" ..

मायावती मे बैठकर देश-विदेशो के अनेक कार्यों का निर्देश देने के लिए उन्हें प्रचुर चिट्ठी पत्री लिखनी पडी थी। 'प्रबुद्ध-भारत' के लिए उन्होंने तीन सुचिन्तित निबन्धों की भी रचना की थी—'आर्य और तामिल जाति',

'सामाजिक समस्या सभा के अधिवेशन का प्रत्युत्तर', 'थियोसफी के सम्बन्ध में मन्तव्य'। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के 'नासदीय सूक्त' का एक सुन्दर अनुवाद भी उन्होंने यहाँ प्रकट किया था। स्थान की आर्द्रता और उष्णता के कारण साधारणतः ही बहुत श्वास कष्ट होने से वे दमे से पीड़ित हो गये। उस दुर्गम के भीतर ही १८ जनवरी को उन्होंने मायावती छोड़कर चतुर्थ दिन समतल भूमि में पीलीभीत स्टेशन पर आ ट्रेन पकड़ ली। किन्तु उन्होंने साथी गुरुभाई शिवानन्द से कहा—"महापुरुष, अब तुम हम लोगों को छोड़कर बेलुड़ मठ के लिए धन-संग्रह करने के काम में निकल पड़ो।" उस प्रसंग में स्वामीजी ने कहा था—"बेलुड़ मठ का प्रत्येक संन्यासी भारत के चारों ओर धर्मप्रचार तथा लोक शिक्षा देकर घूमता रहेगा और अन्त तक कम से कम दो हजार रुपये मठ के धन भंडार में जमा करेगा।" स्वामी शिवानन्द ने विनीत भाव से स्वामीजी के आदेश-पालन में सम्मति दी। स्वामीजी बेलुड़ मठ में २४ जनवरी (१९०१ ई०) को लौट आये।

मठ में आकर वे गठनमूलक काम में लग गये। इतने में मठ में कई नये ब्रह्मचारी आ सम्मिलित हुए। उन्होंने नियमित शारीरिक व्यायाम का प्रवर्त्तन किया और शास्त्रादि पाठ के ऊपर जोर दिया। ध्यान भजन भी पूर्ण उद्यम से चलने लगा। तड़के भोर में ही घंटा बजा दी जाती थी। सभी लोग ध्यान घर में जाकर ध्यान में बैठ जाते थे। शरीर की अस्वस्थता के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से निर्दिष्ट समय पर कोई ध्यान न करने आया तो उस दिन मठ में उसका भोजन बन्द और माधुकरी भिक्षा का प्रबन्ध होता था। यहाँ तक कि वयस्क संन्यासियों के लिए भी इस नियम का अपवाद नहीं होता था। कठोर नियम था, किन्तु स्वामीजी ने उसे प्रवर्तित किया। नेता का आदेश सभी ने मान लिया।

* * *

इधर पूर्व बङ्गाल के भक्त लोग स्वामीजी को वहाँ ले जाने के लिए अनेक प्रकार से चेष्टा करने लगे। उनका आग्रह देखकर वे १८ मार्च को कुछ

सन्यासियों के साथ ढाका जाना हुए। विपुल संवर्धना हुई। स्थानीय व्यक्तियों की श्रद्धा ने स्वामीजी को मुग्ध कर दिया। वहाँ उन्होंने दो भाषण दिये। इसके अतिरिक्त अनेक व्यक्तियों ने उनके साथ वार्तालाप करके मनुष्य के भीतर भगवान का दर्शन करने की नयी प्रेरणा पायी।

एक विशेष दिन उन्होंने 'लाङ्गलबन्ध' जाकर हजारों यात्रियों के साथ ब्रह्मपुत्र नदी में स्नान किया। प्रवाद है कि परशुराम उस तीर्थ में स्नान कर मातृहत्या जनित पाप से मुक्त हो गये थे। ढाका से व श्रीरामकृष्ण देव के गृहस्थ भक्त नाग महाशय के जन्म भूमि नारायणगंज शहर के निकट 'देवभोग' ग्राम में गये थे। ढाका रहते समय स्वामीजी दमा रोग से बहुत ही कष्ट भोग रहे थे। परन्तु शरीर के सम्बन्ध में उदास न होकर उन्होंने कहा था—"खैर, मृत्यु हो। यदि हो तो उससे क्या हानि? जो कुछ मैं दे गया वह डेढ़ हजार वर्षों की खुराक है (चिन्ता जगत् में)।"

ढाका से स्वामीजी चन्द्रनाथ के निकट चन्द्रनाथ तीर्थ का दर्शन कर आसाम के गोवालपाड़ा और गौहाटी होकर कामाख्यातीर्थ दर्शन के लिए गये। उस अस्वस्थ शरीर में भी स्थानीय लोगों के विशेष आग्रह से गौहाटी में उन्होंने तीन व्याख्यान दिये। गौहाटी और कामाख्या में उनका शरीर बहुमूत्र और दम से अत्यन्त अस्वस्थ हो गया। किसी किसी ने शिलांग जाने का परामर्श दिया, इस कारण स्वामीजी शिलांग आये। पर्वतीय शीतल रमणीय स्थान में आकर वे प्रसन्न हुए। आसाम के चीफ कमिश्नर सर हेनरी काटन स्वामीजी की अस्वस्थता का समाचार पाकर उनसे मिलने आये और उन्हें स्थानीय सिविल सर्जन की चिकित्साधीन रखा। स्वयं दोनों समय खबर लेने के लिए आते थे और अनेक आलोचनायें भी होती थीं। फलस्वरूप काटन साहब स्वामीजी के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट हुए। उनके अनुरोध से अस्वस्थ रहते भी स्वामीजी ने—"भारतीय सभ्यता और आदर्श" विषय पर एक गंभीर विचार पूर्ण भाषण देकर सबको मुग्ध कर दिया। काटन साहब के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था—"यही एक मनुष्य मैंने देखा जो भारत के अभाव अभि

लोग ठीक ठीक समझते हैं और यथार्थ में ही इस देश की कल्याण-कामना करते हैं।"

शिलाग में कुछ दिन रहने पर भी रोग का कुछ भी उपशम न हुआ। इसलिए मई के मध्य भाग में वे बेलुड़ लौट आये। वैसी स्थिति में वे मठ की दुमंजिल पर गंगा की ओर हवा और प्रकाश युक्त एक कमरे में लगभग सात माह तक रहे।* बहुत अधिक चल फिर नहीं सकते थे। पैर फूलकर शोथ का लक्षण दिखाई दिया था। वैद्यक चिकित्सा होने लगी—जल और नमक एकदम बन्द। उन्होंने चिकित्सा का नियम मान लिया। दो मास से अधिक समय तक उस चिकित्सा से कुछ उपकार हुआ। उस अवस्था में भी वे बगीचे में रोज काम करते थे। पालित गाय, बकरी, हँस, कुत्ता, हिरण, सारस आदि की देखरेख के सिवाय वे उनसे खेलते हुए भी बहुत समय बिता देते थे। बकरी के बच्चे मटरू के गले में उन्होंने घुँघरू पहना दिया था। मटरू नाचते हुए उनके साथ घूमता था। वह भी बालक की तरह उनके साथ खेलते थे।···

नया 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' खरीदा गया था। कुछ दिनों के

---

* बेलुड़ मठ की दुमंजिल पर के जिस कमरे में स्वामीजी रहते थे अभी भी वह कमरा वैसे ही सुसज्जित रखा गया है। घर में उनके व्यवहृत लोहे का पलंग, मेज, कुर्सी, लिखने का सामान, एक आराम कुर्सी, वस्त्रादि रखने की आलमारी, फर्श पर एक गलीचे का आसन जिस पर बैठकर वे ध्यान-जप करते थे, उनके व्यवहृत तानपुरा, पखावज, परिव्राजक जीवन की लम्बी लाठी, बड़ा दर्पण, और भी अनेक वस्तुयें सजायी हुई रखी हैं। दीवाल में श्रीरामकृष्ण देव का एक बड़ा चित्र है। वे बड़े पलंग का व्यवहार बहुत कम करते थे। फर्श पर या छोटी कैम्प-खाट पर ही सोते थे। वर्त्तमान में वह कमरा मन्दिर के रूप में परिणत हो गया है। प्रतिदिन फूल-मालाओं से उसे सजा दिया जाता है। देश-विदेश के यात्री आकर बेलुड़ मठ के उस कमरे का दर्शन और वहाँ श्रद्धा निवेदन करते हैं।

भीतर ही वे उसके सभी खण्डों को पढ गये। भारत के विभिन्न प्रान्तों से अनेक मनुष्य स्वामीजी से मिलने आते थे। वे किसी को लौटाते नहीं थे। इस विषय में वे चिकित्सक का आदेश पूर्णतया पालन नहीं कर सकते थे।

* * *

उस साल बेलुड मठ में स्वामीजी ने यथाशास्त्र प्रतिमा में दुर्गापूजा की। सन्यासियों को उस पूजा में अधिकार नहीं है, इस कारण श्रीश्रीसारदा देवी ने अपने नाम से संकल्प करने का विधान दिया। पूजा के पूर्व दिन श्रीश्रीमाँ को मठ के निकट नीलाम्बर बाबू के उद्यान भवन में लाया गया। उनकी उपस्थिति में समारोह के साथ सात्विक परिवेश के भीतर तीन दिन तक पूजा हुई। 'दीयता भुज्यता' ध्वनि से मठ का प्रांगण गूँज रहा था। नौबत की मधुर तान और ढोल, घडी-घण्टा के गम्भीर शब्द से भागीरथी का वक्ष प्रकम्पित होता था। बेलुड, बाली, उत्तरपाडा तथा दक्षिणेश्वर के सभी ब्राह्मण पूजा में निमन्त्रित हुए थे। दरिद्र नारायणों को पूर्ण तृप्ति के साथ भोजन कराना उत्सव का विशेष अंग था।

दुर्गा पूजा के बाद स्वामीजी ने प्रतिमा में लक्ष्मी पूजा तथा श्यामा पूजा भी सम्पन्न की। बेलुड मठ में दुर्गा पूजा आदि के अनुष्ठान से प्राचीन पन्थी लोग भी समझ गये कि स्वामीजी हृदय, मन और कार्य्य में कहाँ तक हिन्दू हैं। विरुद्ध समालोचकों का विद्वेष भाव भी दूर हो गया। स्वामीजी अद्वैत वादी सन्यासी थे तो भी उन्होंने शास्त्र विहित देव देवियों की पूजा-उपासना को यथार्थ मर्यादा दी है। अपने श्रीगुरुदेव के पदाङ्क का ही उन्होंने अनुसरण किया। वे कुछ नष्ट करने के लिए नहीं आये थे, पूर्ण करने के लिए ही आये थे।

श्यामा पूजा के दूसरे दिन वे अपनी जननी के अभिप्राय के अनुसार कालीघाट के काली मन्दिर में गये। बचपन में एक कठिन रोग के समय उनकी माता ने कालीघाट में पूजा देकर श्रीमन्दिर में लोटने-पोटने की मनौती की थी। परन्तु वह अब तक नहीं किया गया था। स्वामीजी की अस्वस्थता देखकर उनकी

माता उन मनौती की बात की याद कर पुत्र को कालीघाट ले गयी। स्वामीजी ने आदि गंगा में नहा कर गीले वस्त्र में ही श्रीमन्दिर में आकर काली माता की पूजा की। देवी के सामने तीन बार लोट गये, सात बार मन्दिर की प्रदक्षिणा करके मंडप में बैठ कर होम किया। स्वामीजी काली माता के दर्शन के लिए आये हैं यह सुन कर अनेक व्यक्ति श्रीमंदिर में समवेत हुए थे।

बेलुड़ में लौट आकर स्वामीजी ने कहा था—"कालीघाट में अभी भी कितना उदार भाव देखा ? विलायत से लौटे हुए जान कर भी मन्दिर में जाने से मुझे किसी ने रोका नहीं, बल्कि विशेष आदर के साथ मुझे मंदिर में ले जाकर पूजा करने में सहायता दी।"···

मठ की जमीन में गड्ढों को पाटने के लिए सथाल लोग काम कर रहे थे। स्वामीजी उन निष्कपट संथालों को बहुत प्यार करते थे और उनके साथ अपने सम्बन्धियों की तरह मिलते थे। उनके सुख-दुःख की बात सुनते थे। एकदिन उन्हें पूर्ण तृप्ति के साथ खिलाने की स्वामीजी के मन में इच्छा हुई। सथालों के सरदार केष्टा को खिलाने की बात बताते ही उसने कहा—"हम लोग तुम्हारा छूआ हुआ खाना अब नहीं खा सकते—क्योंकि अब शादी हो गई है। तुम्हारा छूआ हुआ नमक खाने से हमारी जाति बिगड़ जायगी बेटा!" स्वामीजी ने कहा—"नमक क्यों खाओगे? नमक बिना दिये ही तरकारी पकाकर खिलायेंगे तो खाओगे न ?" केष्टा उसमें राजी हो गया। उसके अनुसार स्वामीजी ने उन सथालों को पूड़ी, तरकारी, दही, मिठाई आदि भरपेट खिलाकर कहा था—'ये लोग नारायण हैं, आज मैंने नारायण का भोग दिया।"

बाद में शिष्य शरत चक्रवर्ती से कहा—"इन्हें देखा, मानो साक्षात् नारायण हैं। ऐसा सरल चित्त, ऐसा निष्कपट प्रेम मैंने और कहीं नहीं देखा।" उसके अनन्तर मठ के सन्यासियों और ब्रह्मचारियों के प्रति लक्ष्य करके कहा— "अहा, देश के गरीब दुःखियों के लिए कोई नहीं सोचता। जो लोग जाति के मेरुदण्ड हैं, जिनके परिश्रम से अन्न उत्पन्न होता है, मेहतर, भगी एक-

दिन काम बन्द कर दे तो शहर में हाहाकार मच जाता है, हाय ! उनसे सहानुभूति एवं और उनके शोक दुःख में सान्त्वना दे ऐसा देश में कोई नहीं है। उधर देखो न, हिन्दुओं की सहानुभूति न पाने के कारण मद्रास प्रान्त के हजारों पेरिये ईसाई बनते जा रहे हैं। तुम लोग ऐसा न समझो कि केवल पेट के लिए वे ईसाई होते हैं। हम लोग दिन रात कहते हैं कि छूओ, मत छूओ मत। देश में क्या धर्म कुछ है भी ? केवल छूआछूत मानने वाला का दल है। वैसे आचार के मुँह में मारो झाड़, मारो लात। ऐसी इच्छा होती है कि तुम्हारे इस छूआछूत का घेरा तोड़कर अभी जाकर—'कहाँ, कौन पतित दीन दरिद्र है' कहकर सबको श्रीठाकुर के नाम पर बुला लाऊँ। इनके न उठने से मां नहीं जागेगी। मैं दिव्य चक्षु से देख रहा हूँ कि इनके और हमारे भीतर एक ही ब्रह्म, एक ही शक्ति है, केवल विकास में ही भेद है। समस्त अंगों में रक्त सचालन न होने से किसी देश को किसी समय कहीं उठते देखा है ? एक अंग गिर जाय और दूसरे अंग के सबल रहने पर भी उस शरीर से कोई बड़ा काम नहीं हो सकता—यह निश्चित जान लेना।"

स्वामीजी की पुकार का देशवासियों ने उत्तर दिया—गरीबों के दुःख मोचन, छूआछूत का परिवर्जन और पतितों को सामाजिक अत्याचारों से रक्षा करने के काम में देशवासी सजग हो गये। मनुष्यों को उनके वंचित अधिकारों में पुनः प्रतिष्ठित करने का जो काम स्वामीजी ने आरम्भ किया था वह उनके शरीर छोड़ने के साथ ही साथ बन्द नहीं हो गया।

१९०१ ई० के अन्तिम भाग में कलकत्ते में जातीय महासमिति कांग्रेस के अधिवेशन के उपलक्ष्य में भारत के सभी प्रान्तों से समागत प्रतिनिधियों में बहुत लोग स्वामीजी से मिलने आये थे। स्वामीजी ने उनके साथ जिन देश हित कर गठन मूलक कार्यों की आलोचना की थी उनमें एक आदर्श वेद-विद्यालय की स्थापना भी थी। उस वेदविद्यालय में विशिष्ट आचार्य्य लोग प्राचीन आर्य ऋषियों के आदर्शानुसार वेद, उपनिषद्, विभिन्न दर्शन शास्त्र, आर्य्य संस्कृति और संस्कृत साहित्य आदि की शिक्षा देंगे। वहाँ शिक्षा लाभ

के अन्त में गुनी छात्र लोग देश-विदेश में जाकर उपनिषद् के धर्म का प्रचार करेंगे।

स्वामीजी के द्वारा परिकल्पित पूर्णांग वेदविद्यालय अभी स्थापित नहीं हुआ है, परन्तु बेलुड़ मठ तथा भवानीपुर के गदाधर आश्रम आदि विभिन्न शाखा केन्द्रों में सुयोग्य अध्यापकों के निकट वेद, उपनिषद् तथा विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन का प्रबन्ध हुआ है।

गंगा किनारे कलकत्ते के निकट बेलुड़ मठ की तरह स्त्रियों के लिए एक मठ स्थापित करने की इच्छा भी स्वामीजी के मन में थी। "वह मठ गार्गी, मैत्रेयी और उनसे भी ऊँचे स्तर की महिलाओं के आकर-स्वरूप होगा।" उस महिला-मठ की सन्यासिनियाँ भी एषणात्रय का परित्याग कर—"आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च"—तन में जीवन का उत्सर्ग कर तथा त्याग, वैराग्य, तपस्या, काय मनो-वाक्य से पवित्रता और सेवा धर्म के आदर्शों से जीवन गठित करके देशहितकर कार्य, विशेष रूप से स्त्री-शिक्षा विस्तार में आत्म नियोग करेंगी।

स्वामीजी यद्यपि यह स्त्री-मठ प्रतिष्ठित नहीं कर सके तथापि १९५४ ई० में बेलुड़ रामकृष्ण मठ और मिशन के अधिकारियों की चेष्टा से गंगा के पूर्वी तट पर दक्षिणेश्वर कालीमंदिर के निकट श्रीसारदा मठ के नाम से एक स्त्री मठ और सारदा मिशन नाम से एक पृथक रजिस्टर्ड समिति स्थापित हुई है। आज-कल उस युगल प्रतिष्ठानों में सन्यासिनियाँ तथा ब्रह्मचारिणियाँ स्त्री शिक्षा विस्तार तथा अन्यान्य नारी कल्याण-कर कार्यों में व्रती हैं।

* * *

१९०१ ई० के अन्तिम भाग में जापान के दो महान् नागरिक स्वामीजी से मिलने आये। उनमें से एक उस देश के एक बौद्ध मठ के अध्यक्ष रेवरेंड ओदा थे और दूसरे थे जापान के सुप्रसिद्ध दार्शनिक और शिल्पी मिस्टर ओकाकुरा। उन लोगों ने जापान में परिकल्पित आगामी धर्म सम्मेलन में योग-

उनसे मिला और उनकी लघु चेष्टा की बात बताते ही स्वामीजी ने विशेष आनन्द प्रकट करते हुए उनसे कहा—"वत्स, यही यथार्थ में मानव-धर्म है, तुम लोग ठीक मार्ग का ही अनुसरण कर रहे हो। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि भगवान् तुम्हारे सहायक हों, साहस से कमर कस अग्रसर होते चलो। तुमलोग दरिद्र हो इसलिए हताश मत होना, धन आ जायगा। तुम्हारे इस छोटे से अनुष्ठान की भित्ति पर भविष्य में इतना बड़ा काम होगा जिसकी तुमलोग आज कल्पना भी नहीं कर सकते।"

स्वामीजी ने उस प्रतिष्ठान—Poormen's Relief Association (दरिद्र दुःखमोचन संघ) का नाम बदलकर नया नाम दिया 'रामकृष्ण होम अव सर्विस'। युवकों का उत्साह बढ़ाने के लिए उन्होंने उनके प्रथम रिपोर्ट में जनसाधारण के निकट आर्थिक सहायता की प्रार्थना कर एक आवेदन पत्र भी लिख दिया, स्वामीजी के स्नेह पूर्ण काशी का वह सेवा-निकेतन आजकल "रामकृष्णमिशन होम अव सर्विस" नाम से समस्त उत्तर प्रदेश के भीतर एक श्रेष्ठ सेवाश्रम में परिणत हुआ है।

काशी की आबहवा से स्वामीजी के स्वास्थ्य में बहुत अल्प ही सुधार हुआ। श्रीरामकृष्णदेव के जन्मोत्सव के कुछ दिन पहले ही वे बेलुड़ मठ लौट आये। लौट आने के साथ ही साथ उनका स्वास्थ्य एकदम खराब हो गया। पैर फूल गये, सारे शरीर में जल का संचार हुआ, चलने की शक्ति न रही, वे बिछौने पर बेबस होकर पड़ गये। उत्सव का आयोजन चलने लगा, किन्तु स्वामीजी की अस्वस्थता के कारण मठवासियों के मन में आनन्द नहीं था।

साधारण उत्सव के दिन समयवृद्धि के साथ साथ मठ का प्रांगण आनंद कोलाहल से पूर्ण हो उठा। लगभग ३० हजार मनुष्यों की भीड़ एकत्रित हो गयी थी। अनेक स्त्री पुरुष प्रसाद पा रहे थे। बार बार श्री गुरु महाराज की जयध्वनि उठने लगी। अब स्वामीजी स्थिर नहीं रह सके। बहुत कष्ट से जंगले की छड़ पकड़कर खड़े हो गये और विह्वल नेत्रों से समवेत भक्तमण्डली की ओर देखने लगे। श्रीरामकृष्ण के नाम से इतने आदमियों का समागम! अधिक समय

तक वे खड़े नहीं रह सके। सेवक उनके सिर पर हवा करने लगे। "तीसरे पहर भीड़ के कुछ घट जाने पर स्वामीजी के कमरे के दरवाजे जंगले खोल दिये गये। वे घर में बैठकर ही उत्सव का अंतिम दृश्य देखने लगे।

पचीस

मार्च का महीना इसी तरह बीत गया। और भी तीन महीने तक वे इस मर्त्य धाम में रहे। शरीर कभी कुछ स्वस्थ रहता और कभी रोग का अधिक प्रकोप हो जाता था। ऐसी रुग्णावस्था में भी उनके मन में भारत के पुनर्जागरण की चिंता चलती रहती थी। १८९५ ई० के ११ जनवरी को शिकागो से स्वामीजी ने अपने एक मद्रासी शिष्य को लिखा था—" जब तक मेरा शरीर न छूट जाय तब तक सदा कार्य करता रहूंगा और मृत्यु के बाद भी संसार के कल्याण के लिए काम करता रहूँगा। बड़े बड़े काम केवल पूर्ण स्वार्थ त्याग के द्वारा ही हो सकते हैं। उठो, जागो।" *

स्वामीजी का कार्य था—चिंता जगत में। वह संसार के कल्याण के लिए जो विचार छोड़ गये हैं वे सफल न होकर नष्ट नहीं होंगे। आगामी पीढ़ी के लोग स्वामीजी के भाव से अनुप्राणित होकर उनके आरम्भ कार्य को अपने

* स्थूल देह के परित्याग के बाद भी संसार के कल्याण के लिए वे सूक्ष्म देह में काम कर रहे हैं। इतनी बड़ी जन कल्याण-प्रेरणा श्रीरामकृष्ण ने ही स्वामी विवेकानन्द के हृदय में उद्बुद्ध कर दी थी, जिन्होंने शरीर और संसार भूलकर निर्विकल्प समाधि में मग्न रहने की प्रार्थना श्रीठाकुर के पास काशीपुर के उद्यान भवन में की थी।

कन्धों पर उठा लेंगे। मृत्यु के बाद भी 'उनका अदृश्य रूप विभिन्न देशों के शत सहस्र हृदयों में डोलता रहेगा। उनका कार्य चलता रहेगा।*

स्वामीजी महाप्रस्थान के लिए तैयार हो रहे थे किन्तु उस समय भी वे अपने महान गुरुदेव की तरह शिष्यों में किसी को लौटाते नहीं थे। अन्तिम दिन तक वे लोगों को शिक्षा देते थे। उनके हृदय में आग जलती थी, वह आग उन्होंने औरों के हृदय में जला दी थी। वे कहते थे—"यदि देश के लोगों की आत्मा को प्रबुद्ध करने के लिए मुझे सैकड़ों बार मृत्यु यातना का भोग करना पड़े तो भी उससे मैं मुँह नहीं मोड़ूँगा।"

क्रमशः सांसारिक बातों से वे उदासीन हो गये। गम्भीर ध्यान में मग्न रहने लगे, कामकाज की बातें पूछने पर वे कहते—'इन बातों में अब मैं

* १९२१ ई० में स्वामीजी के जन्मोत्सव के दिन सर्वश्री महात्मा गाँधी, पं० मोतीलाल नेहरू, मिस्टर मोहम्मद अली आदि कुछ सहकर्मियों को लेकर बेलुड़ मठ देखने आये थे। उन लोगों ने, स्वामीजी जिस घर में रहते थे, उस घर में जाकर उनके व्यवहृत पदार्थों को श्रद्धा के साथ देखा। जनता के विशेष आग्रह से महात्माजी ने स्वामीजी के कमरे के बगल वाले बरामदे में हिन्दी में एक छोटा सा भाषण दिया। उसमें अन्यान्य बातों के भीतर उन्होंने कहा था—····"मैं यहाँ असहयोग आन्दोलन या चर्खा प्रचार के लिए नहीं आया हूँ। स्वामी विवेकानन्द के जन्मदिन में उनकी पुण्यस्मृति के उद्देश्य से श्रद्धा-ज्ञापन करने के लिए ही आज मेरा यहाँ आना है। मैंने स्वामीजी की पुस्तकों को अच्छी तरह पढ़ा है। फलस्वरूप देश के प्रति पहले मुझे जो प्रेम था वह बहुत बढ़ गया है। युवकों से मेरा अनुरोध है कि स्वामी विवेकानन्द जहाँ निवास कर गये हैं और जहाँ उन्होंने शरीर छोड़ा है, उस स्थान की भावधारा कुछ न कुछ न लेकर खाली हाथ आज लौट न जाना।"

स्वामीजी के समकालीन तथा परवर्ती भारत के युग को उज्ज्वल करने वाली सन्तानों पर स्वामीजी के जीवन और वाणी का प्रभाव कहाँ तक पड़ा था यह महात्माजी के भाषण से प्रगट हुआ है।

सिर नहीं खपाना चाहता।' उनका अन्तर्मुख भाव देखकर सभी गुरुभाई शङ्कित हुए। श्रीरामकृष्णदेव की वह बात उन्हें याद आयी—"यह जब अपना स्वरूप जान जायगा तब इस शरीर को नहीं रखेगा।" एकदिन एक गुरुभाई ने पूछा—'स्वामीजी आप कौन हैं, क्या यह समझ सके है?' उन्होंने उसी समय गम्भीर स्वर से उत्तर दिया—'हाँ, समझ सका हूँ'। जिस अनुभूति के द्वार में श्रीरामकृष्णदेव ने ताला बन्द कर रखा था, अब समय जानकर उसे उन्होंने खोल दिया।

देहत्याग के एक सप्ताह पूर्व स्वामीजी ने एक शिष्य से एक पञ्चाग लाने को कहा। उन्होंने ध्यान से पचाग के पन्ने उलट-पुलट कर दिन देखा—ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी कार्य के लिए शुभ मुहूर्त का निर्वाचन कर रहे हैं। बाद में उस पञ्चाङ्ग को उन्होंने अपने पास रख लिया। उनका देहान्त होने पर पञ्चाङ्ग देखने का आशय सभी को ज्ञात हो गया।...

देहत्याग के तीन दिन पूर्व तीसरे पहर मठ की जमीन में टहलते हुए वर्तमान वेलुड़ मठ में स्वामीजी के समाधि मन्दिर का स्थान दिखाकर उन्होंने कहा था—"मेरा शरीर छूटने पर यहाँ दाह-संस्कार करना।"

अन्तिम कई दिन वे स्वस्थ प्रतीत होते थे—सदा प्रफुल्ल। उनका शरीर भी मानो ज्योतिर्मय हो गया था। कोई नहीं समझ सका कि अन्तिम दिन इतना निकट है।

१६०२ ई० का ४ जुलाई शुक्रवार। वे बहुत तड़के उठ गये। सुबह चाय पीते हुए गुरुभाइयों के साथ कितना ही वार्तालाप किया—बड़ी-बड़ी पुरानी बात। दिन के आठ बजते ही वे मन्दिर में जाकर दरवाजे जगले बन्द कर भीतर से अर्गल (सिकड़ी) लगाकर ध्यान में बैठ गये ११ बजे तक गंभीर ध्यान में मग्न रहे। उन्हें इतने अधिक समय तक ध्यान करते देखकर सभी गुरुभाई विशेष चंचल हो पड़े। वे एक श्यामा-संगीत गाते हुए मंदिर से आँगन में उतरकर टहलने लगे। उस समय उनमें भीतर एक अद्भुत रूपान्तर

हुआ था। स्वामी प्रेमानन्द पास ही थे। उन्हें सुनाई पड़ा स्वामीजी धीमे स्वर से कह रहे हैं—"यदि और एक विवेकानन्द रहता तो समझ सकता कि विवेकानन्द क्या कर गया है।" सुनकर प्रेमानन्द विशेष विचलित हो गये, किन्तु स्वामीजी का गम्भीर भाव देखकर उन्हें कोई प्रश्न पूछने का साहस न हुआ।

शारीरिक अस्वस्थता के कारण स्वामीजी के भोजन का पृथक प्रबन्ध था। किन्तु उस दिन सबके साथ बैठकर आनन्द करते हुए भोजन किया और कहा, कि शरीर स्वस्थ है। भोजन के बाद थोड़ा विश्राम लेकर मठ के ब्रह्मचारियों को व्याकरण पढ़ाने बैठे और लगातार तीन घण्टे तक पढ़ाया।

तीसरे पहर स्वामी प्रेमानंद को साथ लेकर बेलुड़ के बाजार तक घूम आये और कहा कि शरीर स्वच्छन्द प्रतीत हो रहा है। वेदविद्यालय की स्थापना के सम्बन्ध में बातचीत हुई। स्वामी प्रेमानंद ने पूछा—'वेदपाठ से क्या उपकार होगा?' स्वामीजी ने उत्तर दिया—'उससे और कुछ न हो, कुसंस्कार तो दूर हो जायेंगे।'

संध्या के पूर्व मठ में लौट आकर स्वामीजी ने सबके साथ कुछ देर तक बातचीत की। सायंकाल सात बजे आरती का घण्टा बज गया। स्वामीजी दो मंजिले के अपने घर में जाकर गंगा की ओर मुँह किये हुए खड़े हो गये। सामने गंगा के उस पार श्रीरामकृष्णदेव के शरीर का जहाँ दाह-संस्कार हुआ था, वह श्मशान था। सेवक ब्रह्मचारी को बाहर बैठाकर जप करने के लिए कहकर स्वयम् जपमाला हाथ में लिये पूर्व मुख होकर जप करने बैठ गये। लगभग एक घण्टे के बाद ब्रह्मचारी को बुलाकर घर के दरवाजे-जंगले खोलकर सिर में हवा करने के लिए कहा। वे जप की माला हाथ में लिये बायीं करवट लेट गये। ऐसा लगा मानो ध्यान में मग्न हो गये। एक घण्टे के बाद उन्होंने करवट बदली। उस समय भी जपमाला हाथ में थी, एक गम्भीर दीर्घ निश्वास निकल आयी, एक अस्फुट करुण शब्द हुआ। हाथ काँप गया और एक दीर्घ निश्वास छोड़ने के साथ ही साथ उनका सिर एक ओर लुढ़क गया।""दृष्टि

भ्रूमध्य में निबद्ध थी और मुखमण्डल पर स्वर्गीय ज्योति। उस समय रात ६ बजकर १० मिनट हुए थे।*

सेवक ब्रह्मचारी सबको खबर देने के लिए दौड़कर नीचे गया। अभी प्रसाद पाने का घण्टा हुआ था, तुरन्त सब लोग ऊपर आये। नाड़ी नहीं मिली। श्रीरामकृष्ण का नाम कीर्तन होने लगा। गंगा के उस पार डाक्टर बुलाने के लिए आदमी भेजा गया। कलकत्ते में भी गुरुभाइयों को समाचार भेज दिया गया।

रात के साढ़े दस बजे डाक्टर ने आकर अनेक कृत्रिम उपायों से चेतना लाने के लिए बहुत प्रयत्न किया, परन्तु फल कुछ न हुआ। मध्यरात्रि के बाद डाक्टर ने कहा—'स्वामीजी महासमाधि प्राप्त हो गये हैं।'

सुबह मठ में अनेक लोगों की भीड़ जम गयी। दल के दल स्त्री पुरुष स्वामीजी का अन्तिम दर्शन पाने के लिए आये। दोपहर के बाद दो बजे स्वामीजी का पवित्र शरीर खाट पर रखकर नीचे उतारा गया। अन्तिम क्रिया समाप्त होने पर स्वामीजी का शरीर गेरुए वस्त्र तथा पुष्पमाला आदि से विभूषित किया गया। शंख घण्टा बजाकर धूप-कपूरादि द्वारा आरती की गयी। सभी गुरुभाइयों, सन्यासियों, ब्रह्मचारियों, शिष्यवृन्द तथा भक्त नर-नारियों ने स्वामीजी की प्रदक्षिणा करके उनके चरणों की पूजा की। उसके अनन्तर श्रीगुरु महराज तथा स्वामीजी की जयध्वनि के साथ शोभायात्रा में स्वामीजी का शरीर मठ के दक्षिण पूर्व कोने पर बिल्व वृक्ष के पास लाया गया और उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट स्थान में गङ्गा किनारे चन्दन काष्ठ आदि द्वारा चिता शय्या

---

* स्वामी सारदानन्द ने १९०२ ईसवी के २४ जुलाई, सनफ्रान्सिस्को वेदान्त सोसाइटी के प्रेसीडेन्ट डाक्टर लोगन को जो चिट्ठी लिखी थी उसमें दिखाई पड़ता है कि स्वामीजी ने ४ जुलाई शुक्रवार रात्रि के ९ बजकर १० मिनट पर शरीर छोड़ा (मायावती, अद्वैताश्रम प्रकाशित स्वामीजी की अँग्रेजी जीवनी, चतुर्थ संस्करण पृष्ठ ७६८ द्रष्टव्य है)।

रचित हुई। वेद मन्त्र पाठ और स्तोत्रादि गाने के भीतर अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न हुई।*

* * *

स्वामी विवेकानन्द की आत्मा देह पिंजर से मुक्त होकर अनन्त के साथ मिल गयी। वे संसार के लिए वेदान्त की वाणी, मानवात्मा का अमरत्व और एकत्व की वाणी छोड़ गये हैं।

भारतवासियों से उन्होंने कहा था—"हे भारत! मत भूलो—तुम्हारी नारी-जाति का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती हैं, मत भूलो—तुम्हारे उपास्य उमानाथ सर्वत्यागी शंकर हैं, मत भूलो-तुम्हारा विवाह, तुम्हारा धन, तुम्हारा

---

* १९०२ के ४ जुलाई शुक्रवार को स्वामीजी ने शरीर छोड़ा। उस समय उनकी अवस्था ३९ वर्ष ५ मास २३ दिन थी। उन्होंने ढाका में कहा था—"बहुत हुआ तो साल भर तक हूं।" किसी दूसरे समय कहा था—"मैं चालीस पूरा नहीं करूँगा।" अमरनाथ जी ने उन्हें इच्छा मृत्यु का वर दिया था।

दूसरे दिन स्वामीजी के शरीर की भस्मास्थि भविष्य वंशधरों के लिए रख ली गयी। उस भस्मास्थि की बेलुड़ मठ में नित्य पूजा होती है। स्वामीजी की चिता शय्या पर उनका समाधि मन्दिर तैयार हुआ है।

स्वामी रामकृष्णानन्द ने मद्रास में उसी रात को ध्यान के समय स्वामीजी का परिचित कण्ठस्वर सुना—"शशी शशी, मैंने शरीर को थूक की तरह फेंक दिया है।"

स्वामी विज्ञानानन्द उसी रात को इलाहाबाद के ब्रह्मवादिन् क्लब के मन्दिर में बैठकर ध्यान कर रहे थे। ध्यान में उनको दर्शन हुआ—श्रीठाकुर की गोदी में स्वामीजी बैठे हैं। * दूसरे दिन बेलुड़ मठ से तार के द्वारा स्वामीजी के देहत्याग का समाचार पाकर वे उस दर्शन का अर्थ समझ गये।

जीवन, तुम्हारा इन्द्रिय-सुख अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं, मत भूलो—जन्म से ही माता के लिए तुम बलि प्रदत्त हो,...मत भूलो—नीच जाति, मूर्ख, दरिद्र, अज्ञ, चमार, मेहतर तुम्हारा ही रक्त और तुम्हारे ही भाई हैं। हे वीर, साहस का अवलम्बन करो। दर्प के साथ बोलो—मैं भारतवासी हूँ। भारतवासी मेरे भाई हैं। बोलो—"मूर्ख भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चण्डाल भारतवासी, मेरे भाई हैं। भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत के देव-देवी मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरी शिशु शय्या, मेरे यौवन का उपवन और मेरे वार्धक्य की वाराणसी है। भाई बोलो—भारत की मृत्तिका मेरा स्वर्ग है और भारत का कल्याण ही मेरा कल्याण है। और दिन रात बोलो हे गौरीनाथ, हे जगदम्बे, मुझे मनुष्यत्व दो। माँ मेरी दुर्बलता कापुरुषता दूर करो। मुझे मनुष्य बनाओ।"

मधु वाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥१

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥२

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमान् अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥३

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥४

—ऋग्वेद १।९०।६-९

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

स्वामीजी के जीवन की संक्षिप्त घटना-पञ्जिका।

सन १८६३ ई० के १२ जनवरी, पौष-संक्रान्ति, कृष्णा सप्तमी तिथि, सोमवार सूर्योदय के कुछ बाद (६-४९ मि: में) जन्म।

१८८१ ई० के नवम्बर मास में सिमुलिया मुहल्ले में सुरेन्द्रनाथ मित्र के मकान में श्रीरामकृष्णदेव का प्रथम दर्शन।

१८८१ ई० पौष माह में किसी दरदिन रामचन्द्र और सुरेन्द्रनाथ के साथ गाड़ी से प्रथम दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव के चरणों के समीप आगमन।

१८८४ ई० के प्रारम्भ में बी० ए० परीक्षा के थोड़े दिन के बाद स्वामीजी का पितृवियोग।

१८८५ ई० के ११ दिसम्बर कैन्सर रोग की चिकित्सा के लिए श्रीरामकृष्णदेव का काशीपुर उद्यान भवन में आगमन। गुरुजी की सेवा में स्वामीजी का आत्म नियोग।

१८८६ ई० के १६ अगस्त श्रावण पूर्णिमा के दिन १ बजकर ६ मि. में श्रीरामकृष्णदेव का महासमाधि-लाभ।

१८८६ ई० के बड़े दिन के समय कुछ गुरु भक्तों को लेकर आँटपुर में बाबूराम के मकान में गमन एवं सन्यस्त होने का सङ्कल्प ग्रहण।

१८८७ ई० के जनवरी महीने के किसी समय वराहनगर मठ में सन्यास-ग्रहण।

१८८८ ई०, वराहनगर मठ से परिव्राजक रूप से निष्क्रमण। काशी, अयोध्या, आगरा, वृन्दावन, हाथरस, हृषीकेश आदि विभिन्न स्थानों में कई महीनों तक प्रव्रज्या में बिताकर वराहनगर मठ में प्रत्यावर्तन।

१८९० ई० के जनवरी महीने में फिर प्रव्रज्या में निष्क्रमण एवं लगभग चार मास के बाद बराहनगर मठ में प्रत्यावर्त्तन।

१८९० ई० के जुलाई मास में स्वामीजी बराहनगर मठ से दीर्घ प्रव्रज्या में निकल पड़े और हिमालय से कुमारिका तक भारत के विभिन्न तीर्थों तथा विभिन्न स्थानों में निःसम्बल अवस्था में परिभ्रमण।

१८९३ ई० के ३१ मई बम्बई से जहाज में अमेरिका के धर्म-सम्मेलन में योगदान करने के लिए यात्रा।

१८९३ ई० के १६ जुलाई प्रशान्त महासागर अतिक्रमण करके कनाडा राज्य के वंकूवर बन्दरगाह में अवतरण करके ट्रेन से शिकागो पहुँचे।

१८९३ ई० के ११ सितम्बर सोमवार धर्ममहासभा का उद्बोधन हुआ और स्वामीजी ने वहाँ व्याख्यान दिया। २७ ता० तक वह धर्म सम्मेलन चला। उन्होंने विभिन्न दिनों में १२ व्याख्यान दिये। उस सम्मेलन के अनन्तर स्वामीजी ने अमेरिका के विभिन्न स्थानों में परिभ्रमण करके बहुत से व्याख्यान दिये।

१८९५ ई० के अगस्त के प्रारम्भ में अमेरिका से वेदान्त के प्रचार के लिए इङ्गलेण्ड रवाना हो गये। और वहाँ लगभग ३ मास तक विभिन्न स्थानों में बहुत से व्याख्यान दिये।

१८९५ ई० के अन्तिम भाग में इङ्गलैंड से अमेरिका रवाना हो गये। एवं १८९६ ई० के फरवरी मास में 'न्यूयार्क वेदान्त सोसाइटी' स्थापित करके न्यूयार्क आदि स्थानों में फिर से उनका व्याख्यान प्रारम्भ हुआ।

१८९६ ई० के १५ अप्रैल न्यूयार्क से दूसरी बार इङ्गलेंड रवाना और ४ मास वेदान्त प्रचार के बाद यूरोप के विभिन्न स्थानों में परिभ्रमण करके पुनः इङ्गलैंड में लगभग ३ मास तक भाषण।

१८९६ ई० के २८ मई प्रोफेसर मैक्समूलर के साथ भेंट।

१८९६ ई० के १६ दिसम्बर लन्दन त्याग एवं ३० दिसम्बर नेपल्स से जहाज द्वारा भारत रवाना।

१८९७ ई० के १५ जनवरी कोलम्बो अवतरण। विपुल संवर्धना।

१८९७ ई० के ६ फरवरी—मद्रास आगमन। उद्दीपनामयी वक्तृता प्रदान।

१८९७ ई० २० फरवरी, जहाज द्वारा खिदिरपुर एवं कलकत्ते में पदार्पण। २८ फरवरी विराट् अभिनन्दन।

१८९७ ई० के १ मई, जगत् के कल्याण के लिए 'रामकृष्ण मिशन' की प्रतिष्ठा।

१८९७ ई० के ६ मई, अलमोड़ा यात्रा। हिमालय में मठ स्थापन करने का आयोजन।

१८९७ ई० के ९ अगस्त अलमोड़ा त्याग करके उत्तर भारत के पंजाब और काश्मीर के सफर में निकल गये। विभिन्न स्थानों में ५ मास तक वक्तृता प्रदान।

१८९८ ई० के २ फरवरी को बेलुड़ में गङ्गा के पश्चिम तीर पर मठ के लिए जमीन खरीदना।

१८९८ ई० के ३० मार्च को गुरुभाइयों और शिष्यों को लेकर दार्जिलिंग रवाना हो गये।

१८९८ ई० के ११ मई को द्वितीय बार अलमोड़ा रवाना हो गये। १० जून को अलमोड़ा से पाश्चात्य शिष्याओं को लेकर काश्मीर यात्रा—अमरनाथ दर्शन, क्षीरभवानी में दैववाणी श्रवण।

१८९८ ई० के १३ नवम्बर को कालीपूजा के दिन बागबाजार में 'निवेदिता बालिका विद्यालय' की प्रतिष्ठा। स्त्री-शिक्षा का प्रवर्त्तन।

१८६८ ई० के ६ दिसम्बर को बेलुड की नयी जमीन में श्रीश्रीठाकुर की विशेष पूजा के बाद बेलुड मठ स्थापन।

१८६६ ई० के २ जनवरी को नीलाम्बर बाबू के उद्यान भवन से नये मठ के मकान में स्थायी भाव से मठ स्थानान्तरित हुआ।

१८६६ ई० के २० जून को कलकत्ते से जहाज द्वारा द्वितीय बार पाश्चात्य देशों में गमन। ३१ जुलाई को लन्दन में अवतरण और १६ अगस्त को अमेरिका को रवाना।

१६०० ई० के २० जुलाई को अमेरिका छोड़कर यूरोप आये और पेरिस के वृहत् धर्मेतिहास सम्मेलन में योगदान और यूरोप के विभिन्न स्थानों का दर्शन कर भारत रवाना। १६०० ई० के ६ दिसम्बर रात को बेलुड मठ में प्रत्यावर्तन।

१६०० ई० के २७ दिसम्बर को मायावती रवाना, १५ दिन मायावती में रहकर २४ जनवरी (१६०१ ई०) को मायावती से बेलुड मठ में पुनरागमन।

१६०१ ई० के १८ मार्च को पूर्व बंगाल रवाना। ढाका, चन्द्रनाथ तीर्थ, कामाख्या और शिलांग का सफर समाप्त कर मई मास के मध्य भाग में बेलुड मठ में आगमन।

१६०१ ई० अक्टूबर मास में बेलुड मठ में प्रतिमा में दुर्गादेवी की आराधना, लक्ष्मी पूजा और काली पूजा समापन।

१६०२ ई० जनवरी मास में बोधगया का दर्शन कर काशीधाम आगमन। १६०२ ई० श्री श्रीरामकृष्णदेव के जन्मोत्सव से पहिले बेलुड मठ लौट आना।

१६०२ ई० के ४ जुलाई शुक्रवार रात्रि ६ बजकर १० मि० पर स्वामीजी महासमाधि में लीन हो गये।

इस ग्रन्थ के प्रणयन में निम्नलिखित पुस्तकों के ऊपर विशेष रूप से निर्भर किया गया है—

१—श्रीश्रीरामकृष्ण कथामृत (श्रीम-कथित) विविध खंड ।

२—श्रीश्रीरामकृष्ण लीलाप्रसंग (ठाकुर के दिव्य भाव और नरेन्द्रनाथ) स्वामी सारदानन्द प्रणीत ।

३—पत्रावली—स्वामी विवेकानन्द, प्रथम और द्वितीय भाग ।

४—भारते विवेकानन्द (उद्बोधनकार्यालय प्रकाशित) ।

५—श्रीरामकृष्ण-भक्त मालिका (स्वामी विवेकानन्द-जीवनी-अंश) स्वामी गम्भीरानन्द प्रणीत ।

6—The Master as I saw Him, by Sister Nivedita.

7—The Life of Vivekananda and the Universal Gospel, By Romain Rolland.

8—The Life of Swami Vivekananda (in one vol.) By His Eastern and Western Disciples Published by Advaita Ashrama, Mayavati.

९—स्वामी विवेकानन्द, दो खंडों में—श्रीप्रमथनाथ बसु प्रणीत ।

१०—परिव्राजक, प्राच्य और पाश्चात्य, वर्तमान भारत, भाववार कथा—स्वामी विवेकानन्द प्रणीत ।

इनके अतिरिक्त श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन से प्रकाशित अनेक अन्य ग्रन्थों की सहायता भी ली गयी है ।

———